5138

जिनेन्द्र पूजाञ्जलि

सम्पादक :
डा. श्रेयांसकुमार जैन
रीडर, संस्कृत
दिगम्बर जैन कालिज, बड़ौत (उ० प्र०)

श्रुत प्रभावना प्रकाशन
बड़ौत - 250611 (उ. प्र.)

जिनेन्द्र पूजाञ्जलि

सम्पादक :

डा. श्रेयांसकुमार जैन

रीडर. संस्कृत

दिगम्बर जैन कालिज, बड़ौत (उ० प्र०)

मूल्य ७५

5138

श्रुत प्रभावना प्रकाशन
बड़ौत - 250611 (उ. प्र.)

सम्पादक :
डा. श्रेयांसकुमार जैन
रीडर–संस्कृत, दिगम्बर जैन कालिज, बड़ौत–250611

अर्थ सौजन्य :
1. श्रीमती बाला जैन धर्मपत्नी श्री रमेश जैन (साडी वाले)
   वीर वस्त्रालय प्रा० लि०, 1643 दरीबा कलां, दिल्ली–110006
   फोन: 3263566
2. श्रीमती तारा जैन धर्मपत्नी श्री विनोद जैन (पटाखे वाले)
   अजीत फायर वर्क्स, 1107 गली गुलियान, दिल्ली–110006
   फोन: 3274027, 3289127
3. श्रीमती आशा जैन धर्मपत्नी श्री महेन्द्र जैन (साडी वाले)
   ए–2/ 216, एकता गार्डन, पटपड़गज़, दिल्ली
   फोन: 2724806
4. श्रीमती सुशीला जैन धर्मपत्नी श्री विनय जैन (साडी वाले)
   मै० कविता साडी इम्पोरियम, C-153 लाजपतनगर-I, नई दिल्ली–24
   फोन: 6913775
5. श्रीमती कान्ता जैन धर्मपत्नी श्री त्रिलोक चन्द जैन
   1702, कूचा जटमल, दरीबा कलां, दिल्ली–110006
   फोन: 3282699
6. श्री विकास चन्द जैन की पुण्य स्मृति में उनके माता–पिता
   श्री हरी चन्द जैन व श्रीमती बिमला जैन
   2677, गली अनार वाली, किनारी बाजार, दिल्ली–110006

प्राप्ति स्थान :
डा. श्रेयांसकुमार जैन,
24/32, गांधी रोड, बड़ौत 250611
फोन न. (01234) 64221

मुद्रक :
दीप प्रिंटर्स
ए–8, मायापुरी, फेस–I, नई दिल्ली – 110064
फोन : 5131393, 5132579

सम्पादकीय

तीर्थंकर की दिव्य–ध्वनि के आधार पर ही गणधर स्वामी ने श्रमणधर्म और श्रावकधर्म का प्ररूपण किया है। ध्यान और अध्ययन श्रमणधर्म है। दान और पूजा श्रावकधर्म है। जयधवला टीका में आचार्य वीरसेन ने श्रावकधर्म पर विचार करते हुए लिखा है–"**तं जहा दाणं पूया सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावय धम्मो**"---१/८२ अर्थात् दान, पूजा, शील और उपवास चार प्रकार का श्रावकधर्म है। श्रावक के धर्म और कर्त्तव्यों में देवपूजा को अनिवार्य माना गया है। श्रावक के षडावश्यक देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान हैं। श्रावक के कर्त्तव्यों या आवश्यकों में देवपूजा को प्रथम और अनिवार्य स्वीकार किया है। आचार्य श्री समन्तभद्रस्वामी जिनेन्द्र पूजन की महत्ता स्वीकार करते हुए लिखते हैं–

देवाधिदेवचरणं परिचरणं, सर्वदुःखनिर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि, परिचिनुयादादृतो नित्यम्।।११६।।

- रत्नकरण्ड श्रावकाचार

इच्छित फल देने वाले और काम बाण को भस्म करने वाले जिनेन्द्र भगवान् के चरणों में पूजन करना, समस्त दुःखों का नाश करने वाला है। इस कारण प्रतिदिन जिनार्चन करना परमावश्यक है। वीतराग भगवन्तों की मन, वचन, काय की एकतापूर्वक जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल इन अष्ट द्रव्यों से भक्ति सहित पूजा करने से महान फल प्राप्त होता है। श्रावकाचारों में आचार्यों ने पूरे जोर के साथ कहा है कि गृहस्थ को द्रव्यपूजा की परमावश्यकता है, क्योंकि गृहस्थ निरन्तर द्रव्य संग्रह में संलिप्त रहता है। जब तक गृहस्थ मूर्च्छा कम नही करता है, तब तक श्रद्धा, संवेग, वैराग्य–विरति, उपशम एवं अनासक्ति इत्यादि गुणों से गर्भित शुभ–भाव अपने में पैदा नहीं कर सकता तथा देवाधिदेव वीतराग जिनेन्द्र की पूजा रुचिपूर्वक नहीं कर पाता। अतएव प्रशस्त/शुभ–भाव में प्रतिबन्धक द्रव्य मूर्च्छा को हटाना आवश्यक है। द्रव्य मूर्च्छा को पृथक् करने का समर्थ कारण द्रव्यपूजा है। हाँ, द्रव्यपूजा मात्र से परम लक्ष्य की सिद्धि असम्भव है अतः द्रव्यपूजा के साथ शुभ–भावों का लक्ष्य रखना आवश्यक है क्योंकि भावविशुद्धि के बिना की हुई क्रिया फलवती नहीं होती है। गृहस्थ अपने सांसारिक जीवन में विविध द्रव्यों के सहकार से अशुभ भावों से युक्त होता है, उन अशुभ–भावों के निर्मूलन के लिए द्रव्यपूजा युक्त भावपूजा उपादेय है। हाँ गृहस्थ को उपवास के दिन राग के अंगों का परित्यागपूर्वक भावपूजा करना भी श्रेयस्कर है।

द्रव्यपूजा भावपूर्वक ही फलदायी होती है अतः गृहस्थ की अपेक्षा द्रव्य और भाव दोनों सापेक्ष हैं। द्रव्य–भाव ध्वद्ध सध्हत वीतरागं ध्जनेन्द्र की पूजा करने वाला मानव संसार–सागर से पार हो जाता है। कर्म–मल के दूर हो जाने से आत्म–लाभ प्राप्त करता है। भगवान् की

पूजा–उपासना साधनामय है। जिनेन्द्रपूजा को गृहस्थ के लिए आवश्यक बताते हुए आचार्य पद्मनन्दिदेव कहते हैं –

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति, पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, धिक् च गृहाश्रमम्।।-पंचविंशतिका ६/१५

जो प्राणी भक्ति से जिनेन्द्र भगवान् का न दर्शन करते है, न पूजा करते हैं और न स्तुति ही करते हैं, उनका जीवन निष्फल है, उनके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है। जिनेन्द्र पूजा–भक्ति सभी कर्मों को शिथिल करने के लिए एक समर्थ निमित्त है। कल्याणमन्दिर स्तोत्र में श्रीमद् कुमुदचन्द्राचार्य ने लिखा है–जिस प्रकार चन्दन के पेड़ों से लिपटे हुए सर्प मयूर की ध्वनि सुनकर भाग जाते हैं, उसी प्रकार भगवन् ! आप जिस भक्त के हृदय में समा जाते हैं, उसके कर्म बन्ध शीघ्र ही शिथिल हो जाते हैं।

जो गृहस्थ जिनपूजा के बिना कल्याण चाहता है, वह अज्ञानभाव में स्थित है जिनपूजा, स्तवन रूप भक्ति में अद्भुत शक्ति है, वह सम्पूर्ण संतापों से विमुक्त कराकर सुख प्राप्त कराती है। पापों का क्षय कराने वाली होती है।

जिन स्तवन की महिमा अगम–अपार है जिसे स्तुतिकारों ने विशेष रूप से प्रस्तुत की है। आचार्य समन्तभद्र लिखते हैं–

जन्मारण्णशिखी स्तवः स्मृतिरपि क्लेशाम्बुधे नौः पदे।
भक्तानां परमो निधिः प्रतिकृतिः, सवार्थसिद्धिः परा।। स्तुतिविद्या/११५

जिनेन्द्र भगवान् का स्तवन रूप शुभ–भाव संसार रूपी अटवी (जंगल) को नष्ट करने के लिए अग्नि के समान है। जिस प्रकार अग्नि अटवी को नष्ट करती है, उसी प्रकार जिनेन्द्र का स्तवन रूप शुभ–भाव भी संसार के भ्रमण को नष्ट कर देता है और मोक्ष को प्राप्त करा देता है। जिनेन्द्र स्मरण दुःख रूप समुद्र से पार होने के लिए नौका के समान है। उपासकाध्ययन में बताया गया है कि–

एकाऽपि समर्थेयं जिनभक्तिदुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिश्रियं कृतिजनम्।।१५५।।

अकेली एक जिनभक्ति ही ज्ञानी के दुर्गति का निवारण करने में, पुण्य का संचयन करने में और मुक्ति रूपी लक्ष्मी को देने में समर्थ है। अतः गृहस्थ को प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में शय्या का परित्याग करके णमोकार महामन्त्र को ९ बार पढ़ने के बाद नित्यक्रिया से निवृत्त होकर, स्नान कर, धुले हुए शुद्ध धोती दुपट्टा वस्त्र पहनकर घर से न्यायोपार्जित सम्पत्ति से क्रय की हुई प्रासुक सामग्री को थाली में लेकर जिनमन्दिर में जाना चाहिए। मंदिर जाते हुए मार्ग में चिन्तन करना चाहिए कि संसार नश्वर है। राग–द्वेष बन्धन के कारण हैं। इन राग द्वेष छूटने का एक मात्र उपाय जिनेन्द्रदर्शन हैं। मंदिर पहुँचकर सर्वप्रथम पैर धोवें, अनन्तर विनयभाव से सिर नवाकर ॐ जय जय निःसही निःसही का उच्चारण करते हुए मंदिर में प्रवेश करे। प्रवेश कर वहाँ सविनय जिनबिम्बों को नमन करे। तदनन्तर कुएँ से जल लाकर उसे

अग्नि पर प्रासुक करके द्रव्य धोकर वेदी शुद्धि करना चाहिए। द्रव्य की शुद्धि भाव विशुद्धि के लिए अत्यावश्यक होती है, इसीलिए पूजन के प्रारम्भ में पूजक प्रतिज्ञा करता है–

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगतुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्यबल्गन्, भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।

अर्थात् अपने भावों की परम शुद्धता पाने का अभिलाषी मैं देश और काल के अनुरूप जल, चन्दन आदि द्रव्यों की शुद्धता को पाकर जिनस्तवन, जिनबिम्बदर्शन आदि अनेक अवलम्बनों का आश्रय लेकर भूतार्थरूप पूज्य अरहंत सिद्ध भगवन्तों का पूजन करता हूँ।

जिनपूजा के पाँच अंग हैं– अभिषेक, आह्वानन, स्थापन, सन्निधिकरण और विसर्जन। इन पाँचों में से एक के बिना भी पूजा दोषास्पद है। वर्तमान में आगम से अनभिज्ञ कुछ स्वच्छन्द प्रवृत्ति के लेखकों ने अभिषेक और स्थापना का निषेध किया है। उन्हें अपनी भ्रांत धारणा का निम्नांकित शास्त्रीय प्रमाणों को देखकर छोड़ देना ही उचित है।

आगम में अभिषेक पूर्वक ही जिनपूजा का विधान है–**''सिद्धभक्त्यादि शान्त्यन्ताः पूजाभिषेकमंगलं''**–धर्मामृत। अर्थात् पूजा अभिषेक और मंगल–क्रिया सिद्धभक्तिपूर्वक होती है। श्रावक के कृतिकर्म की विधि वाले प्राचीन ग्रंथों में जो प्रमाण उपलब्ध हैं, उनमें अभिषेक के सम्बन्ध में लिखा है–**अतिहेय वंदनासिद्ध चेदिय पंच गुरु संति भत्तीहि।**–भावसंग्रह।

जिनेन्द्र प्रभु का अभिषेक और पूजन सिद्धभक्ति, पंचगुरुभक्ति और शान्तिभक्ति पूर्वक करना चाहिए। बृहत्सामायिक पाठ में भी लिखा है–

स्नपनार्चा स्तुति-जपान् साम्यार्थं प्रतिमार्पिते।
युञ्ज्यांथाम्नायमाद्यादृते संकल्पितेऽर्हति।।

प्रतिमा में अर्पित जिनेश्वर का अभिषेक, पूजन, स्तुति और समभाव की प्राप्ति (राग–द्वेषादि दोषों के अभाव) के लिए आम्नाय–शास्त्र की मर्यादानुसार करता हूँ। यहाँ अभिषेक करने की प्रतिज्ञा और नियम का उल्लेख किया गया है।

भरत ने खोटे स्वप्नों के निवारण के लिए क्या किया था, उसका वर्णन करते हुए जिनसेनाचार्य लिखते हैं–

शान्तिक्रियामतश्चक्रे दुःस्वप्नानिष्ठ शांतये।
जिनाभिषेकसत्पात्रदानाद्यैः पुण्यचेष्टितैः।।-आदिपुराण ४१-८५

दुःस्वप्न रूपी अनिष्ट की शान्ति के लिए जिनेन्द्र भगवान् का अभिषेक, सत्पात्र–दान आदि पुण्य क्रियाओं से शान्ति क्रिया की थी।

पूजन के पूर्व अभिषेक जिस प्रकार आवश्यक है उसी प्रकार आह्वानन, स्थापन और सन्निधिकरण भी आवश्यक है। श्रावक पीले चावलों से ठोणा पर वीतराग जिनबिम्ब के सामने जिंनेन्द्र भगवान् का आह्वानन करता है और मन, वचन, काय की एकाग्रता के लिए उसी ठोणे पर स्थापना करता है। ठोणे पर स्थापित उन चावलों में जिनबिम्ब की स्थापना होने से वे

अतिशय पवित्र हैं, उन्हीं के निमित्त से अपनी भावना पवित्र होती है। पूजक द्वारा अपने भावों को जिनेन्द्र सदृश बनाना सन्निधिकरण है।

पूजक अभिषेक, आह्वानन, स्थापना, सन्निधिकरण करके पूजन में प्रवृत्त होता है। 'अदिपुराण' में जिनसेनाचार्य ने भरत द्वारा बताये गये पूजन के प्रकारों पर प्रकाश डाला है–अर्हन्तदेव की पूजा चार प्रकार की होती है– नित्यमह, सर्वतोभद्र, कल्पद्रुममह और आष्टाह्निक पूजा। प्रतिदिन अपने गृह से जिनालय में ले जाये गये गन्ध, अक्षत, पुष्प आदि द्रव्यों से जिन भगवान् की पूजा करना नित्यमह कहलाती है। मुकुट बद्ध राजाओं के द्वारा की जाने वाली पूजा महामह या सर्वतोभद्र है। चक्रवर्तियों द्वारा किमिच्छक दान देकर जिनार्चन करना कलपद्रुममह है। आष्टाह्निक पूजा पर्व में सर्वसाधारण जनों के द्वारा नन्दीश्वर द्वीपगत जिन प्रतिमाओं की अर्चना आष्टाह्निक पूजा है। इन चार प्रकार की पूजाओं के सिवाय इन्द्रों द्वारा की जाने वाली महान् पूजा को इन्द्रध्वजमह कहते हैं। श्रावक (पूजक) को नित्यमह पूजन करना तो आवश्यक है ही, किन्तु नैमित्तिक पूजाओं को करके भी महान पुण्य प्राप्त करना चाहिए क्योंकि भव्य मार्गोपदेशक उपासकाध्ययन में आचार्य यही प्रेरणा दे रहे हैं–"प्रतिष्ठा कराने से, अभिषेक से, पूजा करने से और दान के फल से मनुष्य इस लोक और परलोक में देवों के द्वारा पूज्य होता है।" जिनाभिषेक, जिनपूजन, जिनप्रतिष्ठा और जिन–गुणकीर्तन करने का जो महान् पुण्य होता है, उसे मैं जड़बुद्धि कैसे वर्णित कर सकता हूँ। अतः इतना ही अनुरोध है कि प्रतिदिन आचार्यों के द्वारा बताए हुए मार्ग के अनुसार प्रत्येक श्रावक, श्राविका को जिनेन्द्र भगवान् की पूजन अवश्य ही करना चाहिए। यही जीवन के विकास के लिए आवश्यक है। इसी से आत्मा की उन्नति भी सम्भव है।

अनेक प्रबुद्ध व्यक्ति पूजाओं के अर्थ जानकर ही पूजा करना चाहते हैं, उन्हीं की इच्छाओं को ध्यान में रखकर मैनें प्रकाशित पूजा संग्रहों में से पूजाओं और उनके अर्थों को संकलित किया, जिसमें **ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि**, पंडित श्री सनतकुमार, विनोदकुमार जैन रजवांस द्वारा अनुदित **'श्री जिनेन्द्र पूजापाठ'** एवं **परम रत्नार्चना संग्रह** का पूरा उपयोग किया है। उक्त पुस्तकों के सम्पादकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। डा० जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) एवं डा० सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' (बुरहानपुर) ने भी यथेष्ट सहयोग प्रदान किया, तदर्थ उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। अर्थ सहयोगियों की धर्म भावना का समादर करता हुआ भावना करता हूँ कि यह **''जिनेन्द्र पूजाञ्जलि''** प्रत्येक पूजक की आराधना में सहकारी हो।

श्रेयांसकुमार जैन

विषयानुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ सं०
	प्रथम भाग (सार्थ)	
1.	मंगलाचरणम्	3
2.	मंगलाष्टकस्तोत्रम्	4
3.	जिनमंदिर महिमा	7
4.	देवदर्शन की विधि	8
5.	दर्शन पाठः	10
6.	दर्शन स्तुति (हे देव आपका दर्शन)	12
7.	दृष्टाष्टकम्	13
8.	भजन (संसार के सागर)	16
9.	दर्शन स्तुति (पं0 दौलतराम जी कृत)	17
10.	पूजन विधि	21
11.	अभिषेक पूर्व आवश्यक क्रियाएं	22
12.	अभिषेक पाठः	25
13.	शान्तिधारा	29
14.	यंत्राभिषेकः	36
15.	विनय पाठ	37
16.	प्रार्थना (श्री जी मैं थाने)	42
17.	पूजा पीठिका	43
18.	पूजा प्रतिज्ञा पाठ	46
19.	स्वस्ति मंगलम्	47
20.	परमर्षिस्वस्ति मंगलम्	48
21.	देव–शास्त्र–गुरु पूजन	51
22.	बीस तीर्थंकर पूजा	59
23.	कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य पूजार्घ्य	66
24.	सिद्ध पूजा (संस्कृत)	70
25.	सिद्ध पूजा (हिन्दी)	78
26.	समुच्चय चौबीसी जिनपूजा	86
27.	श्री आदिनाथ जिनपूजा	92
28.	श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा	101

29. श्री शान्तिनाथ जिनपूजा 111
30. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा 120
31. श्री महावीर जिनपूजा 129
32. सोलहकारण पूजा 138
33. पंचमेरु पूजा 144
34. नन्दीश्वरद्वीप पूजा 150
35. दशलक्षण धर्म–पूजा 156
36. रत्नत्रय पूजा 168
37. समुच्चय अर्घ्य 182
38. शान्तिपाठः (संस्कृत) 184
39. विसर्जनम् 188
40. शान्ति पाठ (भाषा) 189
41. विसर्जन (भाषा) 192

द्वितीय भाग (सामान्य पूजाएँ)

42. पंच मंगल पाठ 195
43. अभिषेक पाठ (भाषा) 203
44. जलाभिषेक या प्रक्षाल पाठ (हरजसराय कृत) 209
45. समुच्चय पूजन 212
46. कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय अर्घ्य (भाषा) 216
47. पंचपरमेष्ठी पूजा 217
48.. नवदेवता पूजा 225
49. पंचबालयति पूजा 229
50. श्री बाहुबली पूजा 233
51. रक्षाबन्धन पूजा 237
52. विष्णुकुमार महामुनि पूजा 240
53. रविव्रत पूजा 244
54. क्षमावणी पूजा 248
55. श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजा 252
56. श्री सम्मेद शिखर पूजा 258
57. सप्तर्षि पूजा 270
58. तत्त्वार्थसूत्र पूजा 274
59. श्री भक्तामर स्तोत्र पूजा 278
60. नवग्रह अरिष्टनिवारक पूजा 293
61. विनायक सिद्ध यंत्र पूजा 299

62. निर्वाण क्षेत्र पूजा 304
63. सरस्वती पूजा 307
64. दीपावली पूजा 310
65. अर्घ्यावली 313

तृतीय भाग (चौबीस तीर्थंकरों की पूजाएं)

66. श्री वृषभदेव जिनपूजा 325
67. श्री अजितनाथ जिनपूजा 329
68. श्री संभवनाथ जिनपूजा 333
69. श्री अभिनन्दननाथ जिनपूजा 337
70. श्री सुमतिनाथ जिनपूजा 342
71. श्री पद्मप्रभ जिनपूजा 347
72. श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा 351
73. श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा (देहरा) 357
74. श्री पुष्पदन्तनाथ जिनपूजा 362
75. श्री शीतलनाथ जिनपूजा 366
76. श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा 371
77. श्री वासुपूज्य जिनपूजा 375
78. श्री विमलनाथ जिनपूजा 379
79. श्री अनन्तनाथ जिनपूजा 383
80. श्री धर्मनाथ जिनपूजा 387
81. श्री शान्तिनाथ जिनपूजा (या मन कानन) 391
82. श्री कुन्थुनाथ जिनपूजा 395
83. श्री अरनाथ जिनपूजा 400
84. श्री मल्लिनाथ जिनपूजा 404
85. श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनपूजा 409
86. श्री नमिनाथ जिनपूजा 413
87. श्री नेमिनाथ जिनपूजा 417
88. श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा 421
89. श्री महावीर स्वामी जिनपूजा (चांदनपुर गांव) 426

चतुर्थ भाग (स्तोत्र, स्तुति,भक्ति पाठ,आरती)

90. सुप्रभात स्तोत्रम् 435
91. महावीराष्टकस्तोत्रम् 437

92. श्री जिनसहस्रनाम स्तोत्रम् 439
93. तत्त्वार्थसूत्रम् 452
94. भक्तामर स्तोत्र (भाषा) 462
95. स्वयंभूस्तोत्र (भाषा) 469
96. श्री पार्श्वनाथस्तोत्र (नरेन्द्रं फणीन्द्रं) 471
97. निर्वाणकाण्ड भाषा 473
98. श्री पार्श्वनाथ भक्ति 475
99. श्री पार्श्वनाथ स्तुति एवं दौलतपद 476
100. स्तुति (अहो जगत गुरु) 477
101. विनती (बुधजनकृत) 478
102. गुरु स्तुति (ते गुरु मेरे मन बसो) 479
103. आराधना पाठ 480
104. आत्म कीर्तन (हूँ स्वतंत्र निश्चल) 481
105. मेरी भावना (पं0 जुगलकिशोर मुखतार) 482
106. बारह भावना (भूधरदास कृत) 484
107. बारह भावना (श्री मंगतराय कृत) 485
108. आलोचना पाठ 490
109. सिद्धचक्र पाठ 493
110. जैन ध्वजगीत एवं ध्वजारोहण मंत्र 494
111. श्री जिनवाणी स्तुति 495
112. श्री जिनवाणी माँ 496
113. लघु प्रतिक्रमण 497
114. प्रभु भक्ति 499
115. सामायिक पाठ 500
116. सम्बोधन 505
117. समाधिमरण (भाषा) 506
118. इष्ट प्रार्थना 507
119. समाधिमरण (बड़ा) 508
120. श्री पार्श्वनाथ चालीसा 516
121. महावीर चालीसा 518
122. आरती—पंचपरमेष्ठी 520
123. आरती—चौबीसों तीर्थंकर भगवान 520
124. आरती—श्री आदिनाथ 521
125. आरती—श्री पद्मप्रभ 522
126. आरती—श्री चन्द्रप्रभ 522

127. आरती–श्री शान्तिनाथ 523
128. आरती–श्री पार्श्वनाथ 524
129. आरती–श्री महावीर स्वामी 525
130. आरती–श्री बाहुबली 526
131. संक्षिप्त–सूतकपातक विधि 527
132. जाप्य मंत्र 528
133. रविव्रत कथा 532
134. सुगन्ध दशमी कथा 534
135. भारत के प्रमुख जैन तीर्थ 537

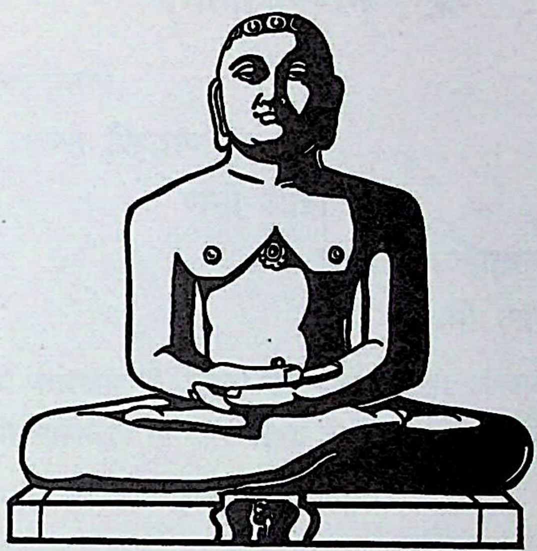

प्रथम भाग

सार्थ

5138

मंगलाचरणम्

णमो अरहंताणं,
णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्वसाहूणं

अर्थ- अरहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो।

चत्तारिदण्डक

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जांमि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अर्थ- मंगल चार है—अरहंत मंगल है, सिद्ध मंगल है, साधु मंगल है और केवली भगवान् द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है।

लोक में उत्तम चार हैं—अरहंत उत्तम हैं, सिद्ध उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं और केवली द्वारा प्रणीत धर्म उत्तम है।

चार की शरण में जाता हूँ—अरहंतों की शरण में जाता हूँ, सिद्धों की शरण में जाता हूँ, साधुओं की शरण में जाता हूँ। और केवली द्वारा प्रणीत धर्म की शरण में जाता हूँ ।

मंगलाष्टकस्तोत्रम्

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।

अर्थ- इन्द्रों द्वारा जिनकी पूजा की गई ऐसे अरिहन्त, सिद्धि के स्वामी ऐसे सिद्ध, जिन शासन को प्रकाशित करने वाले ऐसे आचार्य, सिद्धांत को सुव्यवस्थित पढ़ाने वाले ऐसे पूज्य उपाध्याय, रत्नत्रय के आराधक ऐसे साधु; ये पाँचों परमेष्ठी प्रतिदिन हमारा/तुम्हारा मंगल करें।

श्रीमन्नम्र-सुरा-सुरेन्द्र-प्रद्योत-रत्नप्रभा,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन-सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।१।।

अर्थ- शोभायुक्त और नमस्कार करते हुए देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से जिनके श्री चरणों के नखरूपी चन्द्रमा की ज्योति स्फुरायमान हो रही है, जो प्रवचन रूप सागर की वृद्धि करने के लिए स्थायी चन्द्रमा हैं एवं योगिजन जिनकी स्तुति करते रहते हैं, ऐसे अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पांचों परमेष्ठी हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।१।।

सम्यग्दर्शन - बोध- वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।२।।

अर्थ- निर्मल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह पवित्र रत्नत्रय है। श्री सम्पन्न मुक्तिनगर के स्वामी भगवान् जिनदेव ने इसे अपवर्ग (मोक्ष) को देने वाला धर्म कहा है। इस प्रकार जो यह तीन प्रकार का धर्म कहा गया है, वह

तथा इसके साथ आकार भूत सूक्तिसुधा (जिनागम), समस्त जिन–प्रतिमा और लक्ष्मी का आकार भूत जिनालय मिलकर चार प्रकार के धर्म कहे गये हैं वह हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।२।।

नाभेयादिजिनाः प्रशस्त-वदनाः ख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वर-प्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टि-पुरुषाः कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।३।।

अर्थ- तीनों लोकों में विख्यात और बाह्य तथा आभ्यन्तर लक्ष्मी सम्पन्न ऋषभदेव आदि चौबीस तीर्थंकर, श्रीमान् भरतेश्वर आदि १२ चक्रवर्ती, नव नारायण, नव प्रतिनारायण और नव बलभद्र ये ६३ शलाका महापुरुष हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।३।।

ये सर्वौषध-ऋद्धयः सुतपसां वृद्धिंगताः पञ्च ये,
ये चाष्टांग-महानिमित्तकुशलाश्चाष्टौ वियच्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः
सप्तैते सकलार्चिता मुनिवराः कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।४।।

अर्थ- सभी औषध ऋद्धिधारी, उत्तम तप ऋद्धिधारी, अवधूत क्षेत्र से भी दूरवर्ती विषय के आस्वादन, दर्शन, स्पर्शन, जिघ्रण और श्रवण की समर्थता की ऋद्धि के धारी, अष्टांग महानिमित्त विज्ञता की ऋद्धि के धारी, आठ प्रकार की चारण ऋद्धि के धारी, पाँच प्रकार के ज्ञान की ऋद्धि के धारी, तीन प्रकार के बलों की ऋद्धि के धारी और बुद्धि–ऋद्धीश्वर; ये सातों जगत्पूज्य मुनिश्रेष्ठ हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।४।।

ज्योतिर्व्यन्तर भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बूशाल्मलि-चैत्य-शाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकार-गिरौ च कुण्डल-नगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिन-गृहाः कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।५।।

अर्थ- ज्योतिषी, व्यन्तर, भवनवासी और वैमानिकों के आवासों के मेरुओं, कुलाचलों, जम्बूवृक्षों और शाल्मलिवृक्षों, वक्षारों, विजयार्धपर्वतों, इष्वाकारपर्वतों, कुंडलपर्वत, नन्दीश्वरद्वीप, और मानुषोत्तरपर्वत (तथा रूचिकवर पर्वत) के सभी अकृत्रिम जिन चैत्यालय हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।५।।

कैलासे वृषभस्य निवृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य-सज्जिनपते सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्त शिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।६।।

अर्थ- भगवान् ऋषभदेव की निर्वाणभूमि कैलासपर्वत पर है। महावीरस्वामी की पावापुर में है। वासुपूज्य स्वामी की चम्पापुरी में है। नेमिनाथ स्वामी की ऊर्जयन्त पर्वत के शिखर पर और शेष बीस तीर्थंकरों की निर्वाणभूमि श्री सम्मेदशिखर पर्वत पर है, जिनका अतिशय और वैभव विख्यात है; ये सभी निर्वाण भूमियाँ हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।६।।

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।७।।

अर्थ- धर्म के प्रभाव से सर्प माला बन जाता है, तलवार फूलों के समान कोमल बन जाती है, विष अमृत बन जाता है, शत्रु प्रेम करने वाला मित्र बन जाता है और देवता प्रसन्न मन से धर्मात्मा के वश में हो जाते हैं। अधिक क्या कहें, धर्म से ही आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती है, वही धर्म हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।७।।

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुर-प्रवेश-महिमा सम्भावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु मे/ते मंगलम्।।८।।

अर्थ- तीर्थकरों के गर्भकल्याणक, जन्माभिषेकोत्सव (जन्म कल्याणक), दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणंक और कैवल्यपुर प्रवेश (निर्वाण) कल्याणक रुप देवों द्वारा सम्पादित पंचकल्याणक महोत्सव हमारा/तुम्हारा मंगल करें।।८।।

इत्थं श्रीजिन-मंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-सम्पत्करम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।।६।।

अर्थ- सौभाग्य सम्पत्ति को प्रदान करने वाले इस श्री जिनेन्द्र मंगलाष्टक को जो सुधीजन तीर्थकरों के पंचकल्याणक के महोत्सवों के अवसर पर तथा प्रभातकाल में भावपूर्वक सुनते और पढ़ते हैं, वे सज्जन धर्म, अर्थ और काम से समन्वित लक्ष्मी के आश्रय बनते हैं और पश्चात् अविनश्वर मुक्तिलक्ष्मी को भी प्राप्त करते हैं।

जिनमंदिर महिमा

जिनगेहसमं पुण्यं न स्यात् सद्गृहिणां क्वचित् ।
स्वर्गसोपानमादौ च मुक्तिस्त्रीदायकं क्रमात् ।।

अर्थः- सद्गृहस्थों को जिनमंदिर में जो पुण्य होता है, उसके समान कहीं अन्यत्र नहीं होता, उनका वह पुण्य आदि में स्वर्ग का सोपान होता है और फिर क्रम से मुक्ति स्त्री को देने वाला होता है।

जयति सुरनरेन्द्र श्रीसुधा निर्झरण्याः
कुलधरणिधरोऽयं जैनचैत्याभिरामः।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-
प्रसर-शिखर-शुम्भत्केतनः श्रीनिकेतः।।

अर्थः- जो सुरेन्द्र और नरेन्द्रों की लक्ष्मी रूप अमृत के झरने के लिए कुलाचल है। जिनेन्द्र देव की प्रतिमाओं से मनोहर है तथा अत्यधिक फलदायक धर्मरूपी वृक्ष के पल्लव समूह के समान जिसके शिखर पर पताका सुशोभित हो रही है, ऐसा यह श्री निकेत–जिनमंदिर जयवंत है–सर्वश्रेष्ठ है।।

देव-दर्शन की विधि

भगवान के सामने जाते ही बहुत विनय के साथ हाथ जोड़कर सिर झुकावें, णमोकार मंत्र चत्तारिदण्डक और दर्शन पाठ पढ़कर साथ में लाए हुए पुंज चढ़ावें, फिर पृथ्वी पर अष्टांग अथवा पंचांग (घुटने के बल बैठकर दो पैर, दो हाथ, सिर पांच अंग) धोक देवें और महिलायें गवासन से नमस्कार करें। धोक देने के बाद अपनी बाँयी ओर से चलकर वेदी की धीरे–धीरे तीन परिक्रमा दे।

''ध्यान रखने योग्य बातें''

दर्शन करते समय अपनी दृष्टि भगवान् की प्रतिमा पर ही रखें, अन्य कोई वस्तु न देखें। उस समय स्तोत्र, स्तुति में निमग्न होकर ऐसा तन्मय हो जायें कि मन–वचन–काय में अन्य कोई बात न आने पाये। भगवान् की मूर्ति को एकटक होकर देखें और भावना करें कि जैसी भगवान् की शान्ति और वीतरागतामय आकृति है वैसी ही शान्ति, वीतरागता, मेरी आत्मा में प्रकट हो, जैसे भगवान् सिंहासन, छत्र, चँवर आदि विभूति रखते हुए भी उनसे निर्लिप्त रहते हैं, उसी तरह मैं भी सांसारिक विभूति होते हुए भी उससे अलिप्त रहूँ। जैसे भगवान् में समता भाव था, उनका न कोई मित्र था, न कोई शत्रु, ऐसी ही भावना मेरे हृदय में जागृत हो; इत्यादि चिन्तवन करें।

परिक्रमा देते समय यदि कोई स्त्री पुरूष धोक दे रहे हों तो उनके आगे से न निकलें, पीछे की ओर से निकलें अथवा जब तक वे धोक से न उठें तब तक खड़े रहें, आगे न बढ़ें। दर्शन करते समय इस तरह खड़े होना या परिक्रमा करनी चाहिए जिससे दूसरे व्यक्तियों को दर्शन पूजन में विघ्न न पड़े।

जिनमंदिर में खाली हाथ नहीं जाना चाहिए, चढ़ाने के लिए कम से कम हाथ मे चावल अवश्य लाना चाहिए। अनन्तर भक्ति भावपूर्वक मंदिर में रखे हुए गंधोदक को सिर और नयनों से लगाना चाहिए और गंधोदक लगाते समय पढ़ना चाहिए।

निर्मलं निर्मलीकरणं पवित्रं पापनाशकम्।
जिनगंधोदकं वन्दे कर्माष्टकविनाशकम्।।

उन चावलों से अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ऐसे पाँचों पद बोलते हुये क्रम से बीच में, ऊपर, दाहिनी तरफ, नीचे और बाँयी तरफ; ऐसे पाँच पुंज चढ़ावें।

सरस्वती के सामने-''प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः'' ऐसे बोलकर क्रम से चार पुंज क्रमशः से चढ़ावें।

गुरु के सामने- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र; ऐसे बोलकर क्रम से तीन पुंज क्रमशः चढ़ावें।

इसके बाद मंदिर के किसी एकान्त स्थान में बैठकर महामंत्र का जाप करें। अनन्तर जिनेन्द्र पूजा भी अवश्य करें। तभी मानव जन्म की सार्थकता है।

देव-दर्शन से लाभ

१. सम्यक्त्वोत्पत्ति २. परिणामविशुद्धि ३. पाप का क्षय ४. पुण्य की प्राप्ति ५. धर्म के प्रति प्रीति ६. शिष्टाचार का बोध ७. भावी पीढ़ी को दिशा दर्शन ८. सद्भावना की जागृति ९. आत्मा से परमात्मा बनने के भावों की जागृति १०. स्वर्ग और मोक्ष का लाभ ११. स्वावलम्बी बननें की शिक्षा का प्राप्त होना १२. त्याग की शिक्षा प्राप्त होना।

जिनबिम्बदर्शन से पापों का नाश हो जाता है जैसा कि 'चारित्रसार' में कहा है–"जिनबिम्ब भव्य लोगों की भक्ति के अनुसार स्वर्ग और मोक्ष पद देते हैं, जिस प्रकार गरुड़ मुद्रा से विष दूर हो जाता है, उसी प्रकार जिनबिम्ब के दर्शनमात्र से पापों का नाश हो जाता है। जिन चतुर्विंशतिका में श्री भूपाल कवि ने भी कहा है– जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातः काल के समय जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करता है, वह बहुत सम्पत्तिशाली होता है, पृथ्वी उसके वश में रहती है, उसकी कीर्ति सब ओर फैल जाती है, वह हमेशा प्रसन्न रहता है, उसे अनेक विद्याएं प्राप्त हो जाती हैं। युद्ध में उसकी विजय होती है, अधिक क्या, उसे सभी उत्सव प्राप्त होते हैं। इसलिए जिनबिम्ब एवं चैत्यालय की वन्दना अवश्य करनी चाहिए अर्थात प्रतिदिन देवदर्शन नियम से करना चाहिए।"

दर्शन-पाठः

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शन स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्।।१।।

अर्थ- श्री देवाधिदेव अरिहंतदेव का दर्शन पाप का नाश करने वाला, स्वर्ग की सीढ़ी एवं मोक्ष का साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वंदनेन च।
न चिरं विद्यते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्।।२।।

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से, साधुओं की वंदना से, पाप बहुत समय तक नहीं ठहरते। जिस तरह छिद्र सहित हाथ अर्थात् अंजुलि में पानी नहीं ठहरता।

वीतरागमुखं दृष्ट्वा, पद्मरागसमप्रभम्।
अनेकजन्मकृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति।।३।।

अर्थ- पद्मराग मणि की प्रभा के समान है मुख जिनका, ऐसे वीतराग भगवान् के दर्शन करने से अनेक जन्मों के संचित पाप नष्ट हो जाते हैं।

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसार-ध्वान्त-नाशनम्।
बोधनं चित्त-पद्मस्य, समस्तार्थ-प्रकाशनम्।।४।।

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान् रूपी सूर्य का दर्शन, संसार के अन्धकार को नष्ट करने वाला, केवलज्ञानरूपी हृदयकमल को विकसित करने वाला और समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाला है।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्म-दाह-विनाशाय, वर्धनं सुख-वारिधेः।।५।।

अर्थ- श्री जिनेन्द्र भगवान् रूपी चन्द्रमा का दर्शन जन्म, जरा, मृत्यु, संसार ताप का विनाशक, सुख रूपी समुद्र को बढ़ाने वाला एवं सत् धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने वाला है।

जीवादितत्त्वं प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणार्णवाय।
प्रशांत-रूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।६।।

अर्थ- जीवादि सात तत्त्वों के प्रतिपादक, सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के समूह, प्रशान्त रूप के धारण करने वाले, निर्ग्रन्थ दिगम्बर देवाधिदेव श्री जिनेन्द्र भगवान् के लिए नमस्कार है।

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः।।७।।

अर्थ- चैतन्य (चेतनता) स्वरूप जिनेन्द्र भगवान् परमात्मा (परम आत्मा) को प्रकाशित करने वाले सिद्धात्मा को मैं प्रतिदिन नमन करता हूँ।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य-भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर!।।८।।

अर्थ- आपकी शरण के बिना संसार मे मेरे लिए कोई शरण नहीं है। इसलिए करुणाभाव करके हे जिनेन्द्र भगवान्! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो।

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।६।।

अर्थ- वीतराग भगवान् के सिवा तीनों लोकों में कोई रक्षक नहीं है, कोई रक्षक नहीं है, कोई रक्षक नहीं है एवं वीतराग भगवान् के अलावा कोई देव न कभी था और न ही कभी भविष्य में होगा।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु, सदा मेऽस्तु भवे भवे।।१०।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! प्रतिदिन आप में मेरी भक्ति हो, भक्ति हो, भक्ति हो और जन्म–जन्म में हमेशा हो, हमेशा हो।

जिनधर्म-विनिर्मुक्तो, मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिनधर्माऽनुवासितः।।११।।

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति के बिना मुझे चक्रवर्ती पद भी नहीं चाहिए। जिनधर्म से सहित मुझे दरिद्रपना और दास रहना भी अच्छा है।

जन्म जन्मकृतं पापं जन्म कोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं हन्यते जिनदर्शनात्।।१२।।

अर्थ- जन्म–जन्म अर्थात् अनेक जन्मों के किये हुए पाप, करोड़ों जन्मों के उपार्जित कर्म, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा आदि रोग, हे जिनेन्द्र भगवन् ! आपके दर्शन से नष्ट हो जाते हैं।

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देवत्वदीय चरणांबुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलकं-प्रतिभासते मे,
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम् ।।१३।।

अर्थ- आज हे जिनेन्द्र भगवन् ! आपके चरणकमल के देखने से हमारे दोनों नेत्र सफल हो गये हैं। आज तीन लोक तिलकस्वरूप भगवान् के दर्शन करने से हमारा संसार समुद्र अंजुलि के समान रह गया है।

दर्शन स्तुति

हे देव ! आपका दर्शन कर चिन्तामणि फीकी पाई है।
अरु कामधेनु औ कल्पवृक्ष जुगनु सम पड़े दिखाई हैं।।१।।
हे देव ! आपका दर्शन कर मन हर्ष सहित्त पुलकाया है।
उस हर्षरूप के कारण ही आंसू मिल बाहर आया है।।२।।
हे देव ! आपका दर्शन कर चहुँ दिशा बेल फैली पाता।
वो बिना फूल के फल देती, आकाश रत्न वर्षा करता।।३।।
हे देव ! आपका दर्शन कर भवि जीव मुदित हो जाते हैं।
जैसे रवि क्रिरणें पाकर के दल कमलों के खिल जाते हैं।।४।।
हे देव ! आपका दर्शन कर मम ह्वदय कमल खिल जाता है।
ज्यों पूर्ण चन्द्र को पाकर के, जल सागर का उमगाता है।।५।।
मैं ज्ञान नेत्र से दर्शन कर, प्रभुमय मैं हो जाता हूँ।
मैं रागद्वेष मोहादिक सभी, मैं निज में लख नहीं पाता हूँ।।६।।

द्रष्टाष्टकम्

(बसन्ततिलका)

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारि,
भव्यात्मनां विभव-संभव-भूरिहेतु।
दुग्धाब्धि-फेन-धवलोज्ज्वल-कूटकोटी-
नद्ध-ध्वज-प्रकर-राजि-विराजमानम् ।।१।।

अर्थ- आज मैंने जो भव्य जीवों के ताप को हरने वाला है, जो अपरिमित विभव की उत्पत्ति का हेतु है और जो दूध तथा समुद्रफेन के समान धवलोज्ज्वल शिखर के कंगूरों में लगे हुए ध्वजसमूह–पंक्ति से शोभायमान है; ऐसे जिनालय के दर्शन किये।।१।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मी-
धामर्द्धिवर्द्धितं-महामुनि-सेव्यमानम्।
विद्याधरामर-वधूजन-मुक्तदिव्य-
पुष्पांजलि-प्रकर-शोभित-भूमिभागम् ।।२।।

अर्थ- आज मैंने जो तीन लोक की लक्ष्मी का एक आश्रय है, जो ऋद्धिसम्पन्न महामुनियों से सेव्यमान है और जहाँ की भूमि विद्याधरों और देवों की वधूजनों के द्वारा बिखेरी गयी दिव्य पुष्पांजलि के कारण शोभायमान हो रही है; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।२।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवास-
विख्यात-नाक-गणिका-गण-गीयमानम्।
नानामणि-प्रचय-भासुर-रश्मिजाल-
व्यालीढ-निर्मल-विशाल-गवाक्षजालम् ।।३।।

अर्थ- आज मैंने जहाँ पर भवनवासी आदि देवों की गणिकाएँ गान कर रही हैं और जिसके विशाल गवाक्षजाल नाना प्रकार के मणियों की दैदीप्यमान कान्ति से विभूषित हो रहे हैं; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।३।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुर-सिद्ध-यक्ष-
गन्धर्व-किन्नर-करार्पित-वेणु-वीणा।
संगीत-मिश्रित-नमस्कृत-धीरनादै-
रापूरिताम्बर-तलोरु-दिगन्तरालम् ।।४।।

अर्थ- आज मैंने जहाँ का आकाशतल और विशाल दिगन्तराल देव, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरों के द्वारा हाथ में वेणुनिर्मित वीणा लेकर नमस्कार करते समय किये गये संगीतनाद से आपूरित हो रहा है; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।४।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल-
मालाकुलालि-ललितालक-विभ्रमाणम्।
माधुर्यवाद्य-लय-नृत्य-विलासिनीनां-
लीला-चलद्वलय-नूपुर-नाद-रम्यम्।।५।।

अर्थ- आज मैंने जो हिलती हुई सुन्दर मालाओं में आकुल हुए भ्रमरों के कारण ललित अलकों की शोभा को धारण कर रहा है और जो मधुर शब्दयुक्त वाद्य और लय के साथ नृत्य करती हुई वारांगनाओं की लीला से हिलते हुए वलय और नूपुर के नाद से रमणीय प्रतीत होता है; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।५।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणि-रत्न-हेम-
सारोज्ज्वलैः कलश-चामर-दर्पणाद्यैः।
सन्मंगलैः सततमष्टशत-प्रभेदै-
र्विभ्राजितं विमल-मौक्तिक-दामशोभम्।।६।।

अर्थ- आज मैंने जो मणि, रत्न और स्वर्ण से निर्मित एक सौ आठ प्रकार के कलश, चामर और दर्पण आदि समीचीन मंगलद्रव्यों से शोभित हो रहा है और जो निर्मल मौक्तिक मालाओं से सुशोभित है; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।६।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं वरदेववदारु-
कर्पूर-चन्दन-तुरुष्क-सुगन्धिधूपैः।
मेघायमानगगनं पवनाभिघात-
चञ्चच्चलद्विमल-केतन तुंग-शालम्।।७।।

अर्थ- आज मैंने जहाँ का उत्तुंग शाल उत्तम प्रकार के देवदारु, कपूर, चन्दन और तुरुष्क आदि सुगन्धित द्रव्यों से बने हुए सुगन्धित धूप से निकले हुए धूम्र के कारण मानो आकाश में मेघ ही छाये हों इस प्रकार की विचित्र शोभा को लिये हुए पवन के अभिघात से हिलती हुई पताकाओं से युक्त हो रहा है; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।७।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं धवलातपत्र-
च्छाया-निमग्न-तनु-यक्षकुमार-वृन्दैः।
दोधूयमान-सित-चामर-पङ्क्तिभासं,
भामण्डल-द्युतियुत-प्रतिमाभिरामम्।।८।।

अर्थ- आज मैंने धवल आतपत्र की छाया में लीन हुए यक्षकुमारों के कारण जो ढुरते हुए शुक्ल चामरों की पंक्ति की शोभा को धारण करता है और जो भामण्डल की द्युति से युक्त प्रतिमाओं के कारण अत्यन्त अभिराम लग रहा है; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।८।।

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विविधप्रकार-
पुष्पोपहार-रमणीय-सुरत्नभूमिः।
नित्यं वसन्ततिलकश्रियमादधानं,
सन्मंगलं-सकल-चन्द्रमुनीन्द्र-वन्द्यम्।।६।।

अर्थ- आज मैंने नाना प्रकार के पुष्पों के उपहार के कारण जहाँ की सुन्दर रत्नभूमि रमणीय लग रही है, जो निरन्तर बसन्त ऋतु में तिलक वृक्ष की शोभा को धारण करता है, जो सर्वोत्तम मंगलरूप है और जो सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान सुखकर मुनिराजों अथवा सकलचन्द्र नामक मुनिराज के द्वारा वन्दनीय है; ऐसे जिनेन्द्रभवन के दर्शन किये।।६।।

दृष्टं मयाद्य मणि-काञ्चन-चित्र तुङ्ग-
सिंहासनादि-जिनबिम्ब-विभूतियुक्तम्।
चैत्यालयं यदतुलं परिकीर्तितं मे,
सन्मङ्गलम् सकल-चन्द्रमुनीन्द्र-वन्द्यम्।।१०।।

अर्थ- आज मैंने जो मणि और कांचन के कारण विचित्र शोभा को लिये हुए उत्तुंग सिंहासन आदि विभूति से युक्त जिनबिम्ब से शोभायमान हो रहा है, जिसकी निरुपम कीर्ति गायी जाती है, जो मेरे लिए मंगलस्वरूप है और जो सम्पूर्ण चन्द्रमा के समान सुखकर मुनिराजों अथवा सकलचन्द्र नामक मुनिराज के द्वारा वन्दनीय है, ऐसे जिनचैत्यालय के दर्शन किये।।१०।।

जिनेन्द्रदेव के दर्शनों को मन्दिर में पहुँचा हुआ भक्त उक्त प्रकार का चिन्तन करे, जिससे सातिशय पुण्यास्रव होता है।

भजन

संसार के सागर में मिलते न किनारे हैं।
आ जाओ मेरे प्रभुवर हम तेरे सहारे हैं।।
गम से है भरी दुनिया कोई न हमारा है।
आ जाओ मेरे प्रभुवर हम तेरे सहारे हैं।।
जीवन का सफर लम्बा राहों में अंधेरा है।
आ जाओ मेरे प्रभुवर हम तेरे सहारे हैं।।
कहते हैं तेरे दर पे तकदीर संभरती है।
जो डूबने वाली है, वह नाव उभरती है।।
आ जाओ मेरे प्रभुवर हम तेरे सहारे हैं।।
संसार के सागर में मिलते न किनारे हैं।
आ जाओ मेरे प्रभुवर हम तेरे सहारे हैं।।

दर्शन स्तुति

{पं० दौलतरामजी कृत}

दोहा

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रस लीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन।।१।।

अर्थ- जो समस्त जानने योग्य पदार्थ हैं, उनके जाननेवाले हैं तो भी आत्मीक रस में लीन हैं तथा जो चार घातियाकर्मों से रहित हैं; ऐसे जिनेन्द्र भगवान् सदा जयवन्त हों।

जय वीतराग विज्ञान पूर, जय मोह तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनन्तानन्तधार, दृग सुख वीरज मण्डित अपार।।२।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! वीतराग विज्ञानता के पुंज, मोह रूप अन्धकार के नाश करने को सूर्य, अनन्तानन्त ज्ञान के धारक, अनंत–दर्शन, अनन्तसुख, अनंतवीर्य शोभायमान आप जयवंत हो।

जय परम शान्ति मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागन वश जोगे वशाय, तुम ध्वनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय।।३।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! परम शांति स्वरूप सहित भव्य जीवों को आत्म अनुभव के कारण आप जयवन्त हों तथा भव्य जीवों के पुण्य के उदय से एवं वचन योग द्वारा प्रगट हुई आपकी दिव्यध्वनि के सुनने से अनेक प्रकार के भ्रम दूर होते हैं।

तुम गुण चिन्तत निज पर विवेक, प्रगटे विघटे आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषण वियुक्त, सब महिमा युक्त विकल्प मुक्त।।४।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपके गुणों के चिन्तवन से आत्मा और पुद्‌गल आदि का विचार प्रगट होता है और अनेक प्रकार की आपदायें नाश होती हैं। आप जगत के भूषण हो तथा दूषण और विकल्पों से रहित हो, सर्व प्रकार की महिमा सहित हो।

अविरुद्ध शुद्ध चेतन सरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ अशुभ विभाव अभाव कीन, स्वाभाविक परणतिमय अक्षीण।।५।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आप विपरीतता रहित शुद्ध आत्म स्वरूप हो तथा परमात्मा हो, परम पवित्र हो, उपमा रहित हो, तथा हे जिनेन्द्र ! आपने शुभ–अशुभ कर्मजनित उपाधिरूप परिणामों का नाश किया है और स्वाभाविक परिणति में अच्छी तरह लीन हो।

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टय में राजत गम्भीर।
मुनि गणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धि रमा धरन्त।।६।।

अर्थ- हे धीर ! आप अठारह दोषों से रहित हो तथा स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव से अत्यन्त शोभायमान हो तथा गणधरादि मुनियों से सेवित नव केवल लब्धिरूप लक्ष्मी के धारक हो।

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहें सदीव।
भवसागर में दुख क्षार वारि, तारण को और न आप टारि।।७।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आपकी आज्ञा को पालन कर हमेशा अनंत जीव मोक्ष गये हैं तथा जाते हैं और जायेंगे। संसाररूपी समुद्र में दुखरूपी खारा जल है, उससे पार उतारने के लिये आपको छोड़कर और कोई समर्थ नहीं है।

यह लख निज दुख गद हरणकाज, तुम ही निमित्त कारण इलाज।
जानें तातें मैं शरण आय, उचरो निज दुख जो चिर लहाय।।८।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! इस बात को विचार कर कि मेरे दुखरूपी रोग को दूर करने के लिये आप ही निमित्त कारण औषधि हो, ऐसा जानकर मैं आपकी शरण लेता हूँ, और मैंने जो बहुत काल से दुख भोगे हैं उन्हें कहता हूँ।

मैं भ्रमो अपनपो बिसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्य पाप।
निज को पर को कर्त्ता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।९।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! मैं आत्मा को भूलकर स्वयं ही भ्रम्या और कर्मों के फल पुण्य–पाप को अपना स्वरूप जाना और आत्मा को पुद्गल आदि का कर्त्ता पहिचाना और पुद्गल आदि में इष्ट–अनिष्ट बुद्धि धारण की।

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परणति में आपो चितार, कबहूं न अनुभव स्वपद सार।।१०।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! जैसे हिरण मृग–तृष्णा को जल समझकर तृष्णा से अज्ञान धारण कर आकुलित होता है, वैसे ही अज्ञान से दुख पाया, और शरीर की परिणति में आत्मस्वरूप मानकर कभी भी अपने में इष्ट पद का अनुभव न किया।

तुमको जाने बिन जो कलेश, पायो सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुर गति मँझार, भव धर-धर मर्‌यो अनंत वार।।११।।

अर्थ- हे जिनेश ! आपको जाने बिना जो दुख पाये हैं, वे सब आप जानते हो। पशु, नारकी, मनुष्य, देव का शरीर धारण कर मैं अनन्त बार मरा।

अब काललब्धि बल तें दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांति भयो मिट सकलद्वंद्व, चाख्यो स्वातम रस दुख-निकंद।।१२।।

अर्थ- हे दयालु ! अब काल–लब्धि के बल से आपका दर्शन पाकर प्रसन्न हुआ। सर्व प्रकार की चिन्तायें दूर होकर मन शांत हुआ तथा दुखों का नाश करने वाला आत्मरस का अनुभव किया।

तातैं ऐसी अब करो नाथ, बिछुड़े न कभी तुम चरण साथ।।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जगतारण को तुम विरद एव।।१३।।

अर्थ- इसलिए हे जिनेन्द्र ! अब ऐसा करो जिससे कभी भी आपके चरणों का साथ नहीं छूटे। आपके गुणों के समूह की सीमा नहीं है। संसार से पार कराने में आप ही समर्थ हो।

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परणति न जाय।
मैं रहूँ आप में आप लीन, सो करो होऊँ जो निजाधीन।।१४।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आत्मा को दुख देने वाले विषय कषायों में मेरा भाव न जावे। ऐसा कीजिए जिससे मैं आत्मस्वरूप में लीन रहूँ तथा जिससे स्वाधीन हो जाऊँ।

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारण सु आप, शिव करो हरो मम मोह ताप।।१५।।

अर्थ- हे स्वामिन् ! मेरी और कुछ वांछा नहीं है। मुझे तो रत्नत्रय (सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र) रूपी निधि दीजिए। हे मुनीश ! मेरे कार्य सिद्धि होने में आप ही कारण हो। मेरा मोह रूपी दुख का नाश कर मोक्ष की प्राप्ति करा दो।

शशि शांति करण तप हरण हेत ! स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभव तें भव नशाय।।१६।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! जैसे चन्द्रमा शांति करने और गर्मी के हरने का कारण है, वैसे ही आप भी स्वयमेव सुख देते हो। जैसे अमृत के पीने से रोग नाश होता है वैसे ही आपका स्वरूप चिंतवन करने से संसार भ्रमण का नाश होता है।

त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज दुःख, जलधि उतारन तुम जहाज।।१७।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! तीन लोक और तीन कालों में आपके सिवाय और कोई सुख देने वाला नहीं है, मेरे हृदय में आज अच्छी तरह से विश्वास हुआ कि दुखरूपी समुद्र से पार करने को आप ही जहाज हो।

दोहा

तुम गुणगण मणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
"दौल" स्वल्पमति किम कहें, नमौं त्रियोग सम्हार।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आपके गुणों के समूह रूपी रत्नों की गिनती करते हुए गणधर महाराज भी पार नहीं पा सकते तो अल्पबुद्धि 'दौलतराम कवि' किस तरह कह सकता है?

पूजन विधि

श्रावकों की भूमिका में पूजन का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः प्रत्येक श्रावक श्राविका को प्रतिदिन प्रातः विधि पूर्वक देव–शास्त्र–गुरु महाराज की भक्ति पूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजन नियमित रूप से करनी चाहिये।

प्रातः नित्य क्रियाओं से निवृत्त होने के अनन्तर स्नान करके शुद्ध वस्त्राभूषण (धोती–दुपट्टा) पहनकर पूजन की तैयारी करनी चाहिए।

प्रस्तुत अष्ट द्रव्य (पूजन सामग्री) अपने घर पर ही तैयार कर लेना चाहिए या मन्दिर जी में तैयार करना चाहिए।

सर्वप्रथम पूजन सामग्री का शोधन कर लेना चाहिए। इसके अनन्तर शुद्ध प्रासुक जल से धो–पोंछकर दो छोटे कलशों में जल एवं चन्दन रखकर थाली में क्रम से अक्षत (सफेद चावल), पुष्प (पीले चावल), नैवेद्य (चटक), दीप (पीली चटक) धूप, फल (बादामादि), अर्घ्य (अष्ट द्रव्य का मिश्रण) रखना चाहिए।

पूजन उपकरण-

☞ शुद्ध जल लाने के लिए एक बाल्टी, एक कलश।

☞ पानी छानने का वस्त्र।

☞ सामग्री रखने शोधन करने एवं धोने के लिए उपयुक्त बर्तन। पूजन करते समय एक टेबल, दो चौकी, एक थाल अभिषेक के लिए, चार कलश।

☞ एक शान्तिधारा के लिए बिना टोंटी का कलश, एक सहयोगी कलश, चार कलश।

☞ पूजन के लिए, एक थाल सामग्री हेतु तथा एक थाल सामग्री चढ़ाने हेतु।

पूजन के अंगः- जैनाचार्यों ने पूजन के छः अंग प्रतिपादित किये हैं।

१. **अभिषेक** – भक्तिपूर्वक विधि–विधान के साथ मंत्रपूर्वक श्री जी का न्हवन करने को अभिषेक कहते हैं।

२. **आह्वानन**– देवाधिदेव के आमन्त्रण की विधि को आह्वानन कहते हैं।

३. **स्थापना**– ठोने में तीन–तीन पुष्पों (अखंड पीले तंदुलों) अथवा पुष्प पुञ्ज को स्थापित करने के माध्यम से इष्टदेव को स्थापित करने की प्रक्रिया को स्थापना कहते हैं।

४. **सन्निधिकरण**– प्रभु को हृदयंगम करने की विधि को सन्निधिकरण कहते हैं।

५. **शान्तिपाठ**– पूजन के अनन्तर स्व–पर शान्ति की भावना से पाठोच्चारण करने को शान्तिपाठ कहते हैं।

६. **विसर्जन**– पूजन समापन की क्रिया को विसर्जन कहते हैं।

पूजन करने वाला, एक दिन पूज्यता को प्राप्त कर लेता है। देव शास्त्र गुरु चरणों में समर्पित भक्त, एक दिन मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

अभिषेक पूर्व आवश्यक क्रियाएं

जलशुद्धिमंत्र

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पद्ममहापद्मतिगिंछ-केसरि-पुण्डरीकमहापुण्डरीकगंगासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारी नरकान्ता सुवर्णरूप्यकूला रक्ता रक्तोदाः क्षीराम्भोधिजलसुवर्णघटप्रक्षिप्तं नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतादिवीजपूरितं पवित्रं कुरु कुरु झौं झौं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं ह्रीं नमः स्वाहा।

अमृतस्नान मंत्र

ओं ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणी अमृतं स्रावय स्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय सं हं झ्वीं क्ष्वीं ठः ठः हं सः स्वाहा।

दिग्वन्दना

ओं ह्रां णमो अरिहंताणं ह्रां पूर्वदिशासमागतान् विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

उक्त मंत्र पढ़कर पूर्व दिशा में पीले चावल या सरसों क्षेपें।

ओं ह्रीं णमो सिद्धाणं ह्रीं दक्षिणदिशासमागतान् विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

उक्त मंत्र पढ़कर दक्षिण दिशा में पुष्प या सरसों क्षेपें।

ओं ह्रूं णमो आइरियाणं ह्रूं पश्चिमदिशासमागतान् विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

उक्त मंत्र पढ़कर पश्चिम दिशा में पुष्प या सरसों क्षेपें।

ओं ह्रौं णमो उवज्झायाणं ह्रौं उत्तरदिशासमागतान् विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

उक्त मंत्र पढ़कर उत्तर दिशा में पुष्प या सरसों क्षेपें।

ओं ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं ह्रः सर्वदिशासमागतान् विघ्नान् निवारय निवारय मां रक्ष रक्ष स्वाहा।

उक्त मंत्र पढ़कर सभी दिशाओं में पुष्प या सरसों क्षेपें।

परिणाम-शुद्धि-मंत्र

विधिं विधातुं यजनोत्सवेऽहं गेहादिमूर्च्छामपनोदयामि।
अनन्यचित्ताकृतिमादधामि स्वर्गादिलक्ष्मीमपि हापयामि।।

उक्त श्लोक पढ़कर गृहस्थी के कार्यों से उत्सव पर्यन्त विरत रहने की प्रतिज्ञा करें, करावें।

तिलक मंत्र

पात्रेऽर्पितं चन्दनमौषधीशं शुभ्रं सुगंधाहृतचंचरीकम्।
स्थाने नवांके तिलकाय चर्च्यं न केवलं देहविकारहेतोः।।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उसा मम सर्वाङ्गशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

तिलक के नौ स्थान

शिखा शीश की जान ललाट गिनीजिये।
कंठ हृदय अरु कान भुजा शुभ लीजिए।
पीठ हाथ अरु नाभि सरस शुभ लीजिए।
तव जिनवर को जजैं तिलक नव दीजिए।

रक्षासूत्र बन्धन

सम्यक् पिनद्धनवनिर्मलरत्नपंक्तिरोचि वृहद्वलयजातबहुप्रकारम्।
कल्याणनिर्मितमहं कटकं जिनेश पूजाविधानललिते स्वकरे करोमि।।

ओं ह्रीं नमोऽर्हते सर्व रक्ष रक्ष हूं फट् स्वाहा।

यज्ञोपवीतधारण मंत्र

पूर्वपवित्रतरसूत्रविनिर्मितं यत् प्रीतः प्रजापतिरकलपयदंगसंगि।
सद्भूषणं जिनमहे निजकण्ठधार्यं यज्ञोपवीतमहमेष तदाऽऽतनोमि।।

ओं नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकरणायाहम् रत्नत्रय-स्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा।

रक्षा मंत्र

ओं हूं क्षूं फट् किरिटिं किरिटिं घातय घातय परविघ्नान् स्फोटय स्फोटय सहस्त्रखण्डान् कुरु कुरु परमुद्रां छिन्द छिन्द परमंत्रान् भिन्द भिन्द क्षां क्षः वाः वाः हूं फट् स्वाहा (अपने शिर पर पुष्प क्षेपण करें)।

शान्ति मंत्र

ओं नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये नमः श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्वविघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपरकृच्छुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वक्षामडामरविघ्नविनाशनाय ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा मम सर्व-शान्तिं तुष्टिं पुष्टिं च कुरु कुरु स्वाहा।

(यह मंत्र पढ़कर चारों दिशाओं में पुष्प या सरसों क्षेपें)

ओं मुकुट-माला-कुण्डल-रत्न-मुद्रिकाकटिसूत्रादि अवधारयामि।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा णमो अरिहंताणं अनाहत पराक्रमस्ते इन्द्रो भवतु भवतु ह्रीं नमः स्वाहा। (इन्द्र बनने का संकल्प करें शिर पर पुष्प छोड़ें)

मंगल कलश स्थापना मंत्र

ओं अद्य भगवतो महापुरुषस्य श्रीमदादिब्रह्मणोमतेऽस्मिन् विधीयमाने महोत्सव-कर्मणि........................वीरनिर्वाणाब्दे........................ मासे........ ....पक्षे.............. तिथौ......................दिने मण्डपभूमिशुद्धयर्थं पात्रशुद्धयर्थं शान्त्यर्थं पुष्याहवाचनार्थं नवरत्नगन्धपुष्पाक्षतश्रीफलादिशोभितं शुद्धप्रासुकतीर्थजलपूरितं मंगलकलशं स्थापनं करोमि श्रीं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहां।

दीप स्थापना

रुचिरदीप्तिकरं शुभदीपकं सकललोकसुखाकरमुज्ज्वलम्।
तिमिरजालहरं शिवदं सदा किल धरामि सुमंगलकं मुदा।।

ओं ह्रीं अज्ञानतिमिरहरं दीपकं स्थापयामि।

सिद्धयंत्र स्थापना

मध्ये तेजः ततः स्याद् बलयमथधनुः संख्य कोष्ठेषु पंच,
पूज्यान्संस्थाप्यवृत्ते तत उपरितने द्वादशाम्भोरुहाणि।।
तत्र स्यु मंगलान्युत्तमशरण-पदान् पंच पूज्यामरषीन्।
धर्मप्रख्याति भाजः त्रिभुवनपतिना वेष्ठयेदं कुशाढ्याम्।।

इति पठित्वा उच्चचतुष्पादे अभिषेकस्थाल्यां सिंहासने सिद्धयंत्रं स्थापनं विदधीत।

अभिषेकपाठः

(माघनन्दिकृत)

श्रीमन्नतामरशिरस्तटरत्नदीप्ति-
तोयावभासि-चरणाम्बुज-युग्ममीशम्।
अर्हन्तमुन्नत-पद-प्रदमाभिनम्य-,
तन्मूर्तिषूद्यदभिषेक-विधिं करिष्ये।।१।।

अर्थ- शोभासम्पन्न नमन करते हुए देवों के माथे पर शोभित रत्नमुकुटों की प्रभा से जिनके चरण कमल प्रतिभासित हो रहे हैं ऐसे भगवन्त अर्हंत को, जो श्रेष्ठ पद देने वाले हैं, नमस्कार कर उनकी प्रतिमाओं का विधि पूर्वक अभिषेक करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा करता हूँ।

अथ पौर्वाह्निक माध्याह्निक अपराह्निक देववन्दनायां-पूर्वाचार्यानु-क्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भावपूजा वन्दनास्तव-समेतं श्री पंचमहागुरुभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ- अब प्रातः कालिक देववन्दना को प्राचीन आचार्यों के द्वारा कहे अनुक्रम के अनुसार, सभी कर्मों के क्षय के लिए—भावपूजा—स्तवन वन्दना से युक्त होकर मैं पंचमहागुरुभक्ति पूर्वक कायोत्सर्ग करता हूँ।

(प्रातः काल पूजन करते समय पौर्वाहिक। दोपहर में माध्याहिक। सांय के समय अपराहिक बोलें ९ बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

याः कृत्रिमास्तदितराः प्रतिमा-जिनस्य
संस्नापयन्ति पुरुहूत-मुखादयस्ताः।
सद्भावलब्धि समयादि निमित्तयोगा-
त्तत्रैवमुज्ज्वलधिया कुसुमं क्षिपामि।।२।।

अर्थ- भगवान् की कृत्रिम—अकृत्रिम जो प्रतिमायें हैं, जिनका इन्द्रादिक प्रमुख देव अभिषेक करते हैं, आज सद्भाव पूर्वक शुभोपयोग के कारणभूत निर्मल बुद्धि से उनके चरणों में पुष्पांजलि क्षेपण करता हूँ।

(इति अभिषेक प्रतिज्ञायै पुष्पांजलिं क्षिपामि।)

श्री पीठक्लृप्ते विशदाक्षतौघैः श्रीप्रस्तरे पूर्णशशांककल्पे।
श्रीवर्तके चन्द्रमसीति वार्तां सत्यापयन्तीं श्रियमालिखामि।।३।।

ओं ह्रीं अर्हं श्रीलेखनं करोमि।

अर्थ- पूर्ण चन्द्र के तुल्य चन्दन की शिला पर स्वच्छ अक्षत समूह से श्री वर्तक में चन्द्र हो इस बात का सत्यापन करता हुआ 'श्री' लिखता हूँ।

कनकाद्रिनिभं कम्रं पावनं पुण्यकारणम्।
स्थापयामि परं पीठं जिनस्नपनाय भक्तितः।।४।।

ओं ह्रीं श्रीपीठस्थापनं करोमि।

अर्थ- कनकाद्रि के तुल्य मनोज्ञ, पवित्र, पुण्योत्पादक श्रेष्ठ पीठ को भक्ति पूर्वक जिनेन्द्र स्नपन के लिए स्थापित करता हूँ।

भृंगार-चामर-सुदर्पण-पीठ-कुम्भ-
तालध्वजातप-निवारक-भूषिताग्रे,
वर्धस्व नन्द जय-पाठ-पदावलीभिः,
सिंहासने जिनभवन्तमहं श्रयामि।।५।।

ओं ह्रीं अर्हं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथभगवन्निह सिंहासने तिष्ठ-तिष्ठ।

अर्थ- झारी, चमर, दर्पण, कुम्भ, आतप निवारक ध्वजा से विभूषित सिंहासन पर वर्धस्व–वर्धस्व, जय–जय इत्यादि मंगल पाठोच्चारण के साथ जिनेन्द्र भगवान् को विराजमान कर रहा हूँ।

(घंटा बजाते हुए वेदी से भगवान् की मूर्ति लाकर सिंहासन पर स्थापित करें)

श्री तीर्थकृत् स्नपन -वर्य-विधौ सुरेन्द्रः
क्षीराब्धिवारिभिरपूरयदुद्धकुम्भान्।
तादृशानिव विभाव्य यथार्हणीयान्-,
संस्थापये कुसुम-चन्दन-भूषिताग्रान्।।६।।

ॐ ह्रीं स्वस्तये चतुःकोणेषु चतुःकलशस्थापनं करोमि।

अर्थ- जिनेन्द्रदेव की जन्माभिषेक की क्रिया से इन्द्र ने क्षीरसागर के जल से कलशों को भरा था। उनको उसी प्रकार मानकर यथायोग्य कुसुम और चन्दन से भूषित करके आगे स्थापित कर रहा हूँ।

आनन्द-निर्भर-सुर-प्रमदादि-गानै-
र्वादित्र-पूर-जयशब्द-कल-प्रशस्तैः।
उद्गीयमान जगतीपति-कीर्तिमेनां-
पीठस्थलीं वसुविधार्चन-योल्लसामि।।७।।

ओं ह्रीं श्री स्नपनपीठस्थिताय जिनाय अर्घ्यम् नि० स्वाहा।

अर्थ- आनन्द से भरपूर देवांगनाओं के मंगल गीत और वादित्रों से पूरित जयध्वनि के मंगल शब्द से युक्त जगतपति की कीर्ति के गान से मुखरित इस पीठस्थली की अष्ट द्रव्य से अर्चना करता हूँ।

कर्म-प्रबंध-निगडैरपि हीनताप्तं,
ज्ञात्वापि भक्तिवशतः परमादिदेवम्।
त्वां स्वीयकल्मषगणोन्मथनाय देव-,
शुद्धोदकैरभिनयामि महाभिषेकम्।।८।।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतरजलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा।

अर्थ- कर्म जंजीर से बद्धहीनता को प्राप्त फिर भी भक्ति से देवाधिदेव को नय और प्रमाण से जानकर अपने पाप समूह को विनाश करने के लिए हे देव ! आपका शुद्ध उदक से अभिसिंचन कर रहा हूँ।

दूरावनम्र-सुरनाथ-किरीट-कोटी-
संलग्न-रत्न-किरणच्छवि-धूसरांघ्रिम्।
प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टै-
र्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाऽभिषिंचे।।९।।

ओं ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालुसन्तं श्रीवृषभादि महावीर-पर्यन्त-चतुर्विंशति तीर्थंकर-परमदेवं मध्यलोके जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे.... प्रदेशे...... नाम्निनगरे...........जिनालये...........वीरनिर्वाणसंवत्सरे मासानामुत्तमे ....मासे.........पक्षे........... शुभदिने मुन्यार्यिका, श्रावक-श्राविकाणां सकलकर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिंचे।

अर्थ- दूर से नत देवराज इन्द्र के मुकुट में संलग्न मणियों की किरण कांति से जिनके चरण प्रतिबिंबित हो रहे हैं, प्रस्वेद और तापमल से मुक्त हैं, ऐसे जिनपति का उत्तम जल से भक्ति पूर्वक स्नपन कर रहा हूँ।

तीर्थोत्तमभवै-र्नीरैः क्षीर-वारिधिरूपकैः।
स्नपयामि जन्माप्तान् जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान्।।१०।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरान्तान् जलेन स्नपयामि स्वाहा।

अर्थ- क्षीरसागर के जल के तुल्य उत्तम तीर्थ के जल से जन्मोत्सव में पूजित सर्व सिद्धिदायक जिनेन्द्रों का स्नपन कर रहा हूँ।

सकल-भुवन-नाथं तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रै-
रभिषव-विधि-माप्तं स्नातकं स्नापयामः।
यदभिषवन-धारां बिन्दुरेकोऽपि नृणां
प्रभवति हि विधातुं भुक्ति सन्मुक्तिलक्ष्मीम्।।११।।

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं सः झं वं हः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रः द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति वृहच्छांतिमंत्रेणाभिषेकं करोमि।

अर्थ- तीन लोक के नाथ जिनका इन्द्रराज द्वारा पाण्डुकशिला पर अभिषेक किया गया है उन केवलज्ञानी जिनेन्द्र का हम स्नपन कर रहे हैं जिनके अभिषेक के जल की एक बूँद भी मनुष्यों को संसार के सुख और मोक्षलक्ष्मी देने में समर्थ है।

(उक्त मंत्र को पढ़कर चारों कोनों में रखे हुए कलशों से अभिषेक करें)

शान्तिधारा

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। श्री वीतरागाय नमः। ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पार्श्वतीर्थंकराय द्वादशगणपरिवेष्टिताय, शुक्लध्यान-पवित्राय, सर्वज्ञाय, स्वयंभुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने, परमसुखाय, त्रैलोक्यमहीव्याप्ताय, अनन्तसंसारचक्रपरिमर्दनाय, अनंतदर्शनाय, अनंतज्ञानाय, अनन्तवीर्याय, अनन्तसुखाय, सिद्धाय, बुद्धाय, त्रैलोक्य- वशंकराय, सत्यज्ञानाय, सत्यब्रह्मणे, धरणेन्द्रफणामण्डलमण्डिताय, ऋष्यार्यिका-श्रावक-श्राविका-प्रमुख- चतुस्संघोपसर्ग-विनाशनाय, घातिकर्म-विनाशनाय, अघातिकर्मविनाशनाय,

अर्थ- मंगलमय सिद्ध परमेष्ठी के लिए नमस्कार हो। श्री वीतराग भगवान् को नमस्कार हो। मंगलमय अरहंत भगवान् को नमस्कार हो। अन्तरंग–बहिरंग लक्ष्मी से युक्त पार्श्वनाथ तीर्थंकर (जो) बारह सभाओं से घिरे हुये हैं। शुक्ल–ध्यान से पवित्र हैं। सर्वज्ञ हैं। स्वयंभू हैं। सिद्ध हैं। उत्कृष्ट आत्मा हैं। परम सुख से युक्त हैं। तीनो लोकों में जिनका ज्ञान व्याप्त है। अनन्त संसार रूपी चक्र को नष्ट करने वाले हैं। अनन्तदर्शन से युक्त हैं। अनन्तज्ञान के धारी हैं। अनन्त शक्तिशाली हैं। अनन्तसुख को प्राप्त करने वाले हैं। सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, तीनों लोकों को वश में करने वाले हैं। सत्यज्ञान (केवलज्ञान) से युक्त हैं। सत्य ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करने वाले हैं। धरणेन्द्रदेव के फण रूपी मण्डल से मण्डित हैं। ऋषि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, ये चार प्रमुख संघों के उपसर्गों को नष्ट करने वाले हैं। घातियाकर्मो को नष्ट करने वाले हैं। अघातियाकर्मों को नष्ट करने वाले हैं इत्यादि विशेषणों से युक्त श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर को नमस्कार हो।

अपवायं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
मृत्युं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
अतिकामं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
रतिकामं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।

क्रोधं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
अग्निं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वशत्रुं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वोपसर्गं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वविघ्नं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वभयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वराज्यभयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वचौर-भयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वदुष्टभयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वमृगभयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वपरमंत्रं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वशूलरोगं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वक्षयरोगं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वकुष्ठरोगं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वक्रूररोगं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वनरमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वगजमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वाश्वमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वगोमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वमहिषमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्व धान्यमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्ववृक्षमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वगलमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वपुष्पमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वफलमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वराष्ट्रमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।

सर्वदेशमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वविषमारीं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्ववेतालशाकिनीभयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्ववेदनीयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वमोहनीयं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।
सर्वकर्माष्टकं छिन्धि छिन्धि, भिन्धि भिन्धि।

अर्थ- हमारे अपवायों (पापों) का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

मृत्यु का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

अतिकाम (वासना) का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

रति (प्रेम) का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

क्रोध का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

अग्नि का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी शत्रुओं का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी उपसर्गों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी विघ्नों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी भयों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी राज्य सम्बन्धी भयों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी चौर विषयक भयों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी दुष्ट प्राणियों सम्बन्धीं भयों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी मृग सम्बन्धी भयों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी परकृत मन्त्रों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी शूल रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी क्षय रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी कुष्ट रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के क्रूर रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के मनुष्य नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के हाथियों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के घोड़ों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार की गायों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के भैसों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के धान्यों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के वृक्षों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के गल (पक्षियों) के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के पत्तों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के फूलों के नाशक रोगों का छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के राष्ट्रीय प्राणियों को नष्ट करने वाले रोगों को छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के देश के प्राणियों को नष्ट करने वाले रोगों को छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के विषैले जीवों को मारने वाले रोगों को छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के वेताल, शाकनी, डाकनी, सम्बन्धी भय को छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के वेदना को छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के मोह को छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

सभी प्रकार के कर्मों को छेदन–छेदन, भेदन–भेदन करें।

ॐ सुदर्शन-महाराज-चक्रविक्रमतेजोबलशौर्यवीर्यशान्तिं कुरु कुरु। सर्वजनानन्दनं कुरु कुरु। सर्व-भव्यानन्दनं कुरु कुरु। सर्व-गोकुलानन्दनं कुरु कुरु। सर्वग्रामनगरखेटकर्वटमटंबपत्तणद्रोणमुख संवाहानंदनं कुरु कुरु। सर्वलोकानन्दनं कुरु कुरु। सर्वदेशानन्दनं कुरु कुरु। सर्व-यजमानानन्दनं कुरु कुरु। सर्वदुःखं, हन हन, दह-दह, पच-पच, कुट-कुट, शीघ्रं शीघ्रं।

अर्थ- हे मंगल स्वरूप सुदर्शन चक्र (सम्यग्दर्शन रूपी महाराज) ! आप चक्रवर्ती के विक्रम (प्रभाव) को, तेज को, बल को, शौर्य को, शक्ति को और शान्ति को (प्रदान) करो, करो।

सभी जन समुदाय को आनन्दित, करो करो। सभी भव्य जीवों को आनन्दित करो करो। सभी गुरुकुलों को आनन्दित करो–करो। सभी ग्राम–नगर–खेट–कर्वट–मटंब–पत्तन–द्रोणमुख–संवाह में रहने वाले जीवों को आनन्दित करो–करो। सभी लोक को आनन्दित करो–करो। देश के सभी जीवों को आनन्दित करो–करो। सभी यजमानों (अभ्यागंतों) को आनन्दित करो–करो। शीघ्र–शीघ्र सभी दुःखों को हनन करो, हनन करो, दहन करो, दहन करो, पचा दो, पचा दो, कूट दो, कूट दो।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिर्व्यसनवर्जितम्।
अभयं क्षेममारोग्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते।।

अर्थ- हे जीव ! तीन लोकों में जो व्यसन और व्याधियों से रहित सुख कहा गया है तथा वह निर्भयता–कुशलता, आरोग्यता एवं कल्याण पद को तुम सभी प्राप्त हो।

शिवमस्तु ! कुल-गोत्र-धन-धान्यं सदास्तु।
चन्द्रप्रभ-वासुपूज्यमल्लि-वर्द्धमान-पुष्पदन्त-
शीतल-मुनिसुव्रत-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ इत्येभ्यो नमः।
(शान्तिरस्तु,शान्तिरस्तु,शान्तिरस्तु।)

अर्थ- आपका कल्याण हो कुल, गोत्र, धन, एवं धान्य की आपको सदा प्राप्ति हो। चन्द्रप्रभ–वासुपूज्य–मल्लिनाथ–महावीरस्वामी–पुष्पदंत–शीतलनाथ – मुनिसुव्रतनाथ–नेमिनाथ–पार्श्वनाथ आदि के लिए नमस्कार।

(शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो)

पानीय-चन्दन-सदक्षत-पुष्प-पुंज-
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फल-ब्रजेन।
कर्माष्टक-क्रथन-वीर-मनन्त-शक्तिः-
संपूजयामि महसा महसां निधानम्।।१२।।

ओं ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, द्वीप, धूप, फलों के समूह से अष्ट कर्म को नष्ट करने में वीर अनन्त शक्ति वाले कल्याणों के निधान भगवान् को हर्ष पूर्वक पूजता हूँ।

हे तीर्थपा-निजयशो-धवली-कृताशाः
सिद्धौषधाश्च भव-दुःख-महागदानाम्।
सद्भव्य, हृज्जनित-पंक-कबंध-कल्पाः
यूयं जिनाः सतत- शान्तिकरा भवन्तु।।१३।।

शान्त्यर्थं पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अर्थ- अपने यश से दशों दिशाओं को शुभ करने वाले संसार के दुःखों की अमोघ औषधि रूप हे जिनेन्द्रदेव ! आप सद्भक्त के हृदय में उत्पन्न पाप पंक के नाश करने वाले हैं। सभी जिनेन्द्र भगवान् पूर्ण शान्ति देने वाले हों।

नत्वा मुहुर्निजकरै-रमृतोपमेयैः
स्वच्छै-र्जिनेन्द्र! तव चन्द्र-करावदातैः।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितांतरम्ये
देहे स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि।।१४।।

ओं ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बमार्जनं करोमि।

अर्थ- अमृत के समान सुखद चन्द्र किरण सम आपको बार–बार नमस्कार करता हुआ आपके सुन्दर देह पर स्थित जलकणों का अपने हाथ में लिए हुए अत्यन्त सुन्दर स्वच्छ वस्त्र से परिमार्जन करता हूँ।

स्नानं विधाय-भवतोऽष्ट सहस्त्र-नाम्ना-
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।
जिघृक्षु-रिष्टिमिनः तेऽष्टतर्यी विधातुं-
सिंहासने विधिवदत्र निवेशयामि।।१५।।

ओं ह्रीं अभिषेकानन्तरं जिनबिम्बं वेदिकामध्ये स्थापयामि।

अर्थ- स्नपन करके आपके एक हजार आठ नामों के उच्चारण से मन और वचनों की विशुद्धि होती है। उसी विशुद्धि की इच्छा करता हुआ आपको सिंहासन पर विधपूर्वक स्थापित करता हूँ।

(यह छन्द पढ़कर श्री जिनबिम्ब को वेदी में विराजमान करें)

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैश्चरु-दीप-सुधूपकैः।
फलैरर्घ्यै जिनमर्चे जन्मदुःखापहानये ।।१६।।

ओं ह्रीं श्रीं सिहांसनस्थितजिनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल और अर्घ्य से जन्म मरण के दुःख को मिटाने के लिए भगवान् जिनेन्द्र की अर्चना करता हूँ।

इमे नेत्रे जाते सुकृत् जलसिक्ते सफलिते,
ममेदं मानुष्यं कृति-जनगणादेयमभवत्।
मदीयाद्भल्लाट्टादशुभवसुकर्माटनमभूत्,
सदेदृक् पुण्यार्हन् मम भवतु ते पूजन-विधौ।।

अर्थ- मेरे ये दोनों नेत्र पावन जल के स्पर्श से सफल हो गये। मेरी मनुष्य पर्याय कृतिजनों की गणना में आ गई। आज मेरे ललाट से अशुभ कर्मों की रेखा मिट गई। हे अर्हन्! आपकी पूजन विधि से सम्यग्दर्शन रूप पुण्य लाभ मुझे प्राप्त होवे।

(यहाँ पुष्पवृष्टि करें)

मुक्ति-श्री वनिता-करोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं-
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्रचक्रपदवी राज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलता संवृद्धि-सम्पादकं,
कीर्ति-श्री जयसाधकं तव जिनस्नानस्य गंधोदकम्।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र देव ! आपके स्नान का जल–गंधोदक मोक्षरूपी लक्ष्मी के हाथों से गृहीत असाधारण जल है। नागेन्द्र, देवेन्द्र और चक्रवर्तियों के राज्याभिषेक को सम्पन्न करने वाला है। सम्यग्दर्शन ज्ञान–चारित्ररूपी लता की संद्धि कराने वाला है तथा यशलक्ष्मी एवं जय का साधक है।

गन्धोदकवन्दन मन्त्र

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पापनाशनम्।
जिनगन्धोदकं वन्दे, कर्माष्टकविनाशकम्।।

अर्थ- यह गन्धोदक स्वयं निर्मल है, एवं निर्मलता प्रदान करने वाला है, आठों कर्मों को नष्ट करने वाला है इसलिए मैं इसकी वन्दना करता हूँ।

(उक्त पद्य को पढ़ते हुए नेत्रों एवं मस्तक पर गन्धोदक लगाना चाहिए)

यंत्राभिषेक

स्नात्वा शुभाम्बरधरः कृतस्वान्त गुप्तिः,
यंत्रं निवेश्य शुचि-पीठवरे विशाले।
ॐ भूर्भुवः स्वरिह मंगलयंत्रमेतत्,
विघ्नौघवारकमहं परिषेचयामि।।

ॐ भूर्भुवः स्वरिह विघ्नौघवारकं यंत्रं वयं परिषेचयामः।

(उक्त पद्य एवं मंत्र को पढ़कर यंत्र का अभिषेक किया जावे)

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होयके, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ।।१।।

अर्थ- इह विधि अर्थात् पूजन के लिए खड़े होने की जो विधि आगम में वर्णित है उस विधि से विनय पूर्वक खड़े होकर जिनेन्द्र भगवान् की विनय के लिये सर्वप्रथम विनय पाठ पढ़ता हूँ। हे जिनेन्द्र भगवन् ! आप आठ कर्मों का नाश कर धन्य हो गये हो।

अनंत चतुष्टय के धनी, तुमही हो सिरताज।
मुक्ति-वधू के कंत तुम, तीन भुवन के राज।।२।।

अर्थ- हे भगवन् ! आप अनंतसुख, अनंतदर्शन, अनंतज्ञान और अनंतवीर्यरूप अनंतचतुष्टय के स्वामी हो, तीनों लोकों में सर्व श्रेष्ठ हो, मोक्ष रूपी वधू के स्वामी (पति) हो एवं तीनों लोकों के राजा हो।

तिहुँ जग की पीड़ा-हरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिवसुख के करतार।।३।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! आप तीनों लोकों के जीवों के दुःखों को नष्ट करने वाले हो, संसार रूपी समुद्र को सुखा देने वाले हो, विश्व को जानने वाले हो, और मोक्ष सुख के करने वाले हों।

हरता अघ अंधियारके, करता धर्मप्रकाश।
थिरता पद दातार हो, धरता निजगुण रास।।४।।

अर्थ- हे नाथ ! आप पापों के अंधकार को नाश करने वाले हो, धर्मरूपी प्रकाश के करने वाले हो, स्थिर पद अर्थात् मोक्ष पद (सिद्ध पद) के देने वाले हो और आप अपने ही अनंत गुणों की राशि के स्वामी हो।

धर्मामृत उर जलधिसों ज्ञानभानु तुम रूप।
तुमरे चरण-सरोज को, नावत तिहुं जग भूप।।५।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपका ह्रदय धर्मरूपी अमृत से भरे बादलों के समान है, आपका स्वरूप ज्ञान के सूर्य के समान है, आपके चरणरूपी कमलों मे तीनों लोकों के राजा नमन करते हैं।

मैं बंदौं जिनदेवको, कर अति निर्मल भाव।
कर्मबंध के छेदने, और न कछु उपाव।।६।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् मैं भी आपकी अत्यन्त निर्मल भावों से वन्दना करता हूँ क्योंकि कर्मों के बन्ध को नष्ट करने के लिए आप ही समर्थ हैं, आपकी पूजा वन्दना के अलावा कर्मबन्ध नष्ट करने का और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

भविजनको भवकूपतैं, तुमही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुणभंडार।।७।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! भव्य जीवों को भवरूपी कुएं से निकालने में आपही समर्थ हो (या आपही निकालने वाले हो) गरीबों पर दया करने वाले हो, अनाथों के नाथ हो और आप अपने स्वाभाविक आत्मगुणों के भण्डार हो।

चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्मरज मैल।
सरल करी या जगत में भविजन को शिवगैल।।८।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपने अशुद्ध आत्मा की कर्मरूपी धूल को धोकर निर्मल आत्म द्रव्य बनकर, अनंतसुख प्राप्त कर संसार में भव्य जीवों को मोक्ष का मार्ग सरल बना दिया है।

तुम पदपंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरै, विष निरविषता थाय।।६।।

अर्थ- हे जिनेन्द्रं देव ! आपके चरणरूपी कमलों की पूजा से सभी विघ्न एवं सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, शत्रु भी मित्र बन जाता है और विष भी निर्विष हो जाता है।

चक्री खगधर इंद्रपद, मिलैं आपतैं आप।
अनुक्रमकर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप।।१०।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आपकी पूजा से चक्रवर्ती पद, विद्याधर और इन्द्र का पद अपने आप प्राप्त हो जाता है। नियम से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और परम्परा से (क्रम क्रम से) मोक्ष पद भी प्राप्त होता है।

तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन।।११।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! मैं आपके बिना अत्यन्त दुखी हुआ जैसे पानी के बिना मछली दुःखी होती है। जन्म, जरा और मृत्यु का नाश कर मुझे आत्मीक सुख प्रदान कर स्वाधीन करने की कृपा करें।

पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे प्रभु, जय जय जय जिनदेव ।।१२।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! आपने बहुत से पापियों को पवित्र किया है, जिनकी गिनती कोई नहीं कर सकता। अंजन चोर के समान अज्ञानी को भी आपने पार लगा दिया, आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

थकी नाव भवदधिविषैं, तुम प्रभु पार करेव।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव।।१३।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! संसाररूपी समुद्र में मेरी नाव भटकते–भटकते थक गई है, अब आप ही पार कीजिए। आप ही उत्तम खेवटिया हो। आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

रागसहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भेंट्यो अबै, मेटो राग कुटेव।।१४।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! आज तक मैं संसार में राग सहित होकर रुलता फिरा हूँ। अभी तक मुझे सभी सरागी देव मिले अब मुझे वीतरागी देव आप मिले हैं अर्थात् वीतरागी देव से भेंट हुई है। आप मेरे राग की बुरी हठ का नाश कीजिए।

कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यञ्च अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान।।१५।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! मैंने कितनी पर्याय निगोद की, कितनी पर्याय नारकी की, कितनी पर्याय तिर्यंच की एवं कितनी पर्याय अज्ञानावस्था में व्यतीत की। आज यह मनुष्य पर्याय धन्य हो गई, जो आपकी शरण प्राप्त कर ली।

तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव।
धन्य भाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव।।१६।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! आपकी पूजा इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती आदि करते हैं। आपकी सेवा पूजा करने से मेरा भाग्य भी धन्य हो गया है।

अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भवसिंधु में खेओ लगाओ पार।।१७।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र देव ! अशरण को शरण देने वाले हो, जिनके जीवन का कोई आधार नहीं है, उन्हें आधार देने वाले हो। मैं भवरूपी समुद्र में डूब रहा हूँ। आप मेरी नाव चलाकर पार लगा दीजिए।

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान्।
अपनो विरद निहारिकैं, कीजै आप समान।।१८।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! आपकी स्तुति विनती करते, करते गणधर, और इन्द्र आदि भी थक गये हैं तब्र मैं कैसे आपकी विनती कर सकता हूँ। आप अपने यश को देखकर मुझे अपने समान बना लीजिए।

तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूबो जात हों, नेक निहार निकार।।१६।।

अर्थ- हे नाथ ! आपकी एक अच्छी दृष्टि से ही जीव संसार समुद्र के पार हो जाता है। हाय, हाय मैं संसार समुद्र में डूब रहा हूँ एक बार सुदृष्टि से निहार कर (देखकर) मुझे निकाल लीजिए।

जो मैं कहहूँ औरसों, तो न मिटै उर भार।
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौ पुकार।।२०।।

अर्थ- हे भगवन् ! यदि मैं अपने अन्तर्मन की वेदना किसी और से कहूँ तो वह वेदना मिटने वाली नहीं है, मेरी बिगड़ी तो आप ही बना सकते हो अतः मैं आप ही से अपने दुःखों को मिटाने की पुकार कर रहा हूँ।

बंदों पांचौं परमगुरु, सुरगरु वंदत जास।
विघनहरण मंगलकरन, पूरन परम प्रकाश।।२१।।

अर्थ- गणधर भी जिनकी वंदना करते हैं उन पांचों परमेष्ठी (पंच परमगुरू) की वंदना करता हूँ। आप पूर्ण उत्कृष्ट आत्मज्योति (ज्ञानज्योति) से प्रकाशित हो, आप विघ्नों का नाश करने वाले हो और मंगल के करने वाले हो।

चौबीसों जिनपद नमों, नमों शारदा माय।
शिवमग साधक साधु नमि, रच्यो पाठ सुखदाय।।२२।।

अर्थ- चौबीसों तीर्थंकरों को नमन करता हूँ, जिनवाणी माता को नमन करता हूँ और मोक्षमार्ग की साधना करने वाले सर्व साधुओं को नमन कर सुख को देने वाले इस पाठ की रचना करता हूँ।

मंगलमूर्ति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान्।।२३।।

अर्थ- परम पद को धारण करने वाले पंच परमेष्ठी मंगल स्वरूप है (मंगल की मूर्ति है) मैं इनका सदा ध्यान करता हूँ। हे मंगलमय भगवन् ! आप संसार के सभी अमंगलों का नाश कर दीजिए।

मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अर्हंत देव।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दों स्वयमेव।।२४।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! आपके मंगलकारी चरणों को नमन करता हूँ। अर्हन्त भगवान् मंगलकारी हैं। सिद्ध भगवान् (सिद्धपद) मंगलकारी हैं अतः मैं इनकी अपने मंगल के लिए वन्दना करता हूँ।

मंगल आचारज मुनि, मंगल गुरू उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, बन्दों मन वच काय।।२५।।

अर्थ- दिगम्बर आचार्य मंगल स्वरूप हैं, उपाध्याय गुरू मंगल स्वरूप है एवं सभी साधु मंगल के करने वाले हैं, मैं इनकी मन वचन काय से वन्दना करता हूँ।

मंगल सरस्वती मात का, मंगल जिनवर धर्म
मंगल मय मंगल करो, हरो असाता कर्म।।२६।।

अर्थ- जिनवाणी माता मंगल स्वरूप हैं, जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहा गया धर्म मंगलकारी है, हे मंगलमय जिनेन्द्र भगवन् ! मेरे असाताकर्म का क्षय करके मुझे मंगलमय कीजिए।

या विधि मंगल करन से, जग में मंगल होत।
मंगल- नाथूराम यह, भव सागर दृढ़ पोत।।२७।।

अर्थ- इस प्रकार मंगल करने से संसार में मंगल होता है। श्री नाथूराम जी कवि कहते हैं कि यह मंगल पाठ (विनयपाठ) भवरूपी समुद्र को पार करने के लिए मजबूत नाव के समान है।

अथ पौर्वाह्निक देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल कर्मक्षयार्थं भावपूजा-स्तव-वन्दना-समेतं-पञ्च-महागुरु-भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ- अनन्तर प्रातः काल देववन्दना में पूर्व आचार्यो के क्रम से सम्पूर्ण कर्मो के क्षय के लिए भावपूजा स्तुति वन्दना सहित पंच महागुरू भक्ति करता हूँ।

प्रार्थना

श्री जी मैं थाने पूजन आयो, मेरी अरज सुनो दीनानाथ !
श्री जी,मैं थाने पूजन आयो।।१।।
जल चन्दन अक्षत शुभ लेके तामें पुष्प मिलायो।
श्री जी, मैं थाने पूजन आयो।।२।।
चरु अरु दीप धूप फल लेकर, सुन्दर अर्घ बनायो।
श्री जी, मैं थाने पूजन आयो।।३।।
आठ पहर की साठ जु घडियाँ, शान्ति शरण तोरी आयो।
श्री जी, मैं थाने पूजन आयो।।४।।
अर्घ बनाय गाय गुणमाला, तेरे चरणन शीस झुकायो।
श्री जी, मैं थाने पूजन आयो।।५।।
मुझ सेवक की अर्ज यही है, जामन मरण मिटावो।।
मेरा आवागमन छुटावो।। श्री जी, मैं०।।६।।

पूजा हमारी आन्तरिक पवित्रता के लिए है। इसलिए पूजा के क्षणों में और पूजा के उपरान्त सारे दिन पवित्रता बनी रहे, ऐसी कोशिश होनी चाहिए। पूजा और अभिषेक जिनत्व के अत्यन्त सामीप्य का एक अवसर है। इसलिए निरन्तर इन्द्रिय और मन को जीतने का प्रयास करना और जिनत्व के समीप पहुँचना हमारा कर्त्तव्य है। द्रव्यपूजा का अर्थ सिर्फ इतना नहीं है कि अष्ट द्रव्य अर्पित कर दिये और न ही भाव–पूजा का यह अर्थ है कि पुस्तक में लिखी पूजा को पढ़ लिया। पूजा तो गहरी आत्मीयता के क्षण हैं। वीतरागता से अनुराग और गहरी तल्लीनता का श्रेष्ठ द्रव्यों को समर्पित करना अपने अहंकार और ममत्व भाव को विसर्जित करते जाना ही सच्ची पूजा है। -- **१०८ मुनि क्षमासागर जी**

पूजा पीठिका

ऊँ जय जय जय। नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।

ओं ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- पंच परमेष्ठी की जय हो, जय हो, जय हो। नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

अरहन्तों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो।

चत्तारि मंगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।
चत्तारि लोगुत्तमा-अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमो।
चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरहंते सरणं पव्वज्जामि,
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि,
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ओं नमोऽर्हते, स्वाहा,

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- चार मंगल हैं—अरहंत मंगल हैं, सिद्ध मंगल हैं, साधु मंगल हैं और केवली भगवान् द्वारा प्रणीत धर्म मंगल है।

लोक में चार उत्तम हैं—अरहंत उत्तम हैं, सिद्ध उत्तम हैं, साधु उत्तम हैं और केवली द्वारा प्रणीत धर्म उत्तम है।

चार की शरण में जाता हूँ—अरहंतों की शरण में जाता हूँ। सिद्धों की शरण में जाता हूँ, साधुओं की शरण में जाता हूँ, और केवली द्वारा प्रणीत धर्म की शरण में जाता हूँ।

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंच-नमस्कारं सर्व-पापैः प्रमुच्यते।।१।।

अर्थ- जो मनुष्य पवित्र या अपवित्र यहाँ तक कि सुस्थित या दुःस्थित भी पंच नमस्कार मंत्र का ध्यान करता है वह सब पापों से छूट जाता है।।१।।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः।।२।।

अर्थ- जो मनुष्य पवित्र या अपवित्र सब अवस्थाओं में स्थित होकर परमात्मा का स्मरण करता है, वह भीतर और बाहर सर्वत्र पवित्र है।।२।।

अपराजितमन्त्रोऽयं सर्व-विघ्न-विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु प्रथमं मंगलं मतः।।३।।

अर्थ- यह पंच नमस्कार मंत्र अजेय है, सब विघ्नों का विनाश करने वाला है और सब मंगलों में पहला मंगल है।।३।।

एसो पंच-णमोयारो सव्व-पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं होइ मंगलं ।।४।।

अर्थ- यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला और सब मंगलों में पहला मंगल है।।४।।

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहम्।।५।।

अर्थ- "अर्हम्" ये अक्षर परमब्रह्म परमेष्ठी के वाचक हैं और सिद्ध समूह के सुन्दर बीजाक्षर हैं। मैं इनको मन, वचन, काय से नमस्कार करता हूँ।।५।।

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।६।।

अर्थ- आठों कर्मों से रहित, मुक्तिरूपी लक्ष्मी के मन्दिर और सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त सिद्ध समूह को मैं नमस्कार करता हूँ।। ६।।

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शकिनी-भूत-पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे।।७।।

(पुष्पाजंलिं क्षिपामि)

अर्थ- भगवान् जिनेन्द्र की स्तुति करने पर विघ्नसमूह नष्ट हो जाते हैं, शाकिनी, भूतो, पिशाचों का भय नहीं रहता तथा विष निर्विष हो जाता है।।७।।

पंचकल्याणक अर्घ्यं

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गानरवाकुले, जिन-गृहे कल्याणमहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्री भगवतो गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाणपंचकल्याणकेभ्यो अनर्घ्य- पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- मैं प्रशस्त मंगलगान के (मंगलीक जिनेन्द्रस्तवन के) शब्दों से गुंजायमान जिनमंदिरों में जिनेन्द्रदेव के पंचकल्याणकों का जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल तथा अर्घ्य से पूजन करता हूँ।

पंचपरमेष्ठी अर्घ्य

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गानरवाकुले, जिन-गृहे जिननाथमहं यजे।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- मैं प्रशस्त मंगलगान के (मंगलीक जिनेन्द्रस्तवन के) शब्दों से गुंजायमान जिनमन्दिरों में जिनेन्द्रदेव का जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फ तथा अर्घ्य से पूजन करता हूँ।

जिनसहस्त्रनाम अर्घ्य

उदक-चन्दन-तण्डुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घ्यकैः।
धवल-मंगल-गानरवाकुले, जिन-गृहे जिननाम अहं यजे।।

ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिनाष्टाधिकसहस्त्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- मैं प्रशस्त मंगलगान के (मंगलीक जिनेन्द्रस्तवन) शब्दों से गुंजायमान जिनमन्दिरों में १००८ नामों से युक्त जिनेन्द्रदेव का जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल तथा अर्घ्य से पूजन करता हूँ।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम्।
श्री मूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतुर्-
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाभ्यधायि।।८।।

अर्थ- मैं तीन लोक के स्वामी, स्याद्वाद विद्या के नायक, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य के धारक जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके जिनेन्द्रदेव के पूजन की विधि को कहता हूँ। जो पूजन मूलसंघ के सम्यग्दृष्टि पुरुषों के लिए पुण्यबन्ध का प्रधान कारण है।।८।।

स्वस्ति त्रिलोक-गुरवे जिन-पुंगवाय,
स्वस्ति स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्जित-दृङ्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय।।६।।

अर्थ- तीन लोक के गुरु तथा जिनप्रधान (कषायों को जीतने वाले मुनीश्वरों के स्वामी) के लिए कल्याण होवे। स्वाभाविक महिमा का उदय होने से भले प्रकार स्थित हुए भगवान् के लिए मंगल होवे। स्वाभाविक प्रकाश से बढ़े हुए तथा केवल दर्शन से युक्त जिनेन्द्र के लिए क्षेम होवे। उज्ज्वल, सुन्दर तथा अद्भुत समवशरणादि वैभव वाले जिनेन्द्र के लिए कुशल होवे।

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधा-प्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव-विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोकविततैक-चिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायंत-विस्तृताय।।१०।।

अर्थ- उछलते हुए निर्मल केवलज्ञान रूपी अमृत में तैरने वाले, स्वाभाव और परभाव के प्रकाशक, तीन लोक में व्याप्त एक मात्र चैतन्य को प्रकट करने वाले

और त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों में ज्ञान के द्वारा व्याप्त जिनेन्द्रदेव के लिए मंगल होवे।।१०।।

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः।
आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।११।।

अर्थ- अपने भावों में परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं देश और काल के अनुरूप जल, चन्दनादि द्रव्यों की शुद्धता को पाकर जिनस्तवन, जिनबिम्बदर्शन आदि अनेक अवलम्बनों का आश्रय लेकर भूतार्थ पूज्य अरिहन्तादि का पूजन करता हूँ।।

अर्हन् पुराण-पुरुषोत्तम-पावनानि,
वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेक एव।
अस्मिन् ज्वलद्विमल-केवल-बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि।।१२।

ॐ ह्रीं विधियज्ञप्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि

अर्थ- हे अर्हन् ! हे पुराणपुरुषोत्तम ! यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त जलादि द्रव्यों का आलम्बन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवलज्ञानरूपी अग्नि में एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूँ।

स्वस्ति-मंगलम्

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः।
श्रीसंभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअभिनन्दनः।
श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः।
श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीचन्द्रप्रभः।
श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः।
श्रीश्रेयान् स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवासुपूज्यः।

श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअनन्तः।
श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशान्तिः।
श्रीकुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः।
श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः।
श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः।
श्रीपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः।

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- श्री ऋषभ जिन हम सबके लिए मंगल स्वरूप हों। श्री अजित जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री सम्भव जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री अभिनन्दन जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री सुमति जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री पद्मप्रभ जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री सुपार्श्व जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री चन्द्रप्रभ जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री पुष्पदन्त जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री शीतल जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री श्रेयांस जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री वासुपूज्य जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री विमल जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री अनन्त जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री धर्म जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री शान्ति जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री कुन्थु जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री अरनाथ जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री मल्लि जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री मुनिसुव्रत जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री नमि जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री नेमिनाथ जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री पार्श्व जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों। श्री वर्द्धमान जिन हम सबके लिए मंगलस्वरूप हों।

परमर्षिस्वस्ति-मंगलम्

नित्या-प्रकम्पाद्भुत-केवलौघाः स्फुरन्मनःपर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधि-ज्ञान-बल-प्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।1।।

अर्थ- अविनाशी, अचल और अद्‌भुत केवलज्ञान के धारक, देदीप्यमान मनःपर्ययज्ञानरूप शुद्ध ज्ञान वाले तथा दिव्य अवधिज्ञान के बल से प्रबुद्ध महाऋषि हमारा कल्याण करें।।१।।

कोष्ठस्थ- धान्योपममेक-बीजं संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतु-र्विधं बुद्धि-बलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।२।।

अर्थ- कोष्ठस्थधान्योपम, एकबीज, सभिन्नसंश्रोतृत्व और पदानुसारित्व; इन चार प्रकार की बुद्धि, ऋद्धि को धारण करने वाले ऋषिराज हमारा मंगल करें।।२।।

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा-दास्वादन-घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञान-बलाद्वहन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।३।।

अर्थ- दिव्य मतिज्ञान के बल से दूर से ही स्पर्शन, श्रवण, आस्वादन, जिघ्रण और अवलोकनरूप; पाँच इन्द्रियों के विषयों को धारण करने वाले ऋषिराज हम लोगों का कल्याण करें।।३।।

प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येक-बुद्धाः दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टांग-निमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।४।।

अर्थ- प्रज्ञाश्रमण, प्रत्येकबुद्ध, अभिन्नदशपूर्वी, चतुर्दशपूर्वी, प्रकृष्टवादी और अष्टांगमहानिमित्त के ज्ञाता मुनिवर हमारा कल्याण करें।।४।।

जंघानल-श्रेणि-फलांबु-तंतु-प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च-स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।५।।

अर्थ- जंघा, अग्निशिखा, श्रेणी, फल, जल, तन्तु, पुष्प, बीज और अंकुर–पर चलने वाले चारणऋद्धि के धारक तथा आकाश में स्वच्छन्द विहार करने वाले मुनिवर हमारा कल्याण करें।।५।।

अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि।
मनो-वपु-र्वाग्बलिनश्च नित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।६।।

अर्थ- अणिमा, महिमा, लघिमा और गरिमा–ऋद्धि में कुशल तथा मन, वचन और कायबल के धारक योगीश्वर हमारा मंगल करें।।६।।

सकामरूपित्व-वशित्वमैश्यं प्राकाम्यमन्तर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।७।।

अर्थ- कामरूपित्व, वशित्व, ईशित्व, प्राकाम्य, अन्तर्धान, आप्ति तथा अप्रतिघात ऋद्धि से सम्पन्न ऋषिपुंगव हमारा क्षेम करें।।७।।

दीप्तं च तप्तं च महत्तथोग्रं घोरं तपो घोर-पराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरन्तः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।८।।

अर्थ- दीप्ति, तप्त, महा उग्र, घोर और घोरपराक्रम तप के तथा अघोर–ब्रह्मचर्य ऋद्धि के धारी मुनिराज हमारा कल्याण करें।।८।।

आमर्ष-सर्वौषधयस्तथाशी-र्विषाविषा दृष्टि-विषाविषाश्च।
सखिल्ल-विड्जल्ल-मलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।९।।

अर्थ- आमर्षौषधि, सर्वौषधि, आशीर्विषाविष, दृष्टिविषाविष, क्ष्वेलौषधि, विडौषधि, जल्लौषधि और मलौषधि ऋद्धि के धारी परमऋषि हमारा कल्याण करें।।९।।

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवन्तो मधुस्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः।
अक्षीण-संवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः।।१०।।

अर्थ- क्षीरस्रावी, घृतस्त्रावी, मधुस्त्रावी, अमृतस्त्रावी तथा अक्षीणसंवास और अक्षीणमहानस ऋद्धिधारी मुनिवर हमारा मंगल करें।।१०।।

इति परमर्षिस्वस्तिमंगलविधानम् (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

ऋद्धियों के भेद निम्न प्रकार है

बुद्धिऋद्धि १८, विक्रियाऋद्धि ११, चारणऋद्धि ९, तपऋद्धि ७, बलऋद्धि ३, औषधिऋद्धि ८, रसऋद्धि ६ और अक्षीणऋद्धि २ ऐसे १८+११+९+७+३+८+६+२=६४ ये चौसठ ऋद्धियाँ हैं, जिनके नामों का पूर्व में वर्णन किया गया है। इन ऋद्धियों के स्वामी तपस्वी मुनिवर होते हैं। वे मंगल करने वाले हैं।

मंत्र- ॐ ह्रीं इवीं श्रीं अर्हं अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं नमः स्वाहा।

इस मंत्र की एक माला जपने से संकट दूर होते है।

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

अडिल्ल

प्रथम देव अरहंत सुश्रुत सिद्धान्त जू।
गुरु निर्ग्रन्थ महंत मुकतिपुर-पंथ जू।।
तीन रतन जगमाँहि सु ये भवि ध्याइये।
तिनकी भक्ति-प्रसाद परम-पद पाइये।।
पूजों पद अरहंत के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- अरिहन्त देव, सिद्धान्त शास्त्र और परिग्रह रहित गुरु पूजनीय हैं और ये ही मोक्ष के मार्ग हैं। संसार में जो भव्य पुरुष इन तीन रत्नों का ध्यान करते हैं, वे देव–शास्त्र और गुरु की भक्ति के प्रसाद से उत्तम पद पा जाते हैं। मैं प्रतिदिन अष्ट विधि से अरहंत भगवान् के चरणों की पूजा करता हूँ , फिर सारभूत गुरु–चरणों की पूजा करता हूँ और देवी सरस्वती की पूजा–अर्चना करता हूँ।

सुरपति उरग नरनाथ तिन कर, वन्दनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवरण उज्ज्वल, देख छवि मोहित सभा।।
वर नीर क्षीर-समुद्र घट भरि, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
मलिन वस्तु हर लेत सब, जल-स्वभाव मल छीन।
जासों पूजों परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती आपके चरणों में मस्तक नमाते हैं, इसलिए आपके चरण निर्मल सुवर्ण के समान शोभायमान मालूम पड़ते हैं।

इनकी कान्ति को देखकर समवशरण की सभायें मोहित हो जाती है। क्षीरसमुद्र के पवित्र जल का घड़ा भरकर आपके सामने अनेक प्रकार से नाचता हूँ तथा जल चढ़ाता हूँ। इस प्रकार देव, शास्त्र और गुरु की प्रतिदिन पूजा रचाता हूँ। जल पदार्थों के मैल को दूर करता है क्योंकि मैल दूर करना जल का स्वभाव है। इसलिए भगवन् ! पूजनीय देव, शास्त्र और गुरु इन तीनों की जल से पूजा करता हूँ , जिससे मेरी आत्मा का मल दूर हो जावे।

जे त्रिजग-उदर मँझार प्रानी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहित-हरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे।।
तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन, सरस चन्दन घिसि सचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ।।
चन्दन शीतलता करै तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र-गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! तीनों लोकों के जीव संसार के दुखों से बहुत अधिक दुखी हैं। जैसे बड़े भारी गड्ढे में आग लगी हो और उसमें रहने वाले अथवा आ गिरने वाले जीव दुखी होते हैं। ऐसे संसारियों के दुख दूर करने के लिए हे जिनेन्द्रदेव! आपका उपदेश शान्ति उत्पन्न करने वाला है। इसलिए बहुत सुगन्धित चन्दन घिसकर आपकी पूजा करता हूँ, जिससे मेरा संसार का दुख शान्त हो जावे। इस प्रकार देव, शास्त्र, गुरु की प्रतिदिन पूजा करता हूँ। तपी हुई चीज को शीतल (ठंडा) करने के लिए चन्दन ही समर्थ है। इसलिए देव, शास्त्र और गुरु की चन्दन से पूजा करता हूँ।

यह भव-समुद्र अपार तारण, के निमित सुविधि ठई।
अति दृढ़ परम-पावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही।।
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे जिनेन्द्रदेव! यह संसाररूपी समुद्र अपार है। इससे पार होने के लिए आपकी अतिदृढ़, परमपवित्र तथा यथार्थ (सच्ची) भक्तिरूप मजबूत नाव ही समर्थ है। यह हमें पूरा विश्वास है। इसीलिए अखण्डित और स्वच्छ शालि धान के तंदुल के पुंज चढ़ाकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीन गुणों की याचना करता हूँ। इस प्रकार देव, शास्त्र और गुरु की प्रतिदिन पूजा करता हूँ। शालि– धान के सुगन्धित और अखण्डित तंदुलों को एक–एक शोधकर पूज्य देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ।

जे विनयवंत सुभव्य-उर-अंबुज प्रकाशन भानु हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजग माहिं प्रधान हैं।।
लहि कुन्द-कमलादिक पहुप, भव-भव कुवेदन सों वचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
विविध भांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे जिनेन्द्रदेव ! आप विनयवान भव्यजीवों के मनरूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर कमल खिलते है, वैसे ही आप भव्य को प्रसन्न करने वाले हैं, भव्यों का अज्ञानान्धकार दूर करने वाले हैं। आप प्रधानता से चारित्र का उपदेश देते हैं। हे देव ! आप तीन लोक में प्रधान हैं। इसलिए कुन्द कमल आदि फूलों को लेकर अनेक जन्म के काम विकार के कष्टों से बचने के लिए प्रतिदिन देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करता हूँ। अनेक प्रकार के सुगन्धित फूलों से भौंरे भी जिनकी सुगन्ध से वश में हो जाते हैं, ऐसे पूजनीय देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ।

अति सबल मद-कंदर्प जाको, क्षुधा-उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन को सुगरुड़ समान है।
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूं।

नानाविध संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अत्यन्त बलवान् मद के वेग को धरने वाले महान् क्षुधारूपी सर्प का विष सहन नहीं हो सकता और वह बड़ा भयंकर है। उस विष को दूर करने के लिए हे भगवन् ! आप गरुड़ के समान हैं। जैसे सांप को गरुड़ जीत लेता है वैसे ही भूख को आपने जीत लिया है। इसलिए घी में पकाकर छहों रसों के अच्छे–अच्छे पकवानों से आप (देव, शास्त्र, गुरु) की प्रतिदिन पूजा करता हूँ, जिससे मेरी क्षुधा दूर हो जावे। छहों रसों से परिपूर्ण ताजे पकवानों से उत्तम पद को प्राप्त देव–शास्त्र–गुरु की पूजा करता हूँ।

जे त्रिजग-उद्यम नाश कीने, मोह-तिमिर महाबली।
तिहि कर्मघाती ज्ञानदीप-प्रकाशजोति प्रभावली ।।
इह भाँति दीप प्रजाल कंचन, के सुभाजन में खचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
स्व-पर प्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकरि हीन।
जासों पूजों परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! तीन लोक के प्राणियों के सच्चे पुरुषार्थ को नाश करने के लिए मोहनीय कर्मरूपी अन्धकार बहुत बलवान् है। उस मोहनीय कर्म को नाश करने वाला आपका ज्ञान–रूपी दीपक का प्रकाश ही समर्थ है अर्थात् आप मोहनीय कर्म को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रकार दीपक जलाकर सुवर्ण के पात्र में सजाता हूँ। प्रतिदिन देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करता हूँ, जिससे मेरा मोह दूर हो जावे। केवलज्ञानरूपी दीपक अज्ञानान्धकार से रहित है, इससे अपना और पर पदार्थ का प्रकाश होता है। इसलिए दीपक से देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करता हूँ।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्नि समूह सम उद्धत लसैं।
वर धूप तासु सुगंधिताकरि, सकल परिमलता हँसे।

इह भाँति धूप चढ़ाय नित भव-ज्वलन मांहि नहीं पचूँ।
अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुण लीन।
जासों पूजों परमपद देव-शास्त्र गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! कर्म रूप ईधन को जलाने के लिए आप अग्नि के समान प्रकाशित हैं। अच्छी धूप की सुगन्ध से सभी सुगन्धियाँ मन्द हो जाती हैं। इसी प्रकार हे देव ! प्रतिदिन धूप चढ़ाने से संसार से मुक्ति हो जावे। इस भाव से देव, शास्त्र, गुरु की प्रतिदिन पूजा करता हूँ। चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यों के गुणों से सहित धूप को अग्नि में जलाकर देव, शास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

लोचन सुरसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकल फल गुणसार हैं।
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूँ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
जे प्रधान फल-फल विषैं, पंचकरण-रस-लीन।
जासो पूजों परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्ष-फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे जिनेन्द्रदेव ! नेत्र इन्द्रिय, जिह्वा इन्द्रिय, नासिका इन्द्रिय और मन को प्रसन्न करने वाले फल हैं। इनमें अच्छे फलों के सभी गुण हैं मुझसे जिनके गुणों की तुलना नहीं की जा सकती है। हे भगवन् ! अपने मोक्षरूपी प्रयोजन को पूर्ण करने के लिए फल चढ़ाता हूँ, जिससे मुझे अनन्त–सुख प्राप्त हो। इस प्रकार प्रतिदिन देव, शास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ। इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले उत्तम फलों से देव, शास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनम के पातक हरूँ।
इह भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिव-पंकति मचूँ।

अरहंत श्रुत-सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
आठों दुखदानी, आठ निशानी, तुम ढिग आन निवारन हो।
दीनन निस्तारन अधम उधारन 'द्यानत' तारन कारन हो।।
प्रभु अन्तर्यामी, त्रिभुवननामी, सभी के स्वामी दोष हरो।
यह अरज सुनीजे, ढील न कीजे, न्याय करीजे, दया करो।।
वसुविधि अर्घ संजोय के, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद देव-शास्त्र-गुरु तीन ।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे परमात्मन् ! स्वच्छ जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और अनेक प्रकार के उत्तम फल चढ़ाकर अनेक जन्मों के पापों को दूर करूँ। इस प्रकार नित्य अर्घ्य समर्पित कर मैं भव्य मोक्ष श्रेणी में पहुचूँ। इसलिए प्रतिदिन देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करता हूँ। दुख देने वाले आठ प्रकार के कर्म अष्ट द्रव्यों के द्वारा आपके पास आकर दूर होते हैं। दीनों का कल्याण करने वाले, अधमों का उद्धार करने वाले आप ही मुझ "द्यानतराय" के तारण करने वाले हो–हे अंतर्यामी ! तीनों लोकों में श्रेष्ठ प्रभु सभी के दोष दूर करो। हमारी विनती सुनें, ढ़ील न करें, न्याय कीजिए और दया कीजिए। आठों द्रव्यों का अर्घ्य तैयार कर अत्यन्त उत्साह मन में धारण करके मैं श्रेष्ठ पद धारी देव, शास्त्र गुरु की पूजा करता हूँ।

जयमाला

दोहा

देव-शास्त्र गुरु रतन शुभ, तीन रतन करतार।
भिन्न - भिन्न कहूँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार।।१।।

अर्थ- देव, शास्त्र और गुरु तीनों शुभ रत्न हैं। इनसे आत्मा का कल्याण करने वाले सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन रत्न उत्पन्न होते हैं।

इसलिए संक्षेप से प्रसन्नता पूर्वक इनके अलग–अलग गुणों का विस्तृत वर्णन करता हूँ।

पद्धरि

चउकर्म की त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परम सुगुण हैं अनन्त धीर, कहवत के छयालिस गुण गंभीर।।२।।

अर्थ- हे देव ! आपने जीवविपाकी, पुद्‌गलविपाकी, क्षेत्रविपाकी, भवविपाकी इन चार प्रकार के कर्मों की तिरेसठ प्रकृतिरूों (जिनमें घातियाकर्मों की ४७ और अघातियाकर्मों की १६ प्रकृतियाँ मिलाकर ६३ प्रकृतियों अर्थात् ज्ञानावरण ५ + दर्शनावरण ६ + मोहनीय २८ + अन्तराय ५ ये ४७ घातिया कर्म की प्रकृतियाँ + नरकगति, तिर्यंचगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि ४ जातियाँ, उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर ये नामकर्म की १३+ नरक, तिर्यंच, देव ये आयुकर्म की ३ = ६३) का नाश कर जन्म जरा आदि अठारह दोषों को जीत लिया है। कहने के लिए आपके ४६ गुण हैं , लेकिन आप में अनन्त गुण विद्यमान हैं।

शुभ समवशरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर सीस धार।
देवाधिदेव अरहन्त देव वन्दों मन - वचन - तन कर सुसेव।।३।।

अर्थ- आपके मंगलकारी समवशरण की शोभा अपरिमित है। आपको सौ इन्द्र मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हैं। इसलिए हे देवों के देव–अरहंतदेव ! मन, वचन और काय से सेवा कर मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

जिनकी धुनि है ॐकार रूप निर-अक्षरमय महिमा अनूप।
दश-अष्ट महाभाषा समेत, लघु भाषा सात शतक सुचेत।।४।।

अर्थ- अरहन्त भगवान् की दिव्यध्वनि ॐ स्वरूप है। इसमें अक्षर नहीं होते हैं, किन्तु इसका अनुपम महत्त्व होता है। दिव्यध्वनि में १८ महाभाषायें और ७०० लघु भाषायें होती हैं।

सो स्याद्वादमय सप्त भंग, गणधर गूँथे बारह सुअंग।
रवि-शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र-नमो बहु प्रीति ल्याय।।५।।

अर्थ- हे भगवन् ! वह आपकी ॐकार रूप दिव्यध्वनि स्याद्वाद स्वरूप (सात भंग वाली) है। इसे गणधरों ने आचारांग आदि १२ अंगों में रचा है। जो अन्धकार (अज्ञानान्धकार) सूर्य और चंद्रमा दूर नहीं कर सकते, उसे यह शास्त्र दूर कर देते हैं। इसलिए शास्त्र को बहुत प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार करता हूँ।

गुरु आचारज उवझाय साधु तन नगन रत्नत्रयनिधि अगाध।
संसार देह वैराग्य धार, निरवांछि तपै शिव-पद निहार।।६।।

अर्थ- आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन गुरु हैं। इनका शरीर नग्न (वस्त्रादि रहित) रहता है, किन्तु ये सम्यग्दर्शन; सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नों के अथाह समुद्र के समान हैं अर्थात् तीनों गुरु सम्यग्दर्शन आदि धारण करते हैं। इसलिए संसार और शरीर से वैराग्य धारण कर संसार के विषय भोगों की इच्छा नहीं रखते हुए मोक्ष का लक्ष्य कर तपस्या करते हैं। यहाँ तन नगन से बाह्य परिग्रह और वैराग्य से अन्तरंग परिग्रह बताया गया है। आचार्य, उपाध्याय और साधु दोनों परिग्रह को छोड़कर मोक्ष का ध्यान रख कर तप करते हैं।

गुण छत्तिस पच्चिस आठ-बीस, भव-तारन-तरन जिहाज ईस।
गुरु की महिमा वरनी न जाय, गुरु नाम जपों मन-वचन-काय।।७।।

अर्थ- आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५ और साधु के २८ मूलगुण होते हैं। हे गुरुदेव ! आप संसार से तरने और तारने के लिए जहाज के समान हैं। गुरुओं की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। इसलिए मन–वचन और काय से सदा गुरुओं का नाम जपता हूँ, उन्हीं का ध्यान करता हूँ।

सोरठा

कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर पद भोगवै।।८।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अपनी शक्ति के अनुसार देव, शास्त्र और गुरु की पूजन, भक्ति ध्यान और जाप करनी चाहिए। यदि शक्ति न हो तो श्रद्धा रखने वाला भी जरा (बुढ़ापा) और मरण आदि दोष रहित मोक्ष को प्राप्त करता है।

श्री जिनके परसाद तैं सुखी रहैं सब जीव।
यातैं तन मन वचन तैं सेवो भव्य सजीव।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा भक्ति के प्रसाद से संसार के सभी जीव सुखी रहते हैं अतः हे भव्य जीवो ! मन–वचन–काय से निरन्तर श्री जिनेन्द्र की पूजा भक्ति करो।

बीस तीर्थंकर पूजा

स्थापना

दीप अढ़ाई मेरु पन, सब तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूं, मन वच तन धरि शीस।।

ओं ह्रीं विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् (सन्निधिकरणम्।)

अर्थ- ढाई द्वीप में पाँच मेरु पर्वत हैं, उनमें सदैव विद्यमान रहने वाले बीस तीर्थंकर हैं, उन सबकी मन, वचन और काय से मस्तक नवाकर पूजा करता हूँ।

इन्द्र फणीन्द्र नरेन्द्र वंद्य पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार सार गुण हैं अविकारी।।
क्षीरोदधि सम नीरसों (हो) , पूजों तृषा निवार।
सीमंधर जिन आदि दे (स्वामी), बीस विदेह मँझार
श्री जिनराज हो भव तारण तरण जहाज।।१।।

ओं ह्रीं विदेहक्षेत्रसम्बन्धिविद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे जिनेन्द्रदेव! आप इन्द्र, नागेंद्र और चक्रवर्ती के नमस्कार करने योग्य हैं और कर्मरहित पद (मोक्ष) के धारण करने वाले हैं, संसार में शोभायमान और विकाररहित गुणों को धारण करने वाले हैं। इसलिए प्यास दूर करने के लिए क्षीरोदधि के समान स्वच्छ जल से विदेहक्षेत्र में सदा रहने वाले सीमन्धर आदि भगवान् की पूजा करता हूँ। हे भगवन् ! आप संसार के लोगों को पार लगाते हैं और स्वयं पार होते हैं, इसलिए जहाज के समान हैं।

विदेहक्षेत्र के बीस तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैः–

१. सीमंधर, २. युग्मंधर, ३. बाहु, ४. सुबाहु, ५. संजात, ६. स्वयंप्रभ, ७. ऋषभानन, ८.अनन्तवीर्य, ६. सूर्यप्रभ, १०. विशालकीर्ति, ११. वज्रधर, १२. चन्द्रानन, १३. भद्रबाहु, १४. भुजंगम, १५. ईश्वर १६. नेमिप्रभ, १७. वीरषेण, १८. महाभद्र, १६. देवयश, २०. अजितवीर्य।

तीन लोक के जीव, पाप-आताप सताये।
तिनको साता दाता, शीतल वचन सुहाये।।
बावन चन्दन सों जजूँ (हो) भ्रमन तपन निरवार।। सीमं०।।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- तीन लोक के सभी जीव, कर्मों के दुःख से दुःखी हैं। उनको सुख–शांति देने वाले आपके शांति भरे हुए वचन (दिव्यध्वनि) ही अच्छे मालूम पड़ते हैं–हितकर हैं। इसलिए संसार भ्रमण के दुःख को दूर करने के लिए पावन चंदन से आपकी पूजा करता हूँ।

यह संसार अपार महासागर जिन स्वामी।
तातैं तारे बड़ी भक्ति- नौका जग नामी।।
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजूँ तुम गुण सार।।सीमं०।।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तयेऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- यह संसाररूपी महासागर अपार है, और संसार में यह प्रसिद्ध है कि आप अपनी भक्ति रूपी नौका (नाव) से संसारियों को संसाररूप समुद्र से पार कराते हैं। इसलिए तुम्हारे उत्तम गुणों की. स्वच्छ और सुगंधित शालि तंदुल (चावल) से पूजा करता हूँ।

भविक-सरोज-विकास, निंद्य तमहर रवि से हो।
जति श्रावक आचार, कथन को तुम्हीं बड़े हो।।
फूल सुवास अनेकसों (हो) पूजों मदन प्रहार।।सीमं०।।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! जैसे कमल को सूर्य खिला देता है, अंधकार को दूर कर देता है उसी प्रकार आप भव्यरूपी कमलों का विकास करने के लिये तथा भव्यों का अज्ञानरूप अंधकार नाश करने के लिये सूर्य के समान हैं तथा आप ही मुनियों और गृहस्थों के चारित्र का उपदेश करने के लिए प्रधान हैं–समर्थ हैं। इसलिए हे स्वामिन् ! कामदेव को नष्ट करने के लिए अनेक सुगंधित फूलों से आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

कामनाग-विषधाम, नाश को गरुड़ कहे हो।
क्षुधा-महादव-ज्वाल, तासु को मेघ लहे हो।।
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूख विडार।। सीमं०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन्! आप कामरूपी सर्प के विष को दूर करने के लिए गरुड़ के समान हैं और भूखरूपी दावानल (जंगल में लगी आग) को शांत करने लिए बादल के समान हैं, इसलिए भूख को नाश करने के लिए बहुत घी में पके हुए मधुर पकवानों से आपकी पूजा करता हूँ।

उद्यम होन न देत, सर्व जग मांहि भर्‌यो है।
मोह-महातम घोर, नाश परकाश कर्‌यो है।।
पूजों दीप प्रकाश सों (हो) ज्ञान-ज्योति करतार।।सीमं०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

अर्थ-हे देव ! समस्त संसार में मोहनीय कर्मरूप अंधकार भरा हुआ है इसलिए आत्मा का हित नहीं हो पाता। आपने मोहनीयकर्म को नष्ट कर केवलज्ञान रूप प्रकाश किया है अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसलिए दीपक से आपकी पूजा करता हूँ, जिससे मुझमें केवलज्ञान रूप प्रकाश हो जावे।

कर्म आठ सब काठ, भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनिकर प्रकट, सरब कीनो निरवारा।।
धूप अनूपम खेवतें (हो) दुःख जलैं निरधार।।सीमं०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- आपने ज्ञानावरण आदि कर्मों को लकड़ियों का बोझा समझ कर ध्यान रूप अग्नि से, प्रकट रूप से जला डाला है अर्थात् आपने ध्यान करने से आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है। इसलिए यह निश्चय है कि अनुपम धूप खेने से हमारे संसार के जन्म–मरण आदि दुःख दूर हो जावेंगे।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभऽहंकार भरे हैं।
सबको छिन में जीत, जैन के मेरु खड़े हैं।।
फल अति उत्तमसों जजूँ (हो) वांछित फलदातार।। सीमं०

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- संसार में नास्तिक और एकान्तवादी आदि मिथ्यात्वी, लोभ और अभिमान से चूर हो रहे हैं। उन सब को जीतकर हे जिनेन्द्रदेव ! आप मेरु पर्वत के समान अचल खड़े हुए हैं ! इसलिए इच्छित फल (मोक्षफल) देने वाले उत्तम फलों से आपकी पूजा करता हूँ।

जल फल आठों दरब अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इन्द्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है।।
"द्यानत" सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार।।सीमं०

ओं ह्रीं सीमन्धरादि-विद्यमान-विंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- आपकी स्तुति गणधर और इन्द्र भी पूरी तरह से नहीं कर पाये। मैं कैसे कर सकता हूँ? फिर भी मैंने जल से लेकर फल तक आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य तैयार कर प्रीति धारण की है।इसलिए आप 'द्यानतराय कवि' को अपना सेवक समझकर संसार समुद्र से निकाल दो।

जयमाला

सोरठा

ज्ञान सुधाकर चंद, भविक खेत हित मेघ हो।
भ्रमतम भान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों।।

अर्थ- जो ज्ञान रूप अमृत को उत्पन्न करने के लिए चन्द्रमा के समान हैं अर्थात् जगत् को ज्ञानवान् बनाते हैं। भव्यरूपी खेत के लिए बादल के समान हैं जैसे खेतों में पानी बरसने से उनमें खेती अच्छी होती है, उससे खेतों को लाभ होता है, वैसे ही जो भव्यों का कल्याण करते हैं और मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नाश करने के लिए प्रकाशमान् सूर्य के समान है अर्थात् अज्ञानान्धकार को दूर करते हैं। ऐसे सीमंधर आदि बीसों तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूँ।

सीमंधर सीमंधर स्वामी, जुगमंधर जुगमंधर नामी।
बाहु बाहुजिन जगजन तारे, करम सुबाहु बाहुबल दारे।।१।।

अर्थ- हे सीमंधर स्वामी ! आप धर्म की सीमा को धारण करने वाले स्वामी होने के कारण सीमंधर कहलाते हैं। दोनों प्रकार के नयों को अथवा मुनि और श्रावक–दोनों के आचार का कथन करने वाले हैं, और तीनों लोकों में प्रसिद्ध होने के कारण जुगमन्धर (युगमन्धर) हो, जिन्होंने अपनी ज्ञानरूपी भुजाओं से संसार के जीवों को संसार–समुद्र से पार कर दिया है, इसलिए वे बाहु हैं। ध्यान रूपी भुजा के बल से कर्मों को नष्ट कर दिया है इसलिए वे सुबाहु कहलाते हैं।

जात सुजात सुकेवलज्ञानं, स्वयंप्रभु प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषिभानन दोषं, अनंतवीरज वीरज कोषं।।२।।

अर्थ- हे सुजात! आपने उत्तम केवलज्ञान प्राप्त कर लिया है, इसलिए सुजान कहलाते हैं। सब देवों में स्वयं ही श्रेष्ठ (समर्थ) हैं इसलिए स्वयंप्रभु कहलाते हैं। ऋषियों–मुनियों के दोषों का नाश करते हैं इसलिए ऋषभानन कहलाते हैं। अनन्तवीर्य के भण्डार होने के कारण अनंतवीर्य कहलाते हैं।

सौरीप्रभ सौरी गुणमालं, सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरि वज्जर हैं, चंद्रानन चंद्रानन वर हैं।।३।।

अर्थ- सूर्य के समान चमकने वाले गुणों का समुदाय होने के कारण सौरीप्रभ (सूर्यप्रभ) कहलाते हैं। महान् गुणों और दया के धारण करने वाले होने के कारण विशाल हैं। तीनों लोकों में कीर्ति फैली हुई है, इसलिए विशालकीर्ति कहलाते हैं। संसार रूपी पर्वत को भेदने के लिए वज्र के समान है, इसलिए

आपका नाम वज्रधार है। चन्द्रमा के समान उत्तम मुख होने के कारण चन्द्रानन कहे जाते हैं।

भद्रबाहु भद्रनि के करता, श्री भुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं, नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं।।४।।

अर्थ- समस्त कल्याणों को करने वाले हैं इसलिए आपका नाम भद्रबाहु है। नागकुमारों के स्वामी हैं इसलिए भुजंगम कहे जाते हैं। तीन लोक के स्वामी होने से ईश्वर कहे जाते हैं। कीर्तिरूप चक्र की धारा तीनों लोक में फैली हुई है इसलिए नेमिप्रभु कहलाते हैं।

वीरसेन वीरं जग जाने, महाभद्र महाभद्र बखाने।
नमों जसोधर जसधर कारी, नमों अजित वीरज बलधारी।।५।।

अर्थ- हे वीरसेन ! आपकी वीरता को जगत् जानता है इसलिए आप वीरसेन कहे जाते हैं। हे महाभद्र ! जगत् आपके पाँच कल्याणकों का वर्णन करता है अथवा आप जीवों के कल्याण के उपदेश देते हैं, इसलिए आपका नाम महाभद्र है। हे यशोधर ! आपने यश को देने वाले कार्य किये हैं, इसलिए आपका नाम यशोधर है। आपको नमस्कार है। अनन्तबल को धारण करने वाले अजितवीर्य भगवान् आपको नमस्कार है।

धनुष पाँचसै काय विराजै, आयु कोड़ि पूरव सब छाजैं।
समोसरण शोभित जिनराजा, भव-जल-तारण-तरण जिहाजा।।६।।

अर्थ- विदेहक्षेत्र के तीर्थंकर पाँचसौ धनुष* की शरीर की अवगाहना वाले होते है और सब की एक कोटि पूर्व** वर्ष की आयु होती है। समवशरण में शोभायमान जिनदेव, संसार समुद्र से पार करने के लिए और स्वयं पार होने के लिए जहाज के समान हैं।

सम्यक्रत्नत्रय निधि दानी, लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी।
शत इन्द्रनिकरि वंदित सोहैं, सुर नर पशु सबके मन मोहैं।।७।।

---

* चार हाथ का एक धनुष और २४ अंगुल का १ हाथ होता है।

** ८४ हजार को ८४ हजार से गुणा करने पर एक पूर्व होता है और उसे एक करोड़ से गुणा करने पर एक कोटिपूर्व कहलाता है

अर्थ- आप रत्नत्रय की निधि (कोष) के देने वाले हैं और लोक तथा अलोक का प्रकाश करने वाले ज्ञान सहित हैं। आपको सौ इन्द्र नमस्कार करते हैं और आपके दर्शन कर देव, मनुष्य और पशु सब का मन मोहित हो जाता है।

दोहा

तुमको पूजै वन्दना, करै धन्य नर सोय।
"द्यानत" सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय।।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- द्यानतरायजी कहते हैं कि हे विद्यमान बीस तीर्थंकर ! जो तुम्हारी पूजा करते हैं और वन्दना करते हैं। वे मनुष्य धन्य हैं तथा जो तुम्हारे प्रति मन में श्रद्धा रखते हैं। वे भी धर्मात्मा कहलाते हैं।

जिनपूजा का फल

जिनपूजा से इन्द्र, तीर्थंकर, नारायण और चक्रवर्तियों की समस्त सम्पदाएं शीघ्र ही प्राप्त होती हैं। धन, धान्य, महाभाग्य, सौभाग्य, सम्पदा, पुत्र, मित्र, स्त्री, उत्तम कुल, उच्च गोत्र, दीर्घ आयु, दुर्गति का नाश, पाप परम्परा का विनाश, अभीष्ट फल की प्राप्ति, मणिमुक्ता फल आदि की उपलब्धि, मुक्ति का उत्तम कारण तथा संसार भ्रमण का नाश करने वाला, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तथा स्वर्ग मोक्ष का सुख जिनपूजा से प्राप्त होता है।

जिनपूजा करने वाले मनुष्य के सम्मुख रोग कुपित हुए की तरह कभी नहीं देखता है। दरिद्रता आश्चर्य में पड़ी हुई के समान प्रतिदिन दूर से देखती है। विरक्त स्त्री के समान खोटी गति उसे छोड़ देती है तथा अभ्युदय, सांसारिक वैभव मित्र के समान कभी संग नही छोड़ता है। कहा भी है–

यः करोति जिनेन्द्राणां पूजनं स्नपनं वा।
सः पूजामाप्य निःशेषां लभते शाश्वतीं श्रियम्।।

जो जिनेन्द्र भगवान् का पूजन और अभिषेक करता है, वह सम्पूर्ण पूजा प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अविनाशी मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त कर अविनाशी मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त होता है।

शास्त्रों में वर्णित उक्त पूजा माहात्म्य को जानकर प्रत्येक श्रावक को प्रतिदिन जिनार्चा अवश्य करना चाहिए।

कृत्रिमाकृत्रिम-जिनचैत्य-पूजार्घ्य

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्,
वन्दे भावन-व्यन्तरान्-द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान्।
सद्गन्धाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर्,
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये ।।

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- मैं दुष्ट कर्मों के शान्त करने के लिए भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी तथा कल्पवासी देवों के भवनवर्ती, विमानवर्ती अकृत्रिम चैत्यालयों को एवं तीन लोकवर्ती कृत्रिम तथा अकृत्रिम मनोहर चैत्यालयों को नमस्कार करता हूँ और जल–चन्दन–अक्षत–पुष्प–नैवेद्य–दीप–धूप–फल–रूपी द्रव्यों द्वारा सदा पूजन करता हूँ।

वर्षेषु वर्षान्तरपर्वतेषु नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानाम्।।१।।

अर्थ- भरतादि क्षेत्रों में, क्षेत्रों के मध्यभाग में, पर्वतों में, नन्दीश्वर द्वीप में सुमेरू पर्वतादि में जितने भी जिनेन्द्र भगवान् के चैत्यालय हैं, उन सबको मैं नमस्कार करता हूँ।

अवनितल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां,
वन-भवन-गतानां दिव्य-वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृतानां देवराजार्चितानां,
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि।।२।।

अर्थ- पृथ्वीतल के नीचे वन तथा भवनों में, दिव्य वैमानिक देवों में, विमानों में तथा इस मध्यलोक में मनुष्यों के द्वारा बनाये हुए तथा इन्द्रों के द्वारा पूजित ऐसे जितने भी कृत्रिम एवं अकृत्रिम जिन चैत्यालय हैं। मैं उन सबकी भाव पूर्वक वन्दना करता हूँ।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवा-
श्चन्द्राम्भोजशिखण्डिकण्ठ-कनक-प्रावृड् घनाभा-जिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा-दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः।।३।।

अर्थ- जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड, अर्द्ध पुष्पकरवरद्वीप इस प्रकार ढाई द्वीप के क्षेत्रों में चन्द्रमा, कमल, मोर के कण्ठ स्वर्ण तथा वर्षाकाल के बादल के समान रंगवाले जिनेन्द्रदेव जो सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र के उत्तम लक्षणों को धारण करने वाले हैं और जिन्होंने आठों ही कर्मरूप ईंधन को जला दिया है, उन सभी भूत, वर्तमान, भविष्यत् काल सम्बन्धी तीर्थंकरों को मेरा नमस्कार हो।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जम्बूवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषांके।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुख-शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवन-महितले यानि चैत्यालयानि।।४।।

अर्थ- शोभा सयुंक्त मेरुपर्वत, कुलाचल, विजयार्धपर्वत, शाल्मलिवृक्ष, जम्बूवृक्ष, वक्षारपर्वत, चैत्यवृक्ष, रतिकरपर्वत, रुचकवरपर्वत, कुण्डलवरपर्वत, मानुषोत्तरपर्वत, इष्वाकारगिरि, अंजनगिरि, दधिमुखपर्वत, व्यंतरलोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक तथा इस पृथ्वी पर स्थित भवनों में जितने भी चैत्यालय हैं, उन सबकी मैं वन्दना करता हूँ।

द्वौ कुन्देन्दु-तुषार-हार-धवलौ द्वाविन्द्रनील-प्रभौ,
द्वौ बन्धूक-सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ।
शेषाः षोडश जन्म-मृत्यु रहिताः सन्तप्त-हेम-प्रभा-
स्ते संज्ञान-दिवाकराः सुर-नुताः सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ।।५।।

ओं ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धिकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- दो तीर्थंकर (चंद्रप्रभ, पुष्पदन्त) कुन्द पुष्प–चन्द्रमा तुषारहार के समान सफेद वर्णवाले हैं। दो तीर्थंकर (मुनिसुव्रतनाथ, नेमिनाथ) इन्द्र नीलमणि के समान नीले वर्ण के हैं। दो तीर्थंकर (पद्मप्रभ, वासुपूज्य) बन्धूक पुष्प के समान

लाल वर्ण के हैं। दो तीर्थंकर (सुपार्श्वनाथ पार्श्वनाथ) प्रियंगु पुष्प के समान हरित् वर्ण वाले हैं। शेष सोलह तीर्थंकर तपे हुए स्वर्ण के समान वर्ण वाले हैं। सभी तीर्थंकर जन्म मरण से रहित हैं, सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य हैं। देवों द्वारा आराधनीय हैं। हमें सिद्धि प्रदान करें।

इच्छामि भंते! चेइयभत्ति काउसग्गो कओ तस्सालोचेउं। अहलोय-तिरियलोय- उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण चेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय त्ति चउ-व्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण दिव्वेण गंधेण दिव्वेण अक्खेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण दीवेण दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण फलेण, णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति वंदंति णमस्संति। अहमवि इह संतो तत्थ संताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि। दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं।

अर्थ- हे भगवन् ! मैंने चैत्यभक्ति कायोत्सर्ग किया है और उसकी आलोचना करता हूँ। अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक में जितने कृत्रिम और अकृत्रिम जिनालय हैं, उन सबकी भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव अपने अपने परिवार सहित दिव्य अभिषेक दिव्य गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य सुवासित फल से निरंतर पूजा, अर्चा, वन्दना और नमस्कार करते हैं। मैं यहां पर रहकर भी उनकी यहां से पूजा अर्चा वन्दना और नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःखों का क्षय हो कर्मों का क्षय हो, बोधि (रत्नत्रय) की प्राप्ति हो, श्रेष्ठ गति की प्राप्ति हो, समाधि पूर्वक मरण हो और जिनगुण सम्पत्ति प्राप्त हो।

(आशीर्वाद प्राप्ति हेतु पुष्पांजलि छोड़ें)

अथ पौर्वाह्निक-(माध्याह्निक)(आपराह्निक) देववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा वंदना-

स्तवसमेतं श्रीचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्
तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अर्थ- अब प्रातःकाल संबंधी ! (मध्यकाल संबंधी) (सायंकाल संबंधी) देववन्दना के लिए प्राचीन आचार्यों द्वारा कहे क्रम के अनुसार, सभी कर्मों के क्षय के लिए भावपूजा, भाववंदना, भावस्तवन से युक्त मैं श्री चैत्य भक्ति संबंधी कायोत्सर्ग करता हूँ।

उतने काल के लिए पाप कर्म रूप दुष्प्रवृति का त्याग करता हूँ।

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

इस प्रकार ६ बार बोलकर णमोकार मंत्र का जाप करें।

जिनदर्शन महिमा

दृष्टस्त्वं जिनराजचन्द्र ! विकसद् भूपेन्द्र नेत्रोत्पले,
स्नातं त्वन्नुति चन्द्रिकाम्भसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शान्तिं मया गम्यते,
देव ! त्वद्‌गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनम्।।

अर्थः- हे जिनराजचन्द ! मैंने आपका दर्शन क्या किया मानो उस सरोवर में स्नान किया है, जिसमें राजाओं के नेत्ररूपी नीलकमल विकसित हो रहे हैं, आपकी स्तुति रूपी चांदनी हो, जिसमें जल है तथा जो विद्वज्जन रूपी चकोरों के नेत्रों को आनन्द देने वाला है। आज पापरूपी गर्मी से उत्पन्न समस्त दुःखों का समूह शान्त कर दिया है। हे देव ! अब मैं अपना चित्त आपमें ही लगाकर जा रहा हूँ। आपका दर्शन फिर से हो।

सिद्धपूजा (संस्कृत)

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्म-स्वरावेष्टितं,
वर्गापूरित-दिग्गताम्बुज-दलं तत्संधि-तत्त्वान्वितम्।
अंतः पत्र-तटेष्वनाहत-युतं ह्रींकार-संवेष्टितं
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभ-कण्ठीरवः।।१।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अर्थ- ऊपर और नीचे रेफसे युक्त तथा बिन्दुसंयुक्त हकार लिखें अर्थात् 'र्हं' लिखें। उसे ब्रह्मस्वर से वेष्टित करें। दिग्गत कमल के आठ पत्रों पर ८ वर्ग लिखें और पत्रों की आठों सन्धियों में 'तत्त्व' अर्थात् 'णमो अरहंताणं' लिखें। पत्रों के भीतर किनारों पर ॐकार लिखें, फिर सम्पूर्ण यंत्र को ह्रींकार की तीन रेखाओं से वेष्टित करें। यह सिद्ध यंत्र है। इस देव का जो चिन्तवन करता है वह मुक्ति का भोक्ता कर्म रूपी हाथी के नाश के लिए सिंह के समान होता है।

निरस्त-कर्म-संबन्धं सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्त्तमनुपद्रवम्।।२।।

अर्थ- कर्म सम्बन्ध से रहित सूक्ष्म, नित्य, निरामय, अमूर्त्त और शांत सिद्ध परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ।

पुष्पांजलिः

सिद्धौ निवासमनुगं परमात्म-गम्यं
हान्यादि भावरहितं भव-वीत-कायम्।

रेवापगा-वर- सरो-यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वरसिद्ध-चक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- सिद्धालय में जिनका क्रम से निवास होता रहता है, जो परमात्मा के द्वारा जानने योग्य हैं, हीनाधिक धर्मरहित हैं, संसार और शरीर जिनका छूट गया है, उन सिद्ध समूह की रेवा नदी, सुन्दर तालाब और यमुना के जल से मैं पूजा करता हूँ।

आनन्द-कन्द-जनकं घन-कर्म-मुक्तं,
सम्यक्त्व-शर्म-गरिमं जननार्तिवीतम्।
सौरभ्य-वासित-भुवं हरि-चन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- महान् सुख के देने वाले, घनकर्मों से रहित, सम्यक्त्व और सुख से परिपूर्ण तथा जन्म की पीड़ा से रहित कीर्तिरूपी सुंगन्धिता के निवास स्थान श्रेष्ठ सिद्ध समूह को मलयगिरि के चन्दनों की मनोहर उत्तम गन्ध से पूजता हूँ।

सर्वावगाहन-गुणं सुसमाधि-निष्ठं
सिद्धं स्वरूप-निपुणं कमलं विशालम्।
सौगन्ध्य-शालि- वनशालि- वराक्षतानां
पुंजैर्यजे-शशिनिभैर्वरसिद्धचक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जो सबको अवगाहन देने रूप गुण से संयुक्त हैं, उत्तम समाधि में स्थित हैं, सिद्ध हैं, स्वरूप में निपुण हैं, कृतकृत्य हैं और विशाल हैं उन श्रेष्ठ सिद्धों की मैं सुगन्धित शालिवन के धान्य से निकले हुए श्रेष्ठ अक्षतों के चन्द्रमा के समान स्वच्छ पुंज से पूजा करता हूँ।

नित्यं स्वदेह-परिमाणमनादिसंज्ञं,
द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतम्।
मंदार-कुन्द-कमलादि-वनस्पतीनां,
पुष्पैर्यजे शुभतमै-र्वरसिद्धचक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- सदा अपने अन्तिम शरीर के बराबर रहने वाले सिद्ध; यह अनादि संज्ञा धारण करने वाले, अन्य द्रव्य की अपेक्षा से रहित, अमृतस्वरूप तथा जन्म–मरण से रहित श्रेष्ठ सिद्ध–समूह को मैं मन्दार, कुन्द और कमल आदि वनस्पति के पुष्पों से पूजा करता हूँ।

ऊर्ध्व-स्वभाव-गमनं सुमनो-व्यपेतं,
ब्रह्मादि-बीज-सहितं गगनावभासम्।
क्षीरान्न-प्राज्य-वटकैः रसपूर्णगर्भै-
र्नित्यं यजे चरुवरैर्वरसिद्धचक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जो ऊर्ध्वगमन–स्वभाव वाले हैं, मन से रहित हैं, आत्मा के स्वाभाविक मूलगुणों से युक्त हैं, आकाश के समान भासित होने वाले हैं उन श्रेष्ठ सिद्धों की दूध, अन्न और घी से बने हुए रसपूर्ण बाटियों से सदा पूजा करता हूँ।

आतङ्क-शोक-भय-रोग-मद-प्रशान्त,
निर्द्वन्द्व-भाव-धरणं महिमा-निवेशम्।
कर्पूर-वर्ति-बहुभिः कनकावदातै-
र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जिन्होंने आंतक, शोक, भय, रोग और अभिमान को नष्ट कर दिया है, जो निर्द्वन्द्वभाव से युक्त हैं और महिमा के स्थान हैं उन श्रेष्ठ सिद्धों की कपूर और वर्तिकाबहुल स्वर्णदीपकों से पूजा करता हूँ।

पश्यन्समस्त-भुवनं युगपन्नितान्तं
त्रैकाल्य-वस्तु-विषये निविड़प्रदीपम्।
सद्द्रव्यगन्ध-घनसार- विमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्धचक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जो एक साथ सम्पूर्ण संसार को पूरी तरह से देखते जानते हैं और तीन काल की वस्तुओं के प्रकाशित करने के लिए दीप के समान हैं उन श्रेष्ठ सिद्धों की सुगन्धित द्रव्य और कर्पूर मिश्रित धूप से मैं पूजा करता हूँ।

सिद्धासुरादिपति-यक्ष-नरेन्द्र-चक्रै
र्घ्येयं शिवं सकल-भव्य-जनैः सुवन्द्यम्।
नारङ्गिपूग-कदली-फल-नारिकेलैः
सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- सिद्ध, असुर और मनुष्यों के अधिपति जिनका सदा ध्यान करते हैं, जो शिवस्वरूप हैं और सकल भव्य पुरुषों द्वारा वन्दनीय हैं उन श्रेष्ठ सिद्धों की नांरगी, सुपारी, केला और नारियल आदि श्रेष्ठ फलों से मैं पूजा करता हूँ।

गन्धाढ्यं सुपयो मधुव्रत-गणैः संगं वरं चन्दनं,
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकम्।
धूपं गंधयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये,
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरंवाञ्छितम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- मैं विमलसेन सुगन्धित जल, भौरें जिस पर मंडरा रहें हैं ऐसा श्रेष्ठ चन्दन, निर्मल अक्षत और फूल, सुन्दर नैवेद्य, दीप, सुगन्धित धूप, विविध प्रकार के श्रेष्ठ फल, इन सबको सिद्धों के चरणों में इष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए एक साथ चढ़ाता हूँ।

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं
सूक्ष्म-स्वभाव-परमं यदनन्तवीर्यम्।
कर्मौघ-कक्ष-दहनं सुख-सस्यबीजं,
वन्दे सदा निरुपमंवर सिद्धचक्रम्।।
कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी निकेतनम्।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम्।।

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जो ज्ञानोपयोग से विमल हैं फिर भी जिनका आत्म स्वरूप निर्मल है। अत्यन्त सूक्ष्म स्वभावी है फिर भी जो अनन्त शक्तिमान हैं। कर्म समूह रूपी वन को जलाने के लिए अग्नि हैं फिर भी जो सुखरूपी धान्य के बीज हैं उन उपमारहित श्रेष्ठ सिद्ध–चक्र को मैं नमस्कार करता हूँ। आठ कर्मों से रहित मोक्षलक्ष्मी के मन्दिर और सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त सिद्ध समूह को मैं नमस्कार करता हूँ।

त्रैलोक्येश्वर-वन्दनीय-चरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्ध-चण्ड-मनसः सन्तोऽपि तीर्थंकराः।
सत्सम्यक्त्व-विबोध-वीर्य-विशदाव्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्।।

अर्थ- तीन लोक के बड़े–बड़े शक्तिशाली जीव जिनके चरणों की वन्दना करते हैं, वे तीर्थंकर भी एकाग्रचित से जिनकी आराधना कर मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त हुए, जो क्षायिकसम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और निर्मल अव्याबाध आदि गुणों के धारी हैं उन विशुद्ध उदय से सम्पन्न सिद्धों की मैं सदा बार–बार स्तुति करता हूँ।

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

जयमाला

विराग सनातन शांत निरंश, निरामय निर्भय निर्मल हंस।
सुधाम विबोध-निधान विमोह प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।

अर्थ- हे वीतराग, सनातन, शान्त, अखण्ड, नीरोग, निर्भय, निर्मल, श्रेष्ठ, उत्तम स्थान, ज्ञान के भण्डार और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।१।।

विदूरित संसृति-भाव निरंग , समामृत-पूरित देव विसंग।
अबंध कषाय-विहीन विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।

अर्थ- हे सांसारिक भावों को नष्ट करने वाले, शरीररहित, ममतारूपी अमृत से ओत–प्रोत, देवस्वरूप, संग–रहित, बन्धरहित, कषाय रहित तथा मोह से रहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।२।।

निवारित-दुष्कृतकर्म-विपाश, सदामल-केवल-केलि निवास।
भवोदधि-पारग शांत विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

अर्थ- हे पाप और कर्मरूपी जाल को नष्ट करने वाले, सदा निर्मल केवल–ज्ञान की केलि के निकेतन, संसाररूपी समुद्र को पार करने वाले, शान्त और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।३।।

अनंत-सुखामृत-सागर-धीर, कलंक-रजो-मल-भूरि समीर।
विखण्डित-काम विराम विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

अर्थ- हे अनन्त सुखरूपी अमृत के समुद्र, धीर, भावकर्म, द्रव्यकर्म और नोकर्म को उड़ाने के लिए विपुल वायुस्वरूप, काम को नष्ट करने वाले, अपने स्वरूप में विशेष रूप से रमण करने वाले और निर्मोही ही विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।४।।

विकार विवर्जित तर्जित शोक, विबोध-सुनेत्र-विलोकित-लोक
विहार विराव विरंग विमोह, प्रसीद-विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

अर्थ- हे विकाररहित, शोक को तर्जित करने वाले, ज्ञानरूपी उत्तम नेत्र से संसार को देखनेवाले, भाररहित, शब्दरहित, वर्णरहित और निर्मोही विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।५।।

रजोमल-खेद-विमुक्त विगात्र, निरंतर नित्य सुखामृत-पात्र।
सुदर्शन राजित नाथ विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

अर्थ- हे कर्ममल के खेद से रहित, अशरीरी, सब प्रकार के व्यवधानों से पारंगत, नित्य, सुखरूपी अमृत के पात्र, उत्तम सम्यक्त्व से सुशोभित, सब के स्वामी और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।६।।

नरामर-वंदित निर्मल-भाव अनंत-मुनीश्वर पूज्य विहाव।
सदोदय विश्व महेश विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

अर्थ- हे मनुष्य और देवों द्वारा पूज्य निर्मल स्वभाववाले, अनन्त बड़े—बड़े मुनियों से पूज्य, हाव—भाव आदि विकारों से रहित, सदा उदयशील, विश्वस्वरूप, महेश और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।७।।

विदम्भ वितृष्ण विदोष विनिंद्र, परापर शंकर सार वितन्द्र।
विकोप विरूप विशंक विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह।।

अर्थ- हे दम्भरहित, तृष्णारहित, दोषरहित, निद्रारहित, परमोत्कृष्ट, सुख देने वाले, साररूप, तन्द्रारहित, कोपरहित, रूपरहित, शंकारहित और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।८।।

जरा-मरणोज्झित-वीत-विहार, विचिंतित निर्मल निरहंकार।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

अर्थ- हे जरा और मरण से रहित, विहारवर्जित, चिन्तारहित, निर्मल, अहंकाररहित, अचिन्त्य चारित्र के धारी, दर्परहित और मोहरहित, विशुद्ध सिद्धसमूह ! आप हम पर प्रसन्न हों।।६।।

विवर्ण विगंध विमान विलोभ, विमाय विकाय विशब्द विशोभ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह, प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध समूह।।

अर्थ- हे वर्णरहित, गन्धरहित, मानरहित, लोभरहित, मायारहित, शरीररहित, शब्दरहित, लौकिक शोभा से शून्य, आकुलतारहित, असहाय, सबका हित करने वाले और मोहरहित विशुद्ध सिद्धसमूह! आप हम पर प्रसन्न हों।।१०।।

घत्ता

असम-समयसारं चारु-चैतन्य चिन्हं,
पर-परणति-मुक्तं पद्मनंदीन्द्र-वन्द्यम्।

निखिल-गुण-निकेतं सिद्धचक्रंविशुद्धं,
स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिम्।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरिमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- इस प्रकार जो मनुष्य असम या अनुपम अर्थात् संसारी आत्माओं से भिन्न समयसार स्वरूप, सुन्दर निर्मल चेतना जिनका चिन्ह है जड़ द्रव्य के परिणमन से रहित तथा पद्मनंदीदेव मुनि द्वारा वन्दनीय एवं समस्त गुणों के घर रूप सिद्धचक्र को जो पुरुष स्मरण करता है, नमस्कार करता है तथा उनका स्तवन करता है वह पुरूष मोक्ष पा लेता है।

अविनाशी अविकार परम-रस-धाम हो,
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिरामं हो।
शुद्धबुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत हो,
जगत-शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो।।
ध्यान अगनिकर कर्म कलंक सबै दहे,
नित्य निरंजन देव सरूपी ह्वै रहे,
ज्ञायक के आकार ममत्व निवार कैं।
सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकैं।।
अविचल ज्ञान प्रकाशते, गुण अनन्त की खान।
ध्यान धरैं सो पाइए, परम सिद्ध भगवान।।३।।
अविनाशी आनन्दमय, गुण पूरण भगवान।
शक्ति हिये परमात्मा, सकल पदारथ ज्ञान।।४।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- हे भगवन् ! आप अविनाशी अविकार अनुपम सुख के स्थान मोक्ष स्थान में रहने वाले सर्वज्ञ तथा स्वाभाविक गुणों में रमण करने वाले हो और निर्मल ज्ञान धारी आत्मिक गुणों के अनुकूल तथा अनादि और अनंत हो। हे संसार के शिरोमणि सिद्ध भगवान आप की सदा जय होवे।

जिन्होंने शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि से समस्त कर्म रूपी कलंक को जला दिया है तथा जो नित्य निर्दोष देव रूप हो रहे हैं एवं जो मोह भाव को त्यागकर ज्ञान स्वरूप है उन सिद्ध परमात्मा को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

जो निश्चल केवलज्ञान से प्रकाशमान हैं तथा अनंत गुणों के खान स्वरूप हैं ऐसे पूज्यनीय सिद्ध भगवान को केवल ध्यान द्वारा ही पुरुष पा सकते हैं।

सिद्ध-पूजा

स्थापना

दोहा

परम ब्रह्म परमात्मा, परम ज्योति परमेश।
परम निरंजन परम शिव, नमों सिद्ध जगदीश।।

ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्नि-हितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- हे पवित्र आत्मन् ! आप कर्म मल रहित हैं, केवलज्ञान सहित हैं, सबसे महान् ईश्वर हैं, रागद्वेष आदि रहित हैं और अनन्त सुख सहित हैं। इससे तीन लोकों के नाथ आप सिद्ध भगवान् को, मन–वचन और काय से नमस्कार करता हूँ।

अष्टक

सोरठा

मोह तृषा दुख देह, सो तुमने जीती प्रभो।
जल से पूजों नेह, मेरा रोग मिटाइयो।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामिति स्वाहा।

अर्थ- हे सिद्ध भगवन् ! मुझे मोह रूपी प्यास दुःख देती है उसे आपने जीत लिया है–आपने मोहनीय कर्म को नष्ट कर दिया है। मैं प्रेमपूर्वक जल से आपकी पूजा करता हूँ। आप मेरे जन्म–मरण आदि रोगों को दूर कर दीजिए।

हम भव आतप मोँहि, तुम न्यारे संसार तैं।
कीजे शीतल छोँहि, चन्दन सों पूजा करों।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हम लोग नरक आदि गतियों में भ्रमण करते हुए शरीर आदि अनेक प्रकार के दुःख भोग रहे हैं, और आप इन सब संसार के दुःखों से दूर हैं। इसलिए आप संसार की गर्मी को दूर करने के लिए शीतल करने वाली छाया दीजिए। मैं चंदन से प्रतिदिन आपकी पूजा करता हूँ।

हम औगुन समुदाय, तुम अक्षत सब गुण भरे।
पूजों अक्षत लाय, दोष नाश गुण कीजिये।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे सिद्ध भगवन् ! हम संसारी जीव मिथ्यात्व आदि दोष रहित हैं और आप अविनाशी सम्यक्त्व आदि गुणों से शोभित हो इसलिए हमारे दोषों को नाश कर गुण उत्पन्न कर दीजिये। मैं आपकी अक्षत से पूजा करता हूँ।

काम अग्नि है मोहि, निश्चय शील स्वभाव तुम।
पुष्पं चढ़ाऊं तोहि, सेवक की पावक हरो।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! मुझे कामदेव रूपी अग्नि दुःख देती है और आप परमशील रूप शीतलता के धारण करने वाले हो। इसलिए मैं तुम्हें पुष्प चढ़ाता हूँ जिससे मुझ सेवक की कामदेव रूपी अग्नि शांत हो जावे।

हमें क्षुधा-दुःख भूर, ज्ञान खड्ग सों तुम हती।
मेरी क्षुधा बाधा चूर, नेवज सों पूजों तुम्हें।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे सिद्ध परमेष्ठिन् ! हमें क्षुधारूपी दुःख बहुत सताता है। आपने क्षुधा को केवलज्ञान रूपी तलवार से नष्ट कर दिया है। मैं आपकी नैवेद्य से पूजा करता हूँ। आप मेरे क्षुधा रूपी दुःख को नष्ट कर दीजिए।

मोह तिमिर हम पास, तुम पै चेतन ज्योति है।
पूजों दीप प्रकाश, मेरो तम निरवारियो।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे परमात्मन् ! हम मोहनीयकर्म रूपी अन्धकार में पड़े हुए हैं और आपके पास केवलज्ञान रूपी प्रकाश है। इसलिए मैं आपकी दीपक के प्रकाश से पूजन करता हूँ। आप मेरे मोह रूपी अन्धकार को दूर कर दीजिए। अर्थात् मेरे मोहनीयकर्म को नष्ट कर केवलज्ञान प्रकट कर दीजिए।

रुल्यो कर्म वन-जाल, मुक्ति माहिं तुम सुख करो।
खेऊँ धूप रसाल, अष्ट कर्म-वन जारियो।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिनेअष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे सिद्ध भगवन् ! मैं ज्ञानावरण आदि आठ कर्मरूप वन के जाल में अर्थात् घने जंगल में भटक रहा हूँ और आप मोक्ष महल में सुख भोग रहे हैं, इसलिए मैं सुगन्धित धूप खेता हूँ। आप मेरे आठ कर्म रूपी बन को जला दीजिए, जिससे मैं भी आपके समान मोक्ष के सुख को प्राप्त कर सकूँ।

अन्तराय दुखकार, तुम अनन्त थिरता लिए ।
पूजों फल धर सार, विघन टार शिवफल करो।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे परमात्मन् ! मुझे अन्तरायकर्म दुःख देता है और आप अनन्त काल के लिए मोक्ष–सुख प्राप्त कर चुके हैं। मैं उत्तम फूलों से आपकी पूजा करता हूँ। आप मेरे अन्तरायकर्म को दूर कर मोक्षरूपी फल दीजिए।

हम में आठों दोष, जजों अरघ ले सिद्ध जी।
वसु गुण दीजे मोय, "द्यानत" कर जोड़े खड़ो।।

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे सिद्ध भगवन् ! हममें ज्ञानावरण आदि कर्म रूपी आठ दोष हैं और आपने आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है। इसलिये अर्घ्य लेकर आपकी पूजा करता हूँ। आप हमें भी सम्यक्त्व आदि गुण वाली मोक्ष पर्याय दीजिये। यह "द्यानतराय" कवि हाथ जोड़े खड़ा है।

जयमाला

दोहा

आठ कर्म दृढ़ बन्ध सों, नख शिख बंध्यो जहान।
बन्ध रहित वसु गुण सहित, नमूं सिद्ध भगवान्।।१।।

अर्थ- हे सिद्ध भगवन् ! ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के मजबूत बन्धनों से यह सब संसार सिर से पैर तक अच्छी तरह बँधा हुआ है। आप इन बन्धनों से रहित हैं और अनन्तज्ञान आदि आठ गुणों से सहित हैं इसलिये आपको नमस्कार करता हूँ।

छन्द पद्धरी (अष्ट गुण)

सुखसम्यग्दर्शनज्ञान धरं, बलना गुरु वा लघु बाध हरं।
अवगाह अमूरत नायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।२।।

अर्थ- अनन्त सुखमय सम्यग्दर्शन (मोहनीयकर्म के अभाव से) अनन्त दर्शन (दर्शनावरण कर्म के अभाव से), अनन्तज्ञान (ज्ञानावरण कर्म के अभाव से), अनन्तबल अथवा अनन्तवीर्य (अन्तरायकर्म के अभाव से), अगुरुलघु (गोत्रकर्म के अभाव से)। बाधहर–अव्याबाध (वेदनीयकर्म के अभाव से), अवगाह (आयुकर्म के अभाव से) और अमूरत (अमूर्तित्व) (सूक्ष्म व नामकर्म के अभाव से) इन आठ गुणों के आप स्वामी हैं और आप सब जीवों को सुख देते हैं। ऐसे सिद्धों को मेरा नमस्कार हो।

अबलं अचलं अतुलं अटलं, अतनं अवचं अकुलं अमलं।
अजरं अमरं जगनायक हैं, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं।।३।।

अर्थ- जो शारीरिक बलरहित हैं, चलते–फिरते नहीं हैं, जिनकी तुलना नहीं की जा सकती, जो स्थिर हैं, देह रहित हैं, वचन रहित हैं, कुल रहित हैं, कर्म–मल

रहित हैं, बुढ़ापा रहित हैं और मरण रहित हैं, ऐसे सब को सुख देने वाले सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

निरभोग स्वभोग अरोग परं, निरयोग असोग वियोगहरं।
अरमं स्वरमं दुख घायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।४।।

अर्थ- हे सिद्ध परमेष्ठिन् ! आप विषय भोग रहित हैं, आत्मा के सुख को भोगने वाले हैं, क्षुधा तृषा आदि रोग रहित हैं, उत्कृष्ट हैं, मन, वचन और काय इन तीन योग रहित हैं, शोक रहित हैं, इष्ट के वियोग रहित हैं, संसार में रमण नहीं करते हैं, आत्मा में लीन रहते हैं और दुःखों का नाश करते हैं। ऐसे सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

सब कर्म कलंक अटंक अजं, नरनाथ सुरेश समूह यजं।
मुनि ध्यावत सज्जन नायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।५।।

अर्थ- हे सिद्ध भगवन् ! आप ज्ञानावरण आदि आठ कर्म रूप दोषों से रहित हैं, जन्म रहित हैं, जिनकी चक्रवर्ती और इन्द्र–समूह पूजा करते हैं, मुनिजन जिनका ध्यान करते हैं और जो सज्जनों के स्वामी हैं। ऐसे सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

अविरुद्ध विशुद्ध प्रबुद्धमयं, सब जानत लोक अलोक चयं।
परमं धरमं शिवलायक हैं, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं।।६।।

अर्थ- हे भगवन् ! आप विरोध रहित हैं, रागद्वेष रहित हैं, ज्ञानमय हैं और लोक और अलोक के समस्त पदार्थों को जानने वाले हैं। उत्कृष्ट धर्म को धारण करने वाले हैं और मोक्ष सुख के अधिकारी हैं, ऐसे सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

निरबंध अबंध अगंध परं, निरभय निरखय निरनय अधरं।
निररूप अनूप अकायक हैं, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं।।७।।

अर्थ- हे सिद्ध भगवान् ! आप ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्म के बंध से रहित हैं, रागद्वेष आदि भाव कर्म रहित हैं, गन्ध रहित हैं, उत्कृष्ट हैं, भय रहित हैं, क्षय रहित हैं, नय (व्यवहार और निश्चय नय) रहित हैं, आघार अर्थात् घर रहित हैं,

रूप रहित हैं, उपमा रहित हैं और शरीर रहित हैं। ऐसे सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

निरभेद अखेद अछेद लहा, निरद्वंद सुछंद अछंद महा।
अक्षुधा अतृषा अकषायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।८।।

अर्थ- जिन्होंने भेदरहिता, खेदरहिता, खेदरहितपना और, खंडरहितपना प्राप्त कर लिया है; जो राग द्वेष रहित हैं, स्वतन्त्र हैं और आज्ञा रहित हैं–स्वामी हैं, भूख रहित हैं, प्यास रहित हैं और कषाय रहित हैं। ऐसे सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

असमं अजमं अतमं लहियं, अगमं सुखमं सुखदं गहियं।
यमराज की चोट बचाय कहैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक है।।६।।

अर्थ- जो समानता रहित हैं, जो जन्म रहित हैं और जिन्होंने अन्धकार रहितपना प्राप्त किया है, जो गमन रहित हैं अथवा जिनका स्वरूप अचिन्तनीय सुखस्वरूप है और सुख देने वाले पद को प्राप्त हैं। जो यमराज् अर्थात् काल की चोट (मार) को बचाने वाले हैं। ऐसे सभी सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ।

निरधाम सुधाम अकामयुतं, अविहार विहार अहारच्युतं।
भवनाशन तीक्षण सायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।१०।।

अर्थ- जो धाम (परिग्रह) रहित हैं, मोक्षरूप उत्तम महल में रहने वाले हैं, कामदेव की पीड़ा से रहित हैं, गमन रहित हैं, मल–मूत्र और भोजन रहित हैं। नरक आदि चारों गतियों को नाश करने के लिए पैने तीर के समान हैं अर्थात् आप संसार को नष्ट करने में समर्थ हैं। ऐसे सिद्ध समूह को मैं नमस्कार करता हूँ।

निरवर्ण अकर्ण अशर्ण नतं, अगतं अमतं अक्षतं अरतं।
अस उत्तम भाव सुखायक हैं, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हैं।।११।।

अर्थ-जो रूप रहित हैं, श्रोत्र (कान) इन्द्रिय रहित हैं और शरण रहित हैं, गति रहित हैं, अप्रमाण हैं, क्षय रहित हैं और राग सहित हैं। ऐसे सुख देने वाले उत्तम भाव सहित सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

निररंग असंग अभंग सदा, अतपं अजयं अवयं सुखदा।
अमदं अगदं गुण क्षायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।१२।।

अर्थ- जो सदा रूप रहित हैं, परिग्रह रहित हैं और विनाश रहित हैं। तप के कार्य से रहित हैं, जयरहित हैं अर्थात् जिन्हें कोई जीत नहीं सकता, आयु कर्म रहित हैं और सदा सुख देने वाले हैं। जाति इत्यादि के मद से रहित हैं, रोग रहित हैं और ज्ञायक गुण सहित हैं इसलिए ऐसे सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

अविषाद अनादि अनाद वरं, भगवंत अनंत महंत नरं।
तुम ध्येय महामुनि ध्यायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।१३।।

अर्थ- जो रंज रहित हैं, आदि रहित हैं, शब्द रहित हैं श्रेष्ठ हैं, ऋद्धि और ऐश्वर्य रहित हैं, अन्त रहित हैं और महापुरुष हैं। आप ध्येय (ध्यान करने योग्य) हैं और गणधर आदि आपका ध्यान करते हैं। इसलिए सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

निरनेह अदेह अगेह सुखी, निरमोह अकोह अलोह सुखी।
तिहुं लोकके नायक पालक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।१४।।

अर्थ- जो स्नेह रहित हैं, देह रहित हैं, घर रहित हैं और अनन्त सुखी हैं। मोह रहित हैं, क्रोध रहित हैं, लोभ रहित हैं और सन्तोषी हैं।जो तीनों लोकों के स्वामी रक्षा करने वाले हैं। ऐसे सब सिद्धों को नमस्कार करता हूँ।

पन्द्रहसौ भाग महा निवसैं, नव लाख के भाग जघन्य लसैं।
तनुवात के अन्त सहायक हैं, सब सिद्ध नमों सुखदायक हैं।।१५।।

अर्थ- जो तनुवातवलय के अन्त में ५२५ धनुष की बड़ी अवगाहना की अपेक्षा पन्द्रहसौ भाग में रहते हैं और साढ़े तीन हाथ की जघन्य अवगाहना की अपेक्षा नौ लाख भाग में रहते हैं और जो सबकी सहायता करने वाले हैं उन सिद्धों के लिए मेरा नमस्कार।

***नोट- पौने सोलह में १५०० का भाग देने में १=१/२० धनुष होते हैं। यह धनुष प्रमाणांगुल से हैं, सिद्धों की अवगाहना उत्सेधांगुल से है। इसमें ५०० का गुणा करने से ५२५ धनुष होते हैं यही सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना है और जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ की होती है।

आशीर्वाद (अन्तिम मंगलाचरण)

अविनाशी अविकार परम रस धाम हो।
समाधान सर्वज्ञ सहज अभिराम हो।।
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अनादि अनन्त हो।
जगत शिरोमणि सिद्ध सदा जयवन्त हो।।
ध्यान अगनि करि कर्म-कलंक सबै दहे।
नित्य निरंजन देव सरूपी हो रहे।।
ज्ञायक के आकार ममत्व निवार कैं।
सो परमातम सिद्ध नमूँ सिर नायकैं।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपामि)

अर्थ- हे सिद्ध भगवन् ! आप विनाश रहित हैं, विकार रहित हैं, उत्तम अनुभव (सम्यग्दर्शन) के स्थान हो, सब गुणों को धारण करने वाले अथवा शान्तिमय हो, लोकालोक के ज्ञाता हो और सहज स्वभाव से सुन्दर हो। आप कर्मरहित शुद्ध हैं, ज्ञाता हैं, विरोध रहित हैं, आदि रहित और अन्त रहित हो। तीन लोक में प्रधान हों, ऐसे सिद्ध भगवान् की सदा जय हो। आपने ध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी कलंक को नष्ट कर दिया है अर्थात् आपने आठों कर्मों को नष्ट कर दिया है। आप सदा के लिए भाव कर्म रहित होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं। आप ज्ञाता व ज्ञानाकार हैं। मोह–मूर्च्छा को दूर कर आप परमात्मा हो गये हैं। इसलिए हे परमात्मन् ! मैं आपको मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

देव-दर्शन का माहात्म्य

जिनेन्द्र देव के मुख का दर्शन करने से मनुष्य को वैसा संतोष होता है, जैसा कि मयूर को मेघसमूह में, बिछुड़े हुए को बन्धुजन में, प्यास से पीड़ित मनुष्य को पानी में, बन्धनबद्ध मनुष्य को बंधनमुक्त होने में, रोगी को स्वस्थता में और दृष्टिहीन को नेत्र प्राप्त करने में होता है।

समुच्चय चौबीसी जिनपूजा

स्थापना

वृषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमति पद्म सुपार्श्व जिनराय।
चन्द पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज्य पूजित सुरराय।।
विमल अनन्त धर्म जस उज्ज्वल, शान्तिकुन्थुअरमल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरपर्यन्त-चतुर्विंशति-जिनसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरपर्यन्त-चतुर्विंशति-जिनसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरपर्यन्त-चतुर्विंशति-जिनसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अर्थ- सौधर्मेन्द्र द्वारा विनयपूर्वक पूजित ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य , विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्द्धमान के चरणों में स्थापना हेतु पुष्प चढ़ाता हूँ।

अष्टक

मुनि मन-सम उज्जवल नीर, प्रासुक गन्ध भरा।
भरि कनक कटोरी नीर, दीनी धार धरा।
चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द-कन्द सही।
पद जजत हरत भवफन्द, पावत मोक्ष-मही।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-वीरान्तेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- श्री वृषभ आदि चौबीस तीर्थंकर चन्द्रमा के समान आनन्द को देने वाले हैं। जो भव्य जीव उनके चरणों की पूजा करता है, वह संसार के बन्धन से छूट

जाता है और मोक्ष रूपी उत्तम स्थान को प्राप्त करता है। इसलिए हे चौबीसों भगवन् ! मैं मुनियों के मन के समान शुद्ध और सुगंधित जल की धारा सोने की कटोरी में भरकर आपके चरणों में चढ़ाता हूँ।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंग भरी।
जिन चरनन देत चढ़ाय, भव आताप हरी।।चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-वीरांतेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवन् ! मैं गोशीर कपूर मिलाकर उत्तम रंग वाली चन्दन की धारा को आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। जो संसार के समस्त दुःखों को दूर करने वाली है।

तन्दुल सित सोम समान, सुन्दर अनियारे।
मुक्ताफल की उनमान, पुंज धरों प्यारे।। चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-वीरांतेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवन् ! मैं चन्द्रमा के समान सफेद सुन्दर अनोखे और मोतियों के समान चमकदार तन्दुल के पुंज आपके चरणों में चढ़ाता हूँ।

वरकंज कदम्ब कुरंड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन अग्र धरों गुणमंड, काम-कलंक हरे।। चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यः कामरोगविनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवान् ! मैं श्रेष्ठ कमलादि सुगन्धित पुष्पों का समूह आपके चरणों में चढ़ाता हूँ, जो कामवासना रूपी दोष को दूर करनेवाला है।

मनमोहन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने।।चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवन् ! मैं मन को प्रसन्न करने वाले, सुन्दर रस वाले पवित्र और उत्तम स्वाद वाले, अभी–अभी बने हुए लड्डू आदि नैवेद्य आपके चरणों में चढ़ाता हूँ, जिनके द्वारा पूजा करने से भूख आदि कष्ट दूर हो जाते हैं।

तम खंडन दीप जगाय, धारों तुम आगे।
सब मोह तिमिर क्षय जाय, ज्ञान कला जागे।।चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवन् ! मैं अन्धकार को नाश करनेवाला दीपक जलाकर आपके सामने रखता हूँ। जिससे मोह रूपी अन्धकार नाश हो जाता है और ज्ञानरूपी चन्द्रमा की कला प्रकट होती है।

दशगंध हुताशन मांहि, हे प्रभु खेवत हों।
मिस धूम करम जरि जांहि, तुम पद सेवत हों।।चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवन् ! मैं अत्यन्त सुगन्धित दशांग धूप अग्नि में डालता हूँ तथा अग्नि में उठते हुए धुएँ के बहाने से अपने कर्म को जलाने के लिए आपके चरणों में धूप चढ़ाता हूँ।

शुचि-पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृग मन को प्यार, पूजत सुख पायो।।चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांतेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवन् ! मैं पवित्र पके हुए, रसीले और देखने में आँखों तथा मन को प्यारे लगने वाले सब ऋतुओं के अच्छे–अच्छे पके फल आपके चरणों में चढ़ाने के लिए लाया हूँ, जिनके द्वारा पूजा करने से मुझे सुख प्राप्त होता है।

जल फल आठों शुचि सार, ताकों अर्घ करों।
तुमकों अरपों भवतार, भव-तरि मोक्ष वरों।।चौबीसों०।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादि-वीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चौबीसों भगवन् ! मैं पवित्र और उत्तम जल–फलादि आठों द्रव्यों का अर्घ्य बनाकर आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। आप भव्य जीवों को संसार से पार करने वाले हैं। इसलिए आपको अर्घ्य चढ़ाकर संसार समुद्र को पार करके मोक्ष रूप लक्ष्मी को प्राप्त करूँगा।

जयमाला

दोहा

श्रीमत तीरथनाथ पद, माथ नाय हित हेत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमरपद देत।।१।।

अर्थ- अजर अमर पद देने वाले अंतरंग बहिरंग लक्ष्मी के स्वामी तीर्थंकर भगवन्तों के चरणों में अपने हित के लिये मस्तक झुकाकर इस समय उनके गुण समूह को गाता हूँ।

घत्तानन्द

जय भव-तम-भंजन जन-मन-कंजन, रंजन दिन-मनि स्वच्छ करा।
शिवमग परकाशक अरि-गण-नाशक, चौबीसों जिनराज वरा।।२।।

अर्थ- संसार में सबसे उत्तम उन ऋषभ आदि चौबीसों तीर्थंकरों की जय हो, जो संसार में फैले हुए अज्ञान रूप अन्धकार को नाश करने वाले हैं तथा भव्य जीवों के मन रूप कमलों को खिलाने के लिए सूर्य की निर्मल किरणों के समान हैं तथा जो मोक्ष का रास्ता दिखाने वाले तथा कर्मरूप बैरियों को नाश करने वाले हैं।

पद्धरी

जय ऋषभदेव रिषि-गण नमंत, जय अजित जीत वसु अरि तुरन्त।
जय सम्भव भव-भय करत चूर, जय अभिनन्दन आनन्द पूर।।३।।

अर्थ- संसार के सभी ऋषि–मुनि जिनको नमस्कार करते हैं ऐसे श्री ऋषभदेव भगवान् की जय हो। जिन्होंने आठों कर्म रूप बैरियों को शीघ्र नष्ट कर दिया है ऐसे श्रीअजितनाथ की जय हो। जो संसार के सभी प्रकार के भयों को नाश करने वाले हैं ऐसे श्री संभवनाथ की जय हो तथा जो अविनाशी सुख से भरपूर हैं, ऐसे श्री अभिनंदननाथ की जय हो।

जय सुमति सुमतिदायक दयाल, जय पद्म पद्म-दुति तन रसाल।
जय जय सुपास भव-पास नाश, जय चन्द चन्द-तन-दुति प्रकाश।।४।।

अर्थ- जो भव्य जीवों को उत्तम ज्ञान का उपदेश देनेवाले तथा अत्यन्त दयावान हैं, ऐसे श्री सुमतिनाथ की जय हो। जिसका शरीर कमल के समान कान्तिमान्

और सुन्दर है ऐसे श्री पद्मप्रभ की जय हो। जो संसार के बन्धन को नाश करने वाले हैं, ऐसे भगवान् श्री सुपार्श्वनाथ की जय हो। जिनका शरीर चन्द्रमा के समान चमकदार है, ऐसे श्री चन्द्रप्रभ की जय हो।

जय पुष्पदन्त दुति दन्त सेत, जय शीतल शीतल गुण निकेत।
जय श्रेयनाथ नुत सहस भुज्ज, जय वासव पूजित वासुपुज्ज।।५।।

अर्थ- जो स्वच्छ दाँतों के समान सफेद और चमकदार शरीर वाले हैं, ऐसे पुष्पदन्त भगवान् की जय हो। जो शांति देने वाले गुणों के घर हैं, ऐसे भगवान् शीतलनाथ की जय हो। जो हजार भुजा वाले इन्द्रादि से नमस्कार किए जाते हैं, ऐसे श्रेयांसनाथ भगवान की जय हो। इन्द्रों से पूजित वासुपूज्य भगवान् की जय हो।

जय विमल विमल पद देनहार, जय जय अनन्त गुण-गण अपार।
जय धर्म धर्म शिव-शर्म देत, जय शान्ति शान्ति-पुष्टी करेत।।६।।

अर्थ- जो मोक्षरूपी पवित्र स्थान को देने वाले हैं, ऐसे भगवान् विमलनाथ की जय हो। जिनके गुणों का कभी अन्त नहीं होता ऐसे अनन्तनाथ भगवान् की जय हो। जो धर्म का उपदेश देकर मोक्ष–सुख को देने वाले हैं, ऐसे भगवान् धर्मनाथ की जय हो। जो आत्मा में शांति–गुण को पुष्ट करते हैं, ऐसे शान्तिनाथ भगवान् की जय हो।

जय कुन्थु कुन्थु-आदिक रखेय, जय अर जिन वसु अरि छय करेय।
जय मल्लि मल्ल हत मोह-मल्ल, जय मुनिसुव्रत व्रत-शल्ल-दल्ल।।७।।

अर्थ- जो कुन्थु आदि बहुत छोटे जीवों की भी रक्षा करते हैं, ऐसे कुन्थुनाथ भगवान् की जय हो। जो आठों कर्म रूप बैरियों का नाश करने वाले हैं ऐसे अरनाथ भगवान् की जय हो। जो मोह रूप वीर योद्धा को मारने वाले हैं, ऐसे भगवान् मल्लिनाथ की जय हो। जो अहिंसादि महाव्रतों के दोषों के नाश करने वाले हैं ऐसे श्री मुनिसुव्रतनाथ की जय हो।

जय नमि नित वासव-नुत सपेम, जय नेमिनाथ वृष-चक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथ-नाथ, जय वर्द्धमान शिव-नगर साथ।।८।।

अर्थ- जो हर समय इन्द्रादि देवों से प्रेम के साथ नमस्कार किए जाते हैं, ऐसे भगवान् नमिनाथ की जय हो। जो धर्मरूप रथ के पहियों की धुरी के समान हैं

अर्थात् धर्म की परम्परा को चलाने वाले हैं, ऐसे भगवान् नेमिनाथ की जय हो। जो असहाय जीवों को सहारा लगाने वाले हैं, ऐसे भगवान् पार्श्वनाथ की जय हो। जो मोक्ष रूप नगर में पहुँचाने वाले उत्तम साथी हैं, ऐसे वर्द्धमान स्वामी की जय हो।

चौबीस जिनंदा आनंद कंदा, पाप-निकंदा सुखकारी।
तिन पद-जुग-चंदा उदय अमंदा, वासव-वंदा हितकारी।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादि वीरांतेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- श्रीऋषभ आदि चौबीस तीर्थंकर आनन्द देने वाले और पापों का नाश करने वाले हैं और उनके दोनों चरण चन्द्रमा के समान अत्यधिक प्रकाशमान हैं। इन्द्रादि देवों से नमस्कार किए जाते हैं और भव्य जीवों का हित करने वाले हैं।

सोरठा

भुक्ति मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराज वर।
तिन पद मन-वच धार, जो पूजैं सो शिव लहैं।।१०।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- श्रीवृषभ आदि चौबीस तीर्थंकर संसार के सभी सुख और मोक्ष के देने वाले हैं। जो जीव मन, वचन, काय से उनके चरणों की पूजा करते हैं, वे मोक्ष पद को प्राप्त करते हैं।

गृहस्थ के नित्य कर्म

जिनेन्द्रपूजा गुरुपर्युपास्ति सत्यानुकम्पा शुभपात्रदानम्।
गुणानुरागः श्रुतरागमस्य नृजन्म-वृक्षस्य फलान्यमूनि।।

जिनेन्द्रदेव की पूजा गुरु की उपासना, समस्त प्राणियो में दया, शुभ पात्रों को दान, मुनियो से अनुराग और शास्त्रों का श्रवण ये मनुष्य जन्म रूपी वृक्ष के फल हैं इसलिए गृहस्थियों को घर में रहते हुए षट्कर्मों को नित्य करना चाहिए।

श्री आदिनाथ जिनपूजा

नाभिराय मरुदेवी के नंदन, आदिनाथ स्वामी महाराज।
सर्वारथसिद्धि तैं आप पधारे, मध्यम लोक मांहि जिनराज।।
इन्द्र देव सब मिलकर आये, जन्म महोत्सव करने काज।
आह्वानन सब विधि मिल करके, अपने कर पूजें प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- सर्वार्थसिद्धि से चय करके मध्यलोक में चौदहवें कुलकर श्री नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र श्री आदिनाथ स्वामी ने जन्म लिया। जन्म महोत्सव मनाने के लिए सभी इन्द्र मिलकर आये और जन्म महोत्सव मनाया। मैं यहाँ, आह्वानन, स्थापन और सन्निधिकरण करके अपने हाथों से उन्हीं आदिनाथ भगवान् के चरणों की पूजा करता हूँ।

क्षीरोदधि को उज्ज्वल जल ले, श्री जिनवर पद पूजन जाय।
जन्म जरा दुःख मेटन कारन, ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

अर्थ- क्षीरसागर का उज्ज्वल निर्मल जल लेकर श्री जिनेन्द्र भगवान् के चरणों की पूजन हेतु पहुँचकर जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु को नष्ट करने वाले जल को भगवान् के चरणों में चढ़ाता हूँ। श्री आदिनाथ के कमलरूपी चरणों पर मैं मन, वचन, काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

मलियागिर चन्दन दाह निकंदन, कंचन झारी में भर ल्याय।
श्री जी के चरण चढ़ाओ भविजन भव आताप तुरत मिट जाय।।

श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- भव्य जीवो ! संसार संताप को नष्ट करने वाला मलयागिरि चन्दन स्वर्ण झारी में भर लाओ और श्री जिनेन्द्र के चरणों में चढ़ाओ, जिससे संसार संताप तुरन्त दूर हो जायेगा। श्री आदिनाथ भगवान् के चरणों पर, मैं मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

शुभ शालि अखंडित सौरभ मंडित, प्रासुक जलसों धोकर ल्याय।
श्री जी के चरण चढ़ाओ भविजन अक्षय पद को तुरत उपाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- सुन्दर, अखंडित, सुगंध से सहित चावल प्रासुक (गर्म जल से) धोकर, हे भव्य जीव श्री आदिनाथ के चरणों में अक्षत लाकर चढ़ाता हूँ ,जिससे अक्षय पद की प्राप्ति का उपाय शीघ्र प्राप्त हो जाय । श्री आदिनाथ भगवान् के चरणरूपी कमलों पर मैं मन वचन काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

कमल केतकी वेल चमेली श्री गुलाब के पुष्प मंगाय।
श्री जी के चरण चढ़ाओ भविजन, काम बाण तुरत नसि जाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।

अर्थ-कमल, केतकी, वेला, चमेली, गुलाब आदि पुष्पों को मंगाकर हे भव्यजीव ! श्री आदिनाथ भगवान् के चरणों में चढ़ाओ, जिससे उनके काम की वेदना शीघ्र नष्ट हो जाती है। श्री आदिनाथ भगवान् के चरणों पर मैं मन, वचन और काय

से न्यौछावर होता हूँ, हे दया के भंडार ! आप भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

नेवज लीना तुरत रस भीना श्री जिनवर आगे धरवाय।
थाल भराऊँ क्षुधा नसाऊँ, जिन गुण गावत मन हरषाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- तुरन्त का बनाया हुआ रस युक्त नैवेद्य लेकर थाली भरकर, श्री आदिनाथ भगवान् के आगे चढ़ाकर, क्षुधा का नाश करने के लिए हर्षित मन होकर हे भगवान् आपके गुणों का गान करता हूँ। श्री आदिनाथ भगवान् के चरणों पर मन, वचन, काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव–भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

जगमग जगमग होत दशौं दिस ज्योति रही मंदिर में छाय।
श्री जी के सम्मुख करत आरती मोह तिमिर नासे दुखदाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- दीपकों की जगमगाहट दसों दिशाओं को आलोकित करती है और दीपकों की ज्योति मंदिर में भी अत्यन्त शोभायमान हो रही है, ऐसे दीपकों से श्री आदिनाथ भगवान् के सामने जाकर आरती करता हूँ जिससे दुख देने वाला मोहरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। श्री आदिनाथ भगवान् के कमलरूपी चरणों पर मैं मन, वचन, काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो। इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

अगर कपूर सुगंध मनोहर चंदन कूट सुगंध मिलाय।
श्री जी के सम्मुख खेय धूपायन कर्म जरे चहुँगति मिटि जाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- सुंगधित अगर, कर्पूर मनोहारी सुंगधित चन्दन मिलाकर कूट कर श्री आदिनाथ भगवान् के सामने धूपदान में खेने से (जलाने से) अष्ट कर्म जलकर नष्ट हो जाते हैं और चारों गतियों का भ्रमण मिट जाता है।

श्री आदिनाथ भगवान् के चरण कमलों पर मैं मन, वचन, काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव भव के दुःख नष्ट करने वाले हो, इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

श्री फल और बादाम सुपारी केला आदि छुआरा ल्याय।
महामोक्ष फल पावन कारन ल्याय चढ़ाऊँ प्रभु जी के पाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- नारियल, बादाम, सुपारी, केला, छुहारा आदि फल लाकर पवित्र मोक्ष रूपी महाफल की प्राप्ति के लिए श्री आदिनाथ भगवान् के चरणों में चढ़ाता हूँ। श्री आदिनाथ भगवान् के चरणों पर मैं मन, वचन, काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत पुष्प चरू ले मन हर्षाय।
दीप धूप फल अर्घ सु लेकर नाचत ताल मृदंग बजाय।।
श्री आदिनाथ के चरण कमल पर, बलिबलि जाऊँ मन वच काय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- शुद्ध निर्मल जल, चन्दन, अच्छे अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, अर्घ्य लेकर हर्षित मन से मृदंग आदि सात बाजे बजाकर नृत्य करते हुए भगवान् के चरणों में अर्घ्य चढ़ाता हूँ। श्री आदिनाथ के चरण–रूपी कमलों पर मैं मन, वचन, काय से न्यौछावर होता हूँ। हे दया के भंडार ! आप भव भव के दुःखों को नष्ट करने वाले हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

पंचकल्याणक

सर्वारथसिद्धि तैं चये, मरुदेवी उर आय।
दोज असित आषाढ़ की जजूँ तिहारे पाय।।

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

भावार्थ- आषाढ़ कृष्ण द्वितीया के दिन सर्वार्थसिद्धि नामक विमान से चयकर (आकर) माता मरुदेवी के गर्भ में आये, हे भगवान् आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

चैतवदी नौमी दिना जन्म्यां श्री भगवान।
सुरपति उत्सव अतिकरा मैं पूजौं धरिध्यान।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- चैत्र कृष्ण नवमी के दिन श्री आदिनाथ भगवान् ने जन्म लिया, इन्द्रों ने आकर अत्यन्त मनोहारी उत्सव मनाया उन आदिनाथ भगवान् का ध्यान धारण कर पूजा करता हूँ।

तृणवत् ऋद्धि सब छांडि के तप धार्‌यो वन जाय।
नौमी चैत्र असेत की जजूं तिहारे पाय।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- चैत्र कृष्ण नवमी के दिन, सूखे तिनके की तरह समस्त ऋद्धियों को छोड़कर वन में जाकर जिन्होंने तप धारण कर लिया था उन आदिनाथ भगवान् के चरणों की पूजा करता हूँ।

फाल्गुन वदि एकादशी उपज्यो केवलज्ञान।
इन्द्र आय पूजा करी मैं पूजों इहथान।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- फाल्गुन कृष्ण ग्यारस के दिन केवलज्ञान प्राप्त हुआ था तब इन्द्रों ने आकर पूजा की थी मैं उन आदिनाथ भगवान् की यहाँ पूजन करता हूँ।

माघ चतुदर्शी कृष्ण की मोक्ष गये भगवान।
भवि जीवों को बोध के पहुँचे शिवपुर थान ।।

ओं ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- माघ कृष्ण चतुर्दशी के दिन मोक्षकल्याणक प्राप्त करने वाले श्री आदिनाथ भगवान् ने भव्य जीवों को संबोध कर अर्थात् उपदेश देकर मोक्षरूपी स्थान को प्राप्त किया।

जयमाला

आदीश्वर महाराज मैं विनती तुमसे करूँ,
चारों गति के मांहि, मैं दुःख पायो सो सुनो।
अष्टकर्म मैं एक लो यह दुष्ट महादुःख देत हो,
कबहुँ इतर निगोद में मोकूं पटकत करत अचेत हो।।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे आदिनाथ भगवन् ! मैं आपसे विनती कर रहा हूँ। चारों गतियों में मैंने जो दुःख उठाये हैं उन्हें आप सुनिये। ये कर्म आठ हैं और मैं अकेला हूँ। ये दुष्ट बहुत भारी दुःख देते हैं ये कर्म कभी तो इतर निगोद में पटकते हैं और वहाँ अत्यन्त भयानक दुःख देते हैं। असहनीय हैं। हे आदिनाथ भगवन् ! मुझ दीन की विनती सुनिये।

प्रभु कबहुँक पटक्यो नरक में जठै जीव महा दुख पाय हो
निष्ठुर निरदई नारकी जठे करत परस्पर घात हो
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे आदिनाथ भगवन् ! ये कर्म हमें नरक ले गये जहाँ जीव अत्यन्त भयानक दुख उठाते हैं अर्थात् दुःख भोगते हैं। वहाँ दयारहित कठोर ह्दयी (निष्ठुर) नारकी आपस में एक दूसरे को मारते काटते रहते हैं। हे आदिनाथ भगवन् ! आप मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु नरकतणा दुःख अब कहूँ जठे करत परस्पर घात हो।
कोइयक बाँध्यो खंभस्यों, पापी दे मुद्‌गर की मार हो।
कोइयक काटें करोंतसों पापी अंगतणी दोई फाड़ हो।।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

भावार्थ- हे आदिनाथ भगवन् ! अब मैं नरकगति के दुःखों को कहता हूँ , जहाँ नारकी आपस में मार काट करते हैं, कोई पापी नारकी किसी नारकी को खंभे से बांधकर मुदगरों से पीटते हैं। कोई पापी नारकी किसी को करोंत (आरी) से शरीर को फाड़कर दो टुकड़े कर देते हैं। हे भगवन् ! मुझ दीन की विनती सुनिये।

प्रभु इह विधि दुख भुगत्या घणां, फिर गति पाई तिरियंच हो।
हिरणा बकरा, बाछला पशु, दीन गरीब अनाथ हो।
पकड़ कसाई जाल में पापी काट काट तन खाय हो।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे भगवन् ! इस प्रकार मैंने नरकगति में बहुत दुःख भोगे और फिर तिर्यंच गति प्राप्त कर हिरण, बकरा, बछड़ा आदि दीन, गरीब एवं अनाथ पशु हुआ इन पशुओं को पकड़कर कसाई अपने जाल में फंसाकर उनके शरीर को काट काट कर खाते हैं। हे भगवन् ! मुझ दीन की प्रार्थना सुनिए।

प्रभु मैं ऊँट बलद भैंसा भयो, जापै लादियो भार अपार हो।
नहिं चाल्यो जब गिर पर्‌यो पापी दे सोटन की मार हो।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे भगवन् ! मैं ऊँट, बैल, भैंसा आदि हुआ जिन पर क्षमता से अधिक भार लादा गया जिससे चला नहीं गया और गिर पड़ा तब पापी ने लाठी से बहुत पीटा। हे भगवन् ! मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु कोइयक पुण्य संयोग सूं मैं तो पायो स्वर्ग निवास हो।
देवांगना संग रमि रह्यो जठे भोगन को परकास हो।।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! किसी पुण्य के संयोग से देवगति प्राप्त कर स्वर्ग में जन्म लिया, वहाँ देवांगनाओं के साथ रमण किया। वहाँ भोग ही भोग हैं। अतः भोगों में ही मग्न रहा हे भगवन् ! मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु संग अप्सरा रमि रह्यो कर कर अति अनुराग हो।
कबहूँ नंदन वन विषै, प्रभु कबहूँक वन गृह माहिं हो।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे भगवन् ! अत्यन्त राग सहित अप्सराओं के साथ रमण किया कभी मेरु पर्वत स्थित नंदनवन कभी मनोहर वनों एवं कभी अपने निवास स्थान में अप्सराओं के साथ रमण किया। हे भगवन् ! मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु यह विधि काल गमायके, फिर माला गई मुरझाय हो
देव थिति सब घट गई, फिर उपज्यो सोच अपार हो
सोच करत तन खिर पड्यो, फिर उपज्यो गरभ में जाय हो।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे आदिनाथ भगवन् ! इस प्रकार भोग भोगते हुए बहुत समय बिता दिया अन्त समय में गले में पड़ी माला मुरझा गई, जिससे यह जानकारी हो गई कि देव आयु समाप्त हो गई है। अतः मन में अत्यन्त चिन्ता उत्पन्न हो गई, चिन्ता करते करते ही शरीर नष्ट हो गया और जाकर गर्भ में उत्पन्न हो गया। हे प्रभु! मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु गर्भ तणा दुःख अब कहूं जठे सकुड़ाई की ठौर हो।
हलन चलन नहिं कर सक्यो जठे सघन कीच घनघोर हो।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे भगवन् ! अब गर्भ का दुःख कहता हूँ जहाँ अत्यन्त सकुंचित स्थान है। हलन चलन (अर्थात् हिलना डुलना) भी नहीं कर सका। जहाँ अति घना कीचड़ के समान घृणास्पद स्थान है। हे भगवन् ! मुझ दीन की विनती सुनिए।

माता खावे चरपरो फिर लागै तन संताप हो।
प्रभु जो जननी तातो भखै फेर उपजै तन संताप हो।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे भगवन् ! जिस माता के गर्भ में उत्पन्न हुआ यदि वह माता ज्यादा चरपरा पदार्थ खाती है तो शरीर में संताप होते हैं और यदि गर्म भोजन करती है तो फिर शरीर जलने लगता है। हे जिनेन्द्र ! मुझ दीन की प्रार्थना सुनिए।

औंधे मुख झूलो रह्यो फेर निकसन कौन उपाय हो।
कठिन कठिन कर नीसरो जैसे निसरै जंत्री में तार हो।।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे भगवन् ! गर्भ में उलटा मुँह करके लटका रहा वहाँ से निकलने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। बहुत कठिनाई से वहां से निकला जैसे यंत्र से तार निकलता है। हे भगवन् ! मुझ दीन की प्रार्थना सुनिए।

प्रभु फिर निकसत ही धरत्यां पड्यो फिर लागी भूख अपार हो।
रोय रोय बिलख्यो घनो, दुःख वेदन को नहीं पार हो।।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे नाथ ! गर्भ से निकलते ही धरती पर गिर पड़ा और गिरते ही अत्यन्त भूख लगी जिससे मैं बहुत रोया, बिलखा अति दुःख अनुभव किया उस दुःख का पार नहीं रहा। अतः हे भगवन् ! मुझ दीन की विनती सुनिए।

प्रभु दुख मेटन समरथ धनी यातैं लागूं तिहारै पाय हो।
सेवक अर्ज करै प्रभु मोकूं भवोदधि पार उतार हो।
म्हारी दीन तणी सुन वीनती।

अर्थ- हे आदिनाथ भगवन् ! इस अपार दुःख को नष्ट करने को आप ही समर्थ हो इसलिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ। आपके चरणों का सेवक आपसे प्रार्थना करता है कि मुझे संसार सागर से पार उतार दो।

दोहा

श्री जी की महिमा अगम है कोई न पावे पार।
मैं मति अल्प अज्ञान हूँ कौन करै विस्तार।

ओं ह्रीं श्रीं आदिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! आपकी महिमा अपार है कोई भी इसका पार नहीं पा सकता। मैं अल्प बुद्धि हूँ अज्ञानी हूँ। आपकी महिमा का विस्तार कैसे कर सकता हूँ।

विनती ऋषभ जिनेश की जो पढ़सी मन ल्याय।
सुरगों मैं संशय नहीं, निश्चय शिवपुर जाय।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री चन्द्रप्रभजिनपूजा

छप्पय

चारुचरन आचरन, चरन चितहरन चिह्नचर।
चंद-चंद-तनचरित, चंदथल चहत चतुर नर।।
चतुक चंड-चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर।
चंचल चलित सुरेश, चूलनुत चक्र धनुरधर।।
चर अचर हितूं तारन तरन, सुनत चहकि चिर नंद शुचि।
जिनचंद चरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रच्चि रुचि।।

दोहा

धनुष डेढ़सौ तुंग तन, महासेन नृपनंद।
मातु लछमना उर जये, थापों चंद जिनंद।।२।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! आपके सुन्दर चरण सम्यक्चारित्र के धारण कराने वाले हैं। चन्द्र चिह्न से सहित आपके चरन मन को हरण करने वाले हैं। आप चन्द्रमा की कांति के समान शरीर को धारण करने वाले हो। आपके चरणों की शरण चतुर अर्थात् मोक्ष सुख को चाहने वाले मनुष्य चाहते हैं। आपने दुख को देने वाले निर्दयी चार घातियाकर्मों को नष्ट कर दिया है। आप चैतन्य स्वरूप ज्ञानमय अनंत गुणों के भंडार हो। चंचलता पूर्वक चलने वाले इन्द्र, उच्च पद को प्राप्त चक्रवर्ती, अस्त्र, शस्त्र, धनुष आदि को धारण करने वाले भी आपके चरणों में नमन करते हैं। त्रस–स्थावर सबका हित करने वाले हो, संसार सागर से पार उतारने को आप नौका के समान हो, आपके गुणों की महिमा को सुनकर मन अत्यन्त पवित्र शाश्वत सुख को प्राप्त करने का चहकने लगता है। प्रसन्न होता है। हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! आपके चरणों की अर्चना करना चाहता हूँ। आपके चरणों की पूजा रचाकर मनरूपी चकोर बार बार नाच रहा है।

एक सौ पचास धनुष ऊँचे शरीर को धारण करने वाले श्री महासेन राजा के पुत्र माता लक्ष्मणा के उदर से जन्म लेने वाले चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की यहाँ स्थापना करता हूँ।

गंगाह्रद निरमल नीर, हाटक भृंग भरा।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनम जरा।।
श्री चंदनाथ-दुति चंद, चरनन चंद लगै।
मन-वच-तन जजत अमंद, आतमजोति जगै।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

अर्थ- गंगा नदी जिस सरोवर से निकलती है, उस पद्मसरोवर का निर्मल स्वच्छ जल स्वर्ण कलश में भरकर, जन्म, जरा, और मृत्यु के नाश करने वाले हे श्रेष्ठ वीर (बलवान) चन्द्रप्रभ भगवन् ! आपके चरणों की पूजा करता हूँ। चन्द्रमा की कान्ति के समान शरीर को धारण करने वाले आपके चरण में चन्द्रमा का चिन्ह है आत्मज्योति (केवलज्ञानज्योति) प्रकट करने के लिए अति निर्मल भाव से मान को त्यागकर मन–वचन–काय से आपकी पूजा करता हूँ।

श्रीखंड कपूर सुचंग, केशर रंग भरी।
घसि प्रासुक जल के संग, भवआताप हरी।। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! श्रीखण्ड, केशर के रंग को प्रसन्नतापूर्वक जल के साथ घिसकर, संसार ताप के नष्ट करने को चंदन से आपकी पूजा करता हूँ।

तंदुल सित सोम समान, सम ले अनियारे।
दिय पुंज मनोहर आन, तुम पदतर प्यारे।।श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

अर्थ- चन्द्रमा के समान श्वेत, अखंडित चावलों के मनोहारी, अत्यन्तप्रिय पुंजों से हे भगवन् ! आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

सुरद्रुम के सुमन सुरंग, गंधित अलि आवै।
तासों पद पूजत चंग, कामविथा जावै।।श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! कल्पवृक्ष के रंग–बिरंगे सुगंधित पुष्प जिन पर भौंरे मँडरा रहे हैं। ऐसे पुष्पों से काम की वेदना को नष्ट करने के लिए आपके चरणों की उत्साह पूर्वक पूजा करता हूँ।

नेवज नाना परकार, इन्द्रिय बलकारी।
सो ले पद पूजों सार, आकुलता-हारी।। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! अनेक प्रकार के नैवेद्य से संसार की आकुलता को नष्ट करने के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

तमभंजन दीप सँवार, तुम ढिंग धारतु हों।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुण धारतु हों। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! अंधकार का नाश करने वाला दीपक जलाकर आपके पास चढ़ाता हूँ (रखता हूँ) आप मेरे मोह रूपी अंधकार का नाश कीजिए, क्योंकि आप मोहांधकार नाशक गुण को धारण करने वाले हो।

दशगंध हुताशन माहिं, हे प्रभु ! खेवतु हों।
मम करम दुष्ट जरि जाहिं, यातैं सेवतु हों। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! सुगंधित दशांगी धूप अग्नि में जलाता हूँ। जिससे मेरे ये दुष्ट (दुख देने वाले) आठ कर्म जलकर नष्ट हो जायें इसी कारण आपकी सेवा भक्ति करता हूँ।

अति उत्तम फल सु मंगाय, तुम गुण गावतु हों।
पूजों तन मन हरषाय, विघन नशावत हों। श्री०

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० स्वाहा।

अर्थ- अत्यन्त, उत्कृष्ट, सुन्दर फल लेकर हे जिनेन्द्र ! आपके गुणानुवाद करता हूँ। आप विघ्नों का नाश करने वाले हो, आपकी तनमन से हर्षित होकर पूजन करता हूँ।

सजि आठों दरब पुनीत, आठों अंग नमों।
पूजों अष्टम जिन मीत, अष्टम अवनि गमों। श्री०

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- पवित्र आठों द्रव्यों को सजाकर आठों अंगों को नवाकर, सुख को देने वाले मित्र स्वरूपी आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान की आठवीं भूमि प्राप्त करने के लिए पूजन करता हूँ।

पंचकल्याणक

छंद त्रोटक (वर्ण १२)

कलि पंचम चैत सुहात अली, गरभागम मंगल मोद भरी ।
हरि हर्षित पूजत मातु पिता,इम ध्यावत पावत शर्म सिता।।१।।

औं ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- चैत्र कृष्ण पंचमी जो सभी को अच्छी लगने वाली है, इस दिन गर्भ में आकर सबको मंगल और आनंद दिया इन्द्र ने अत्यन्त हर्षित होकर माता–पिता की पूजा की। इस प्रकार जो भी भगवान का ध्यान करता है, उसे मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

कलि पौष एकादशि जन्म लयो,तब लोकविषैं सुखथोक भयो।
सुरईश जजैं गिरशीश तबै, हम पूजत हैं नुत शीश अबै।।२।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- पौष कृष्ण एकादशी को जन्म लेकर हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! आपने समस्त लोक को एक साथ सुखी किया, तब इन्द्र ने आकर सुमेरु पर्वत पर ले जाकर आपकी पूजा (स्तुति की) की। हे भगवन् ! हम भी शीश झुकाकर आपकी पूजा करते हैं।

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा, कलिपौष एकादशि पर्व वरा।
निज ध्यान विषैं लवलीन भये,धनि सो दिन पूजत विघ्न गये।।३।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमंडिताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- पौष कृष्ण एकादशी को जन्म लेकर हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! आपने कठिन तप को धारण किया जिससे वह उत्कृष्ट पर्व बन गया, आप आज अपने आपमें लीन हो गये थे अतः यह दिन धन्य हो गया, हमारे विघ्न नष्ट हो जाय। अतः आपकी पूजा करता हूँ।

वर केवल भानु उद्योत कियो, तिहुँ लोकतणों भ्रम मेट दियो।
कलि फाल्गुन सप्तमि इंद्र जजे,हम पूजहिं सर्व कलंक भजे।।४।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! आपने केवलज्ञानरूपी सूर्य का उदय कर तीनों लोकों के भ्रम (संशय) का नाश कर दिया है अतः फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को इन्द्र भी पूजा करते हैं। हम अपने सब पापों को नष्ट करने के लिए आपकी पूजा करते हैं।

सित फाल्गुन सप्तमि मुक्ति गये, गुणवंत अनंत अबाध भये।
हरि आय जजे तित मोद धरे, हम पूजत ही सब पाप हरे।।५।।

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां-मोक्षमंगलमंडिताय श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को मुक्ति पाकर आप बाधारहित अनंत गुणों के स्वामी हो गये हो। इन्द्र ने आकर वहाँ अत्यंत आनंद के साथ आपकी पूजा की। हम भी आपकी पूजा करते हैं, आप हमारे पाप को नष्ट कीजिए।

जयमाला

दोहा

हे मृगांक ! अंकित चरण, तुम गुण अगम, अपार।
गणधर से नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार।।१।।

पै तुम भगति हिये मम, प्रेरे अति उमगाय।
तातैं गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय।।२।।

अर्थ- चन्द्रमा के अंक चिन्ह से चिन्हित चरण के धारी हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! आपके गुण अथाह और अपार हैं। आपके गुणों का पार गणधर भी नहीं पा सकते तो फिर हम कैसे आपके गुणों का वर्णन कर सकते हैं ? फिर भी हमारे अन्तः कारण में आपकी भक्ति की प्रेरणा से अत्यन्त उमंग हो रही है। अतः आपके गुणों का गान कर रहा हूँ। आप ही मेरी सहायता करें।

छन्द-पद्धरी (१६ मात्रा)

जय चंद्र जिनेंद दयानिधान, भवकाननहानन दव प्रमान।
जय जनम गरभ मंगल दिनंद, भवि-जीव विकासन शर्म कन्द।।३।।

अर्थ- हे चन्दप्रभ भगवन् ! आप दया के भंडार हैं। भव रूपी वन को नष्ट करने के लिये दावानल की तरह हैं। आपकी जय हो। आप गर्भ जन्म आदि मंगल स्वरूप कल्याणकों को धारण करने वाले हो। भव्य जीव के सुख रूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य के समान हो, आप जयवंत हों।

दशलक्ष पूर्व की आयु पाय, मनवाँछित सुख भोगे जिनाय।
लखि कारण ह्वै जगतैं उदास,चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुख निवास।।४।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपने दस लाख पूर्व की आयु प्राप्त कर अनेक मनवांछित सुखों का भोग किया और संसार की असारता का चिन्तन कर संसार शरीर और भोगों से उदास होकर, सुख को देने वाली बारह भावनाओं का चिन्तन किया।

तित लौकांतिक बोध्यो नियोग,हरि शिविका सजि धरियो अभोग।
तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय,ताछिन की शोभा को कहाय।।५।।

अर्थ- जब बारह भावनाओं का चिन्तन कर रहे थे तब ही लौकान्तिक देवों ने आकर आपको संबोधन किया कि आपका विचार श्रेष्ठ है, उसी समय इन्द्र पालकी लेकर आ गये। हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! आप अब पालकी में विराजमान हो गये, उस समय की सुन्दरता का वर्णन नहीं किया जा सकता।

जिन अंग सेत सित चमर ढार, सित छत्र शीस गल गुलक हार।
सित रतन जड़ित भूषण विचित्र, सित चन्द्र चरण चरचैं पवित्र।।६।।

अर्थ- हे चन्दप्रभ भगवन् ! आपके अंग श्वेत हैं आपको श्वेत ही चमर ढुरते हैं श्वेत ही शीश पर छत्र लगा है। गले में श्वेत जड़ाऊ हार पहिने हुए हैं और नाना प्रकार के हीरा मोतियों से जड़ित श्वेत आभूषण धारण किये हुए हैं ऐसे श्वेत शरीर को धारण करने वाले आप के पवित्र चरणों की अर्चना करता हूँ।

सित तनद्युति नाकाधीश आप, सित शिविका कांधे धरि सुचाप।
सित सुजस सुरेश नरेश सर्व, सित चित में चिंतत जात पर्व ।।७।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपके शरीर का तेज चन्द्रमा की तरह श्वेत है, आप मोक्ष मार्ग को बढ़ाने वाले हैं। संसार मार्ग को बंद करने वाले हो। आपकी धनुषाकार श्वेत पालकी कंधे पर रखकर, इन्द्र, देव, राजा और मनुष्य सभी आपके उज्ज्वल यश का एवं दीक्षा के इस पावन पर्व का चिन्तन करते हुए जाते हैं।

सित चंद्र नगरतैं निकसि नाथ,सित वन में पहुंचे सकल साथ।
सितशिला शिरोमणि स्वच्छ छाँह,सित तप तित धार्‌यो तुम जिनाह।।८।।

अर्थ- हे भगवन् ! आप विमल मनोहरा नामक पालकी में बैठकर चन्द्रपुरी से निकलकर एक हजार मनुष्यों के साथ सर्वार्थ वन में पहुंचे और श्वेत उत्कृष्ठ शिला पर नाग नामक वृक्ष की छांव में, आपने उज्ज्वल तप धारण किया।

सित पय को पारण परम सार, सित चंद्रदत्त दीनों उदार।
सित कर में सो पय धार देत, मानो बांधत भवसिंधु सेत।।९।।

अर्थ- बेला का उपवास करके पारणा को गये तब सोमदत्त ने श्वेत दूध से बनी हुई अत्यन्त स्वादिष्ट खीर को हे भगवन् ! आपके श्वेत हाथों में उदार भाव से दिया, तब ऐसा लगता था कि मानो भव सागर को पार करने के लिए पुल बनाया जा रहा हो।

मानो सुपुण्य धारा प्रतच्छ, तित अचरजपन सुर किए ततच्छ।
फिर जाय गहन सित तप करंत, सित केवल ज्योति जग्यो अनन्त।।१०।।

अर्थ- उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो पुण्य की प्रत्यक्ष धारा बह रही हो। देवों ने पंचाश्चर्य किये पश्चात् वन में जाकर आपने उज्ज्वल तप को किया जिससे उज्ज्वल केवलज्ञानरूपी अनंतज्योति प्रकट हो गई।

लहि समवसरन रचना महान, जाके देखत सब पाप हान।
जहँ तरु अशोक शोभै उतंग, सब शोक तनो चूरै प्रसंग।।११।।

अर्थ- केवलज्ञान हो जाने पर इन्द्र की आज्ञा से समवशरण की महान् रचना की गई जिसके दर्शनमात्र से सभी के पाप क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। वहाँ ऊँचा अशोक वृक्ष अत्यन्त शोभा को प्राप्त है, जो शोक और उसके कारण को नष्ट करने वाला है।

सुर सुमन वृष्टि नभतें सुहात, मनु मन्मथ तजि हथियार जात।
बानी जिनमुखसों खिरत सार, मनु तत्त्व प्रकाशन मुकुर धार ।।१२।।

अर्थ- आकाश से देवों द्वारा पुष्पों की वृष्टि अति सुन्दरता को धारण करती है वहाँ ऐसा प्रतीत होता है जैसे काम देव अपने हथियार फैंककर भाग रहा हो। जिनेन्द्र भगवान के श्रीमुख से निर्गत वाणी (सर्वांग से) ऐसी लगती है जैसे तत्त्वों को दिखाने के लिए अर्थात् प्रकाशित करने के लिए दर्पण ही हो।

जँह चौंसठ चमर अमर ढुरंत,मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत।
सिंहासन है जँह कमल जुक्त,मनु शिव सरवर को कमल-शुक्त।।१३।।

अर्थ- देवों द्वारा चौंसठ चमर ढोरे जा रहे हैं सो वे ऐसे लग रहे हैं जैसे मेघों सें निरंतर आपका यश ही झर रहा हो। जिसमें कमल से सहित सिंहासन है जो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मोक्षरूपी सरोवर का कठोर कमल ही हो।

दुंदुभि जित बाजत मधुर सार, मनु करमजीत को है नगार।
शिर छत्र फिरैं त्रय श्वेत वर्ण, मनु रतन तीन त्रय ताप हर्ण।।१४।।

अर्थ- वहाँ समवशरण में मधुर ध्वनि से दुन्दुभि बज रही है वे ऐसी लग रहे हैं जैसे कर्मों पर विजय प्राप्त कर ली है इसलिए नगाड़े बजाये जा रहे हैं। हे भगवन् ! आपके शिर पर तीन श्वेत छत्र लग रहे हैं वे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे ये तीन रत्न को उत्पन्न करने वाले और संसार ताप को नष्ट करने वाले हों।

तन प्रभातनों मंडल सुहात, भवि देखत निज भव सात सात।
मनु दर्पण द्युति यह जगमगाय,भविजन भव मुख देखत सु आय।।१५।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपके शरीर की प्रभा का मंडल जो भामण्डल है उसमें भव्य जीव अपने–अपने सात–सात भव देखते हैं आपके शरीर की द्युति जगमग करती हुई दर्पण की तरह जान पड़ती है जिसमें भव्य जीव अपना भवरूपी मुख देखते हैं।

इत्यादि विभूति अनेक जान, बाहिज दीसत महिमा महान।
ताको वरणत नहिं लहत पार,तौ अंतरंग को कहै सार ।।१६।।

अर्थ- समवशरण में इस प्रकार अनेक प्रकार का वैभव है, जो दिखाई देता है वह सब बाह्य वैभव है उसकी महिमा अपार है और उसके वर्णन का पार भी नहीं लिया जा सकता तब आपके अंतरंग वैभव को कौन कह सकता है अर्थात् कोई नहीं।

अनअंत गुणनि जुत करि विहार, धरमोपदेश दे भव्य तार।
फिर जोग निरोधि अघातिहान, सम्मेदथकी लिय मुकतिथान।।१७।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपने अनंत गुणों से सहित विहार कर, धर्म का उपदेश देकर, भव्य जीवों को संसार सागर से पार किया और फिर योग निरोध कर अघातिकर्मों को नाशकर सम्मेदशिखर से मोक्ष प्राप्त किया।

''वृन्दावन'' वंदत शीश नाय, तुम जानत हो मम उर जु भाय।
तातैं का कहों सु बार बार, मनवांछित कारज सार सार ।।१८।।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवन् ! वृन्दावन कवि बार–बार आपको शीश झुकाकर नमस्कार कर कहते हैं कि हे भगवन् ! आप मेरे ह्रदय की बात जानते हैं, अतः मैं बार–बार उसे क्यों कहूँ ? अब मेरे मन की इच्छा पूर्ण कीजिए।

छन्द घत्तानन्द

जय चंदजिनंदा, आनंदकंदा, भवभयभंजन राजे हैं।।
रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा,मुकति मांहि थिति साजे हैं ।।१६।।

ओं ह्रीं चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे चन्द्रप्रभ भगवान् ! आपकी जय हो, आप आनंद के भंडार हो, संसार के भय को नाश करने वाले हो, राग द्वेष, आदि द्वंद रूपी फंदों का नाश कर मुक्ति अर्थात् मोक्ष में विराजमान हो गये हो।

छन्द चौबोला

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजैं।
ताके भव भव के अघ भाजैं, मुक्तिसार सुख ताहिं सजैं।।२०।।
जमके त्रास मिटें सब ताके, सकल अमंगल दूर भजैं।
वृन्दावन ऐसो लखि पूजत, जातैं शिवपुरि राज रजैं।।२१।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- जल फल आदि आठों द्रव्यों को मिलाकर अर्घ चढ़ाकार गुण गान करके जो भव्य जीव श्री चन्द्रप्रभ भगवान् की पूजा करते हैं, उनके भव भव के पाप नष्ट हो जाते हैं और वे मोक्ष सुख की प्राप्ति करते हैं, उनके जन्म जरा मृत्यु के सभी दुःख दूर होते हैं और सभी अमंगल दूर हो जाते हैं तथा सभी मंगल प्राप्त होते हैं। वृन्दावन कवि कहते हैं कि ऐसा जानकर हम आपकी पूजा करते हैं, जिससे हमें मोक्षपुरी का राज्य प्राप्त हो जाये।

जिनेन्द्र पूजा के अधिकारी

शुचिः प्रसन्नो गुरु-देवभक्तो दृढ़व्रती सत्य-दया-समेतः।
दक्षः पटुर्बीजपदावधारी जिनेन्द्रपूजासु सर्वे प्रशस्तः ।।

अर्थ- पवित्र, प्रसन्न, गुरुदेवभक्त, दृढ़व्रती, सत्यवक्ता, दयाधारण करने वाला, चतुर, कुशलतारूपी बीज के पदधारक सभी जिनेन्द्र पूजा में उत्तम माने गये हैं अर्थात्–पूजा के अधिकारी हैं।

श्री शान्तिनाथ जिनपूजा

सर्वारथ सुविमान त्याग गजपुर में आये,
विश्वसेन भूपाल तासु के नन्द कहाये।
पंचम चक्री भये मदन द्वादश में राजे,
मैं सेवूं तुम चरण तिष्ठये ज्यों दुःख भाजे।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- हे शान्तिनाथ भगवन् ! सर्वार्थसिद्धि के विमान से अहमिन्द्र की आयु पूर्ण कर हस्तिनापुर में राजा विश्वसेन के पुत्र हुए और पाँचवें चक्रवर्ती एवं बारहवें कामदेव हुए मैं उन आपके चरणकमलों की सेवा करने के लिए उपस्थित हुआ हूँ , जिससे हमारे दुःख नष्ट हो जायें।

अथ अष्टक

पंचम उदधि तनो जल निरमल, कंचन कलश भरे हरषाय।
धार देत ही श्रीजिन सम्मुख, जन्म जरामृत दूर भगाय।।
शांतिनाथ पंचम चक्रेश्वर, द्वादश मदन तनो पद पाय।
तिनके चरण कमल के पूजे, रोग शोक दुःख दारिद जाय।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा ।

अर्थ- पाँचवें क्षीरसमुद्र का निर्मल जल स्वर्ण कलशों में हर्ष सहित भरकर श्री जिनेन्द्र देव के सम्मुख जन्म मरण एवं बुढ़ापे से छुटकारा प्राप्त करने के लिए जल धारा देता हूँ। हे शान्तिनाथ भगवन् ! आपने पंचम चक्रवर्ती पद एवं बारहवें कामदेव का पद प्राप्त किया है आपके चरणकमलों की पूजा करने से रोग, शोक, दुःख, दरिद्रता; सभी नष्ट हो जाते हैं।

मलयागिरि चंदन कदली नंदन कुंकुम जल के संग घसाय।
भव आताप विनाशन कारण चरचूं चरण सबै सुखदाय।।
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि० स्वाहा।

अर्थ- मलयागिरि के उत्कृष्ट चन्दन को कर्पूर और सुगंधित जल के साथ घिसकर भव भव के संताप को मिटाने के लिए कारण और सबको सम्पूर्ण सुख देने वाले आपके चरण कमलों की पूजन करता हूँ।

पुण्यराशि सम उज्ज्वल अक्षत शशि-मरीचि तसु देख लजाय।
पुंज किये तुम चरणन आगे अक्षय पद के हेतु बनाय।।
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

अर्थ- पुण्य राशि के समान उज्ज्वल अक्षत जिन्हें देखकर चन्द्रमा सूर्य भी लज्जा को प्राप्त हो रहे हैं ऐसे अक्षतों के पुंज अक्षय पद (मोक्षपद) की प्राप्ति के लिए भगवान् आपके चरणों के आगे अर्पित कर पूजन करता हूँ।

सुर पुनीत अथवा अवनी के कुसुम मनोहर लिए मँगाय।
भेंट धरत तुम चरणन के ढिंग ततक्षिन काम बाण नस जाय।।
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

अर्थ- देवों से प्राप्त कल्पवृक्षों के पुष्प और पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले पुष्पों को मँगाकर आपके चरणों में अर्पित करता हूँ जिससे शीघ्र ही काम की वेदना दूर हो जाए ।

भाँति-भाँति के सद्य मनोहर कीने मैं पकवान सँवार।
भर थारी तुम सम्मुख लायो क्षुधा वेदनी वेग निवार।।
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

अर्थ- तरह–तरह के मन को लुभाने वाले ताजे पकवान बनाकर थाली भर कर हे शान्तिनाथ भगवन् ! आपके सामने आया हूँ आप मेरे भूख रूपी रोग को शीघ्र नष्ट कीजिए।

घृत सनेह करपूर लाय कर दीपक ताके धरे प्रजार।
जग मग जोत होत मंदिर में मोह अंध को देत सुटार।।
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

अर्थ- घृत सहित कपूर की ज्योति जलाकर दीपक प्रज्ज्वलित कर जिनकी द्युति मंदिर में जगमगा रही है ऐसे दीपक को मोहरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए हे शान्तिनाथ भगवन् ! आपके चरणों में चढ़ाता हूँ।

देवदारु कृष्णागरु चन्दन अगर कपूर सुगन्ध अपार।
खेरुँ अष्ट करम जारन को धूप धनंजय मांहि सुडार।।
शांतिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे शान्तिनाथ भगवन् ! देवदारु, कृष्णागर, तगर, कपूर आदि अत्यन्त सुगंधित पदार्थों को अष्ट कर्म के नाश करने के लिए धूप अग्नि में खेता हूँ।

नारंगी बादाम सुकेला एला दाडिम फल सहकार।
कंचन थाल मांहि भर लायो अरचत ही पाऊं शिव नार।।
शान्तिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! नारंगी, केला, बादाम, इलायची, अनार आदि उत्कृष्ट फल स्वर्ण की थाली में भरकर मुक्तिरूपी कन्या के वरण के लिए आपकी पूजा अर्चना करता हूँ।

जल फलादि वसु द्रव्य सँवारे अर्घ चढ़ाये मंगल गाय।
'बखत रतन' के तुम ही साहिब दीजे शिवपुर राज कराय।।
शान्तिनाथ०

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ नि० स्वाहा।

अर्थ- हे शान्तिनाथ भगवन् ! जल चंदन आदि अष्ट द्रव्य मंगल गान पूर्वक आपको चढ़ाता हूँ। बख्तार कवि कहते हैं कि हे भगवन् ! आप ही मेरे स्वामी हैं, मुझे मोक्ष का राज्य दीजिए।

पंचकल्याणक

छंद उपगति

भादव सप्तमि श्यामा, सर्वारथत्याग नागपुर आये।
माता ऐरा नामा, मैं पूजूं ध्याऊं अर्घ शुभलाये।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जो भाद्रपद कृष्णपक्ष की सप्तमी को सर्वार्थसिद्धि से चयकर हस्तिनापुर में माता ऐरादेवी के गर्भ में आये ऐसे श्री शान्तिनाथ भगवान् की मैं उत्कृष्ट शुभ अर्घ्य से पूजा करता हूँ, ध्यान करता हूँ।

जन्मे तीरथ नाथं, वर जेठ असित चतुर्दशी सोहै।
हरिगण नावें माथं, मैं पूजूं शांतिचरण युग जोहै।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- ज्येष्ठ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को श्री शान्तिनाथ भगवान् का जन्म हुआ था हे जिनके चरणों में इन्द्र नरेन्द्र आदि सिर नवाते हैं उन शान्तिनाथ भगवान् के दोनों चरण कमलों की पूजन करता हूँ।

चौदस जेठ अंधियारी, कानन में जाय योग प्रभु लीन्हा।
नवनिधिरत्न सुछारी, मैं बन्दू आत्मसार जिन चीन्हा।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय ज्येष्ठ-कृष्ण-चतुर्दश्यां तपकल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को हे भगवन् ! आपने नवनिधि और चौदहरत्न को त्यागकर वन में जाकर योग धारण किया अर्थात् तप धारण किया

और आत्मा के शुद्ध स्वरूप को जान लिया था। शुद्धात्म पद की प्राप्ति हेतु उन श्री शान्तिनाथ भगवान् की पूजन करता हूँ।

पौष दसैं उजियारा, अरि घाति ज्ञान भानु जिन पाया।
प्रातिहार्य वसुधारा, मैं सेऊं सुर नर जासु यश गाया।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय पौष-शुक्ला-दशम्यां ज्ञान-कल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- पौष शुक्ल दशमी के दिन हे भगवन् ! आपने चार घातिया कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर केवलज्ञान रूपी सूर्य को प्रकट किया एवं अष्ट प्रतिहार्यों को धारण किया आपके यश को इन्द्र देव एवं मनुष्यों ने गाया है, मैं भी आपकी पूजन करता हूँ।

सम्मेदशैल भारी, हन कर अघाति मोक्ष जिन पाई।
जेठ चतुर्दशि-कारी, मैं पूजूं सिद्धथान सुखदाई।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्ष-कल्याणकप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जेष्ठ कृष्ण पक्ष चतुर्दशी के दिन हे भगवन् ! आपने अघातिया कर्मों का क्षय कर श्री सम्मेदशिखर पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया उस सुख के स्थान मोक्ष की प्राप्ति के लिए आपकी पूजा करता हूँ।

जयमाला

छप्पय छन्द

भये आप जिनदेव जगत में सुख विस्तारे।
तारे भव्य अनेक चिन्हों के संकट टारे ।।
टारे आठों कर्म मोक्ष सुख तिनको भारी।
भारी विरंद निहार लही मैं शरण तिहारी।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र देव ! संसार में आपने दिव्यध्वनि के द्वारा सुख का विस्तार किया। आपने अनेक भव्य जीवों के दुखों को नाश कर उन्हें भव से तार दिया। आठों कर्मों का क्षय कर अनन्तसुख प्राप्त किया और भव्य जीवों को कराया है। आपका बहुत भारी यश देखकर मैं आपकी शरण में आया हूँ।

तिहारे चरणन को नमूं दुःख दारिद संताप हर।
हर सकल कर्म छिन एक में, शांति जिनेश्वर शांति कर।।१।।

अर्थ- हे शान्तिनाथ भगवन् ! मैं तुम्हारे चरणों में नमस्कार करता हूँ। आप मेरे दुःख दरिद्रता एवं संताप को नष्ट कीजिए एवं एक क्षण में कर्मों का क्षय कर शान्ति प्रदान कीजिए।

सारंग लक्षण चरण में, उन्नत धनु चालीस।
हाटक वर्ण शरीर द्युति, नमूं शान्ति जग ईश।।२।।

अर्थ- जिनके चरण में हिरण का चिन्ह है। चालीस धनुष जिनके शरीर की ऊँचाई है तपाये हुए स्वर्ण के समान जिनके शरीर का रंग है। जो जगत् के ईश्वर हैं, ऐसे श्री शान्तिनाथ को नमस्कार करता हूँ।

छन्द भुजंगप्रयात

प्रभो आपने सर्व के फन्द तोड़े,
गिनाऊं कछू मैं तिनों नाम थोड़ें।
पड़ो अंबु के बीच श्रीपाल राई,
जपो नाम तेरो भए थे सहाई ।।३।।

अर्थ- हे शान्तिनाथ भगवन् ! आपने बहुतों के संकट टालकर सुखी किया है। मैं अल्पज्ञ पूरा कथन तो नहीं कर सकता किन्तु थोड़े नाम गिना रहा हूँ। जब श्रीपाल समुद्र में गिर गये तब आपके नाम रूपी मंत्र की जाप की और आपने सहायता की थी।

धरो राय ने सेठ को सूलिका पै,
जपी आपके नाम की सार जापैं।
भये थे सहाई तबै देव आये,
करी फूल वर्षा, सिंहासन बनाये।।४।।

अर्थ- जब राजा ने सेठ सुदर्शन को सूली पर चढ़ाया था, तब सेठ सुदर्शन ने आपके नामरूपी मंत्र का जाप किया, देवों ने आकर सहायता की, फूल बरसाये और सूली को सिंहासन बना दिया।

जबै लाख के धाम वह्नि प्रजारी,
भयो पाण्डवों पै महा कष्ट भारी।
जबै नाम तेरे तनी टेर कीनी,
करी थी विदुर ने वही राह दीनी।।५।।

अर्थ- जब दुर्योधन ने पाण्डवों को मारने के लिए लाख से निर्मित महल बनवाया उसमें पाण्डवों को ठहरा दिया और छल से आग लगवा दी। पाण्डवों पर भारी कष्ट आ गया तब हे भगवन् ! उन्होंने आपके नाममंत्र की जाप की और उन्हें विदुर द्वारा निर्मित रास्ता मिल गया। वे अग्नि से सकुशल बच गये।

हरी द्रोपदी धातकीखंड मांही,
तुम्हीं वहाँ सहाई भला और नाँहीं।
लियो नाम तेरो भलो शील पालो,
बचाई तहाँ तें सबै दुःख टालो ।।६।।

अर्थ- जब द्रोपदी का हरण धातकीखण्डद्वीप के राजा पद्मनाभ ने किया तब द्रोपदी पर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा उसकी सहायता करने वाला आपके सिवा कोई नहीं था उन्होंने आपके नाम मंत्र का जाप किया तब शील की रक्षा हुई और सभी दुःख दूर हो गये।

जबै जानकी राम ने जो निकारी,
धरे गर्भ को भार उद्यान डारी ।
रटो नाम तेरो सबै सौख्यदाई,
करी दूर पीड़ा सुक्षण ना लगाई।।७।।

अर्थ- जब गर्भवती सती सीता को श्री रामचन्द्रजी ने वनवास दिया उन्हें वन में छुड़वा दिया तब सीता जी ने आपके नाम मंत्र का जाप किया, जिससे सब सुखों की प्राप्ति हुई दुख दूर हो गये क्षण भी नहीं लगा।

व्यसन सात सेवे करे तस्कराई,
सुअंजन से तारे घड़ी ना लगाई।
सहे अंजना चंदना दुःख जेते,
गये भाग सारे जरा नाम लेते।।८।।

अर्थ- सातों व्यसनों को सेवन करने वाला तस्कर अंजन चोर को भी आपने शीघ्र तार दिया। सती अंजना और सती चन्दनवाला ने कितने भारी कष्ट सहन किये किन्तु हे भगवन् ! आपका नाम लेते ही उनके सब दुख दूर हो गये।

घड़े बीच में सास ने नाग डारो,
भलो नाम तेरो जु सोमा सँभारो।
गई काढ़ने को भई फूलमाला,
भई है विख्यातं सबै दुःख टाला।।६।।

अर्थ- जब सती सोमा से रुष्ट होकर उनकी सास ने मारने के अभिप्राय से घड़े में विषैला सर्प रख दिया और सोमा के पास भेज दिया और आपके नाम मंत्र की जापकर सती उस घड़े से सर्प निकालने गई तो वह सर्प फूलों की माला बन गया। आपका यश हुआ और सती के सब दुःख दूर हो गये।

इन्हें आदि देके कहाँ लों बखानें,
सुनो विरदे भारी तिहुँ लोक जानें।
अजी नाथ मेरी जरा ओर हेरो,
बड़ी नाव तेरी रती बोझ मेरो ।।१०।।

अर्थ- इन सबको मुख्य करके कथन किया है और कहाँ तक कहें हमारी सामर्थ्य नहीं है आपका यश हे भगवन् ! तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। हे नाथ ! अब मेरी ओर निहारिये। आप संसार सागर से पार करने वाले हैं आपकी नाव बहुत बड़ी है और मेरा बोझ रत्ती भर का है अर्थात् हे भगवन् ! मुझे भी अपनी नाव में बिठाकर संसार समुद्र से पार कीजिए।

गहो हाथ स्वामी करो वेग पारा,
कहूँ क्या अबै आपनी मैं पुकारा।
सबै ज्ञान के बीच भासी तुम्हारे,
करो देर नाहीं मेरे शांति प्यारे।।११।।

अर्थ- हे भगवन् ! आप मेरा हाथ पकड़कर मुझे शीघ्र पार कीजिए मैं अपनी पुकार कहाँ तक करूं ? आपके ज्ञान में तो सभी प्रकाशित हो रहा है। हे मेरे प्यारे शान्तिनाथ भगवन् ! अब मुझे पार करने में देरी मत कीजिए।

घत्ता

श्री शांति तुम्हारी, कीरत भारी, सुर नरनारी गुणमाला।
'बख्तावर' ध्यावे, रतन सु गावे, मम दुख दारिद सब टाला।।१२।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे शान्तिनाथ भगवन् ! आपकी यश कीर्ति को सभी नर–नारी गाते हैं उनके दुःख दूर हो जाते हैं श्री बख्तावर जी कवि कहते हैं कि हे भगवान् ! मैं भी आपके गुणों का ध्यान करता हूँ मेरे दुख दारिद्र को दूर कीजिए।

अजी एरा नन्दन छवि लखत ही आप अरणं।
धरै लज्जा भारी करत श्रुति सो लाग चरणं।।
करै सेवा सोई लहत सुख सो सार क्षण में।
घने दीना तारे हम चहत हैं बास तिन में।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपामि)

अर्थ- हे ऐरा माता के सुपुत्र ! आपकी छवि को देखते ही सूर्य लज्जा को धारण करता है ऐसा सुनकर आपके चरणों में आया हूँ , क्योंकि जो भी आपके चरणों की सेवा करता है , वह उत्कृष्ट सुख को क्षण मात्र में प्राप्त कर लेता है। आपने बहुतों को तार दिया है , हम यही चाहते हैं कि हमें भी अब मोक्ष का वास दीजिए।

अमृत वाणी

जैसे समुद्र में लहरों की संख्या, मेघ में जल धाराएं और आकाश रूपी आंगन में तारे नहीं जाने जाते, वैसे ही श्री जिनेन्द्रदेव के गुण भी नहीं जाने जा सकते।

श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा

गीता छन्द

वर स्वर्ग प्राणत को विहाय, सुमात वामा सुत भये।
अश्वसेन के पारस जिनेश्वर, चरन जिनके सुर नये।।
नव हाथ उन्नत तन विराजै, उरग लच्छन पद लसैं।
थापूं तुम्हें जिन आय तिष्ठो करम मेरे सब नसैं।।१।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अर्थ- हे पार्श्वनाथ श्रेष्ठ ! आप प्राणत स्वर्ग को छोड़कर पिता अश्वसेन और माता वामादेवी के सुपुत्र हुए, जिनके चरणों में इन्द्रदेव भी मस्तक झुकाते हैं। आपके शरीर की ऊँचाई नौ हाथ है और चरण में सर्प का चिन्ह है। मैं यहाँ स्थापना करता हूँ। हे भगवन् ! आप आकर मेरे ह्रदय में विराजिये जिससे मेरे सब कर्म क्षय को प्राप्त हो जावें।

अथाष्टक

छंद नाराच

क्षीरसोम के समान अम्बुसार लाइये।
हेमपात्र धारिकैं सु आपको चढ़ाइये।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा।।१।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि०स्वाहा।

अर्थ- क्षीरसमुद्र के जल एवं चन्द्रमा समान स्वच्छ निर्मल जीवरहित जल, स्वर्ण पात्र में लाकर हे भगवन् ! आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। हे पार्श्वनाथ भगवन् ! मैं सदा आपकी सेवा करता हूँ, मुझे कभी न भूलिये और अविनाशी मोक्ष का निवास दीजिए।

चन्दनादि केशरादि स्वच्छ गंध लीजिये।
आप चरण चर्च मोहताप को हनीजिये।। पार्श्व०।।२।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि०स्वाहा।

अर्थ- चन्दन, केशर आदि प्रासुक उज्ज्वल सुगंधित द्रव्य से मोह के ताप को नष्ट करने के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

फेन चन्द के समान अक्षतान लाइकैं।
चर्नके समीप सार पुंज को रचाइकैं।।पार्श्व०।।३।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि०स्वाहा।

अर्थ- चन्द्रमा की चाँदनी के समान श्वेत उज्ज्वल अक्षत लाकर आपके चरण कमलों के पास पुंज बनाकर चढ़ाता हूँ।

केवड़ा गुलाब और केतकी चुनाइकैं।
धार चर्णके समीप काम को नसाइकैं।।पार्श्व०।।४।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०स्वाहा।

अर्थ- केवड़ा, गुलाब, केतकी आदि उत्कृष्ट पुष्पों को चुन–चुनकर आपके चरणों के समीप रखकर (चढ़ाकर) कामरूपी शत्रु को नष्ट करना चाहता हूँ।

घेवरादि बावरादि मिष्ट सद्य में सने।
आप चर्ण चर्च तें क्षुधादिरोग को हने।।पार्श्व०।।५।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि०स्वाहा।

अर्थ- घेवर, बावर आदि मीठे मधुर ताजे घृत में तले पकवान, क्षुधा आदि रोगों के नाश करने को आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।

लाय रत्नदीप को सनेहपूर कें भरूं।
वातिका कपूर बारि मोह ध्वांतको हरूँ।।पार्श्व०।।६।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०स्वाहा।

अर्थ- रत्नों का दीपक घृत से भरा हुआ जिसमें कपूर की बाती जलती है, ऐसा दीप मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए आपके चरणों में समर्पित करता हूँ।

धूप गंध लेयकैं सु अगनि संग जारिये।
तास धूप के सुसंग अष्टकर्म बारिये ।।पार्श्व०।।७।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि०स्वाहा।

अर्थ- सुगंधित धूप लेकर अग्नि में जलाता हूँ। हे भगवन् ! इस धूप के साथ मेरे अष्ट कर्म भी जला दीजिए।

खा़रिकादि चिरभटादि रत्न थाल में भरूं।
हर्ष धारिकैं जजूं सुमोक्ष सौख्य को वरूं ।।पार्श्व०।।८।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०स्वाहा।

अर्थ- खारक, रसभरी आदि उत्तम फल रत्न थाल में भरकर हर्षित भाव से पूजन अर्चन कर मोक्ष को प्राप्त करना चाहता हूँ।

नीर गंध अक्षतं सुपुष्प चरु लीजिए।
दीप धूप श्रीफलादि अर्घ तैं जजीजिये।।पार्श्व०।।६।।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०स्वाहा।

अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल (श्रीफल) आदि आठों द्रव्य के अर्घ से आपकी पूजन करता हूँ।

पंचकल्याणक

शुभप्राणत स्वर्ग विहाये, वामा माता उर आये ।
वैशाखतनी दुतिकारी, हम पूजें विघ्न निवारी।।१।।

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- प्राणत स्वर्ग से आयु पूर्ण कर वैशाख कृष्ण द्वितीया को वामादेवी के गर्भ में आये पार्श्वनाथ भगवान् की विघ्नों को नष्ट करने के लिए पूजन करता हूँ।

जन्मे त्रिभुवन सुखदाता, कलिकादशि पौष विख्याता।
श्यामा तन अद्भुत राजै, रवि कोटिक तेज सु लाजै।।२।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- तीनों लोकों को सुख देने वाले, सुन्दर शरीर के धारक जिनकी द्युति करोड़ों सूर्य के तेज से भी उत्कृष्ट द्युति को भी जीतने वाली है, उन पार्श्वनाथ भगवान् का पौष कृष्ण एकादशी को जन्म हुआ उनकी हम पूजन करता हूँ।

कलि पौष एकादशि आई, तब बारह भावन भाई।
अपने कर लौंच सु कीना, हम पूजैं चरन जजीना।।३।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपो मंगल-प्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जिन्होंने पौष कृष्ण एकादशी को बारह भावनाओं का चिन्तन कर अपने हाथों से पंचमुष्ठी केश लौंच कर दीक्षा धारण की उन पार्श्वनाथ भगवान् की अष्ट द्रव्य से पूजा करता हूँ।

कलि चैत चतुर्थी आई, प्रभु केवलज्ञान उपाई।
तब प्रभु उपदेश जु कीना, भवि जीवन को सुख दीना।।४।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- चैत्र कृष्ण चतुर्थी के दिन प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। तब प्रभु ने ऐसा उपदेश दिया, जिससे भव्य जीवों को सुख प्रदान किया।

सित सातैं सावन आई, शिवनारि वरी जिनराई।
सम्मेदाचल हरि माना, हम पूजैं मोक्ष कल्याणा ।।५।।

ओं ह्रीं श्रावण-शुक्ल-सप्तम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- श्रावण शुक्ल सप्तमी के दिन जिनराज मुक्तिरूपी स्त्री का वरण किया था। इन्द्र ने आकर सम्मेदाचल पर उनकी उत्सवपूर्वक पूजा की हम भी यहाँ मोक्ष कल्याणक की पूजा करते हैं।

जयमाला

पारसनाथ जिनेन्द्रतने वच, पौन भखी सुन पाये।
कर्‍यो सरधान लह्यो पद आन भये पद्मावति शेष कहाये।

नाम प्रताप टरैं संताप सु, भव्यन को शिवशर्म दिखाये।
हे अश्वसेन के नंद भले, गुण गावत हैं तुमरे हर्षाये ।।१।।

अर्थ- श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र भगवान् के वचन उन जलते हुए नाग नागिन ने सुने और उनका श्रद्धान किया जिससे उन्हें धरणेन्द्र पद्मावती पद प्राप्त हुआ। प्रभु के नाम के प्रताप से ही समस्त संताप नष्ट हो जाते हैं। भव्य जीवों को मोक्ष सुख दिलाने वाले हे अश्वसेन के नंदन ! आप सबका भला करने वाले हैं। हम (मैं) हर्षित होकर आपका गुणगान करते हैं।

दोहा

केकी कंठ समान छवि, वपु उतंग नव हाथ।
लक्षण उरग निहार पग, वंदों पारसनाथ।।

अर्थ- मयूर के कंठ के समान नीला रंग, नौ हाथ ऊँचा शरीर, और दायें पाँव में सर्प का चिन्ह देखकर हे पार्श्वनाथ भगवन् ! मैं आपकी वंदना करता हूँ।

छंद पद्धरी

रची नगरी छह मास अगार, बने चहु गोपुर शोभ अपार।
सु कोट तनी रचना छवि देत, कंगूरन पै लहकैं बहुकेत।।३।।

अर्थ- भगवान् के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से ही इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने बनारस नगर की रचना की नगर के चारों ओर बहुत ही सुन्दर कोट और चार दरवाजे बनाये। कोट पर कंगूरा और कंगूरों पर ध्वजायें फहराईं।

बनारस की रचना जु अपार, करी बहु भाँति धनेश तैयार।
तहाँ अश्वसेन नरेन्द्र उदार, करैं सुख वाम सुदे पटनार।।४।।

अर्थ- कुबेर ने बनारस नगर की अनेक प्रकार से बहुत ही सुन्दर रचना की वहाँ अश्वसेन राजा अपनी पटरानी वामादेवी के साथ राज्य करते थे।

तज्यो तुम प्रानत नाम विमान, भये तिनके वर नंदन आन।
तबै सुर इंद्र नियोगनि आय, गिरिंद करी विधि न्हौन सुजाय।।५।।

अर्थ- हे पार्श्वनाथ भगवंन्! आप प्राणत स्वर्ग से आयु पूर्ण कर अश्वसेन और वामादेवी के सुपुत्र हुए तब इन्द्र ने अपनी इन्द्राणी के साथ आकर बालक पार्श्वनाथ का सुमेरु पर्वत पर क्षीरसागर के जल से न्हवन किया था।

पिता-घर सौंपि गये निज धाम, कुवेर करै वसु जाम सुकाम।
बढ़े जिन दोज मयंक समान, रमैं बहु बालक निर्जर आन।।६।।

अर्थ- न्हवन करने के बाद पिता अश्वसेन के घर जिन माता को बाल जिनेन्द्र सौंप इन्द्र और देव अपने–अपने स्वर्ग चले गये और कुवेर को भगवान् की सेवा के अनुकुल कार्य करने का आदेश दिया। भगवान् दोज के चन्द्रमा के समान वृद्धि को प्राप्त हुए। बहुत देव बालक आकर बालक पार्श्वनाथ के साथ क्रीड़ा करते थे।

भए जब अष्टम वर्ष कुमार, धरे अणुव्रत महा सुखकार।
पिता जब आन करी अरदास, करो तुम ब्याह वरो ममआस।।७।।

अर्थ- जब पार्श्व कुमार आठ वर्ष के हुए तब उन्होंने अणुव्रत धारण किये उनकी कुमारावस्था पूर्ण हुई और युवावस्था को प्राप्त हुई, तब पिताजी ने निवेदन किया कि विवाह करके मेरी आशा पूरी करो।

करी तब नाहिं रहे जग चंद, किये तुम काम कषाय जु मंद।
चढ़े गजराज कुमारन संग, सुदेखत गंगतनी सुतरंग ।।८।।

अर्थ- तब पार्श्व कुमार ने विवाह से इंकार कर संसार के चक्र से अलग रहकर कषाय और काम को मंद किया। एक दिन पार्श्वकुमार हाथी पर सवार होकर अपने साथियों के साथ गंगा नदी की लहरों को देखने निकले।

लख्यो इक रंक करै तप घोर, चहुँदिशि अगनि बले अति जोर।
कहै जिननाथ अरे सुन भ्रात, करै बहु जीवन की मत घात।।६।।

अर्थ- उन्होंने वहाँ एक तापस को कठिन तप करते हुए देखा वह अपने चारों ओर अग्नि जलाकर तप कर रहा था वहाँ पहुँचकर जिननाथ ने कहा हे भाई ! तुम बहुत जीवों का घात मत करो।

भयो तब कोप कहै कित जीव, जले तब नाग दिखाय सजीव।
लख्यो यह कारण भावन भाय, नये दिव ब्रह्मरिषीसुर आय।।१०।।

अर्थ- वह तापसी आपकी बात सुन कुपित हो उठा और कहने लगा जीवों का घात कहाँ हो रहा है? तब पार्श्वकुमार ने ईंधन से अधजले नाग–नागिन को

दिखा दिया यह देखकर पार्श्वकुमार को वैराग्य हो गया और उनका मन बारह भावना का चिन्तन करने लगा तभी ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में निवास करने वाले लौकान्तिक देव आये और पार्श्वकुमार से कहने लगे आप बहुत अच्छा विचार कर रहे हैं। आपको दीक्षा धारण करना चाहिए।

तबहिं सुर चार प्रकार नियोग, धरी शिविका निज कंध मनोग
कियो वन माहिं निवास जिनन्द, धरे व्रत चारित आनंदकंद।।११।।

अर्थ- उसी समय चारों निकाय के देव आये और पार्श्वकुमार को पालकी में बैठाकर वन में ले गये वहाँ उन्होंने जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली और आनंद को देने वाले व्रत (चारित्र) धारण किए।

गहे तँह अष्टम के उपवास, गये धनदत्त तने जु अवास।
दियो पयदान महासुखकार, भई पन वृष्टि तहां तिहिं बार।।१२।।

अर्थ- आठ दिन का उपवास ग्रहण किया और उपवास पूर्ण होने पर धनदत्त के घर पारणा करने गये, वहाँ धनदत्त ने गौ दूध की खीर का आहार दिया। महासुख को देने वाले आहारदान के कारण वहाँ पंचाश्चर्य होने लगे।

गये तब कानन माहिं दयाल, धर्‌यो तुम योग सबहिं अघ टाल
तबै वह धूम सुकेतु अयान, भयो कमठाचर को सुर आन।।१३।।

अर्थ- अनन्तर भगवान् तपस्या करने वन में चले गये। वहाँ पापों को दूर करने वाले ध्यान को धारण कर लिया उसी समय धूमकेतु नामक देव पूर्व भव का बैरी कमठ का जीव वहाँ पहुँच गया।

करै नभ गौन लखे तुम धीर, जु पूरव वैर विचार गहीर।
कियो उपसर्ग भयानक घोर, चली बहु तीक्षण पवन झकोर।।१४।।

अर्थ- तब उसने अपने पूर्व भय का वैर विचार कर आकाश में भयानक शब्द किये बहुत जोर से हवा चलाई ; इस तरह वह भयानक उपसर्ग करने लगा।

रह्यो दशहूं दिशि में तम छाय, लगी बहु अग्नि लखी नहिं जाय।
सुरुण्डन के बिन मुण्ड दिखाय, पड़ै जल मूसलधार अथाह ।।१५।।

अर्थ- दशों दिशा में अन्धकार छा गया, बहुत जोर से अग्नि जलने लगी, जो बहुत ही भयानक दिख रही थी, धड़ के बिना सिर और सिर के बिना धड़ दिखाई दे रहे थे और भयानक मूसलाधार वर्षा हो रही थी।

तबै पद्मावति-कंत धनिंद, नये जुग आय जहाँ जिनचंद।
भग्यो तब रंग सुदेखत हाल, लह्यो तब केवलज्ञान विशाल।।१६।।

अर्थ- तभी पद्मावती देवी और उनके पति धरणेन्द्र दोनों वहाँ आ गये और भगवान् को नमस्कार किया इनको देखते ही वह दुष्ट धूमकेतू भाग गया धरणेन्द्र और पद्मावती ने उपसर्ग दूर किया तभी शुक्लध्यान के द्वारा उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

दियो उपदेश महा हितकार, सुभव्यन बोध समेद पधार।
सुवर्णभद्र जहाँ कूट प्रसिद्ध, वरी शिवनारि लही वसु रिद्ध।।१७।।

अर्थ- इसके बाद भगवान् ने भव्य जीवों को सुख देने वाला हितकारी उपदेश दिया और अन्त में सम्मेदशिखर पधारे। वहाँ सुवर्णभद्र कूट पर जाकर योग निरोध कर आठ ऋद्धियाँ प्राप्त कर मोक्ष रूपी लक्ष्मी का वरण किया।

जजूँ तुम चरन दोउ कर जोर, प्रभु लखिये अब ही मम ओर।
कहै 'बख्तावर' रत्न बनाय, जिनेश हमें भव पार लगाय।।१८।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आपके चरणों की पूजा मैं दोनों हाथ जोड़कर करता हूँ। अब आप मेरी ओर देखिये श्री रत्नलाल बख्तावर कवि कहते हैं कि हे जिनेन्द्र ! अब हमें भी संसार सागर से पार उतारो।

घत्ता

जय पारसदेवं सुरकृत सेवं । वंदत चर्ण सु नागपती।
करुणा के धारी पर उपकारी, शिव सुखकारी कर्महती।।१६।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जिन पार्श्वनाथ भगवान् की देव सेवा करते हैं, जिनके चरणों की वन्दना धरणेन्द्र देव करते हैं, करुणा को धारण करने वाले हैं, दूसरों का उपकार करने वाले हैं, मोक्ष सुख को देने वाले हैं। जो आठ कर्म नाश करने वाले हैं उन पार्श्वनाथ भगवान की जय हो।

अडिल्ल

जो पूजै मन लाय भव्य पारस प्रभु नितही।
ताके दुख सब जाँय भीति व्यापै नहिं कित ही।।
सुख संपति अधिकाय पुत्र मित्रादिक सारे।
अनुक्रमसों शिव लहै, 'रत्न' इमि कहै पुकारे ।२०।

(इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- जो भव्य जीव भगवान् की प्रतिदिन पूजा मन लगाकर करते हैं, उनके सभी दुःख दूर हो जाते हैं। किसी प्रकार का भय उन्हें कभी भी नहीं होता एवं सुख सम्पत्ति पुत्र, मित्रादिक सभी प्राप्त होते हैं और क्रम–क्रम से सुख भोगते–भोगते मोक्ष प्राप्त करते हैं ; इस प्रकार रत्नलाल बख्तावर कवि कहते हैं।

गुणानुवाद की महिमा

यद्यपि प्रभु पूर्ण वीतरागी हैं – किसी का कुछ भला बुरा करते नहीं, फिर भी प्रभु की वह पूजा अत्यन्त सुख देने वाली है जिस प्रकार ग्रीष्म से संतप्त प्राणी के ऊपर वृक्ष कोई राग नहीं करता, फिर भी उसकी छाया अति शीतलता प्रदान करती है।

प्रभु के गुणानुवाद में दुःख की विस्मृति सुख की मूलक है।

जिस प्रकार मयूर के आ जाने पर भयानक विषधर से वेष्टित चन्दन वृक्ष का वह बन्धन ढीला हो जाता है, उसी प्रकार प्रभु के हृदय में स्थित होने पर सघन कर्म के बन्धन भी ढीले पड़ जाते हैं।

वीतराग की स्तुति वीतरागता पद होने से तृष्णा की आग पर जल बनकर आत्मशान्ति, निष्पृहता, निर्लोभता और सन्तोषप्रद है।

मुनि श्री क्षमासागर

श्री महावीर जिनपूजा

मत्तगयन्द

श्रीमत वीर हरैं भवपीर, भरें सुखसीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरी करदंक, नये हरि पंकति मौलि सुआई।।
मैं तुमको इत थापतु हौं प्रभु भक्ति समेत हिये हरषाई।
हे करुणा-धन-धारक देव, इहाँ अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई।।

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।(सन्नि०)

अर्थ- अनंतचतुष्टयादि अन्तरंगलक्ष्मी एवं समवशरणादि बहिरंगलक्ष्मी के धारक श्री महावीर भगवान् संसार के दुःखों को दूर करने वाले हैं एवं आत्मा के स्वाभाविक सुख जो आकुलता रहित है, उसे प्रदान करने वाले हैं। जिनके शेर का चिन्ह है, जिन्होंने अपने सभी कर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर दिया है, जिन्हें मुकुट को धारण करने वाले इन्द्रदेव आदि नमस्कार करते हैं उन श्री महावीर भगवान् की हृदय में भक्ति और हर्ष धारण कर स्थापना करता हूँ। हे दया करुणारूपी धन को धारण करने वाले भगवान् अब आप शीघ्र ही यहाँ आकर ठहरिये।

अष्टक

(चाल-द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टकादिक अनेक रागों में बनती है।)

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचन भृंग भरों।
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातें धार करों ।।
श्रीवीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मति दायक हो।।१।।

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

अर्थ- हे भगवन् ! क्षीरसमुद्र के समान पवित्र जल को सोने के कलश में भरकर आपके चरणों में धार दे रहा हूँ। आप शीघ्र ही हमारे संसार के दुःखों को नष्ट कीजिए। हे वीर, महावीर, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमान आप सम्यक्ज्ञान के स्वामी हो, वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार हो, सम्यग्ज्ञान को देने वाले हो, आपकी जय हो।

मलयागिर चन्दनसार, केसर संग घसों।
प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसों।श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।।२।।

अर्थ- मलयागिर का उत्कृष्ट चन्दन केशर के साथ घिसकर मन में अति उत्साह और प्रसन्नता धारण कर हे भगवन् ! आपकी चन्दन से पूजा करता हूँ। आप शीघ्र ही संसार के आताप को नष्ट कीजिए।

तंदुल सित शशि सम शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अविरुद्ध, पावो शिवनंगरी । श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्व० स्वाहा।।३।।

अर्थ- चन्द्रमा के समान उज्ज्वल और शुद्ध थाली भर चावलों के पुंज अविनाशी मोक्ष पद को प्राप्त करने के लिए आपके चरणों में चढ़ाता हूँ।

सुरतरु के सुमन समेत, सुमन सुमन प्यारे।
सो मनमथ भंजन हेत, पूजों पद थारे। श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।।४।।

अर्थ- मन को अच्छे लगने वाले कल्पवृक्ष के पुष्पों से काम की वेदना को नष्ट करने के लिए हे भगवन् ! पुष्पों से आपके चरणों की पूजा करता हूँ।

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी।श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।।५।।

अर्थ-रसयुक्त स्वादिष्ट ताजे पकवान स्वर्ण थाल में भरकर भूख (क्षुधा) रूपी शत्रु को नष्ट करने के लिए आपके चरणों में समर्पित कर पूजन करता हूँ।

तमखंडित मंडित नेह, दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों।श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।।६।।

अर्थ- हे महावीर भगवन् ! अंधकार को नष्ट करने वाला दीपक जलाकर भ्रम का नाश करने के लिए आपके चरणों में चढ़ाता हूँ। आप सुख के भंडार हो मेरे अज्ञान अंधकार को दूर कीजिए।

हरिचन्दन अगर कपूर, चूर सुगंध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा।श्रीवीर०

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व० स्वाहा।।७।।

अर्थ- हे वीर प्रभु ! हरि, चन्दन, अगर, कपूर आदि सुगंधित द्रव्य को पीसकर आपके चरणों में आठ कर्मों को जलाने के लिए अग्नि में खेता हूँ।

ऋतुफल कल-वर्जित लाय, कंचन थार भरों।
शिव फलहित हे जिनराय, तुम ढिंग भेंट धरों।।श्री० वीर०।।

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० स्वाहा।।८।।

अर्थ- छहों ऋतुओं के उत्तम दोष रहित फल स्वर्ण के थाल में भरकर मोक्ष फल की प्राप्ति के लिए हे भगवन् ! आपके चरणों के निकट चढ़ाता हूँ।

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों।
गुणगाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों।
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मति दायक हो।

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व०।।९।।

अर्थ- हे वीर प्रभु ! जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल आदि आठों द्रव्यों को स्वर्ण थाल में सजाकर तन मन में हर्षित होकर सभी पापों को नष्ट करने वाले और भव रूपी सागर से पार लगाने वाले भगवान् की पूजन करता हूँ। हे वीर, महावीर, अतिवीर, सन्मति, वर्धमान ! आप सम्यग्ज्ञान के स्वामी हो, वृद्धि को प्राप्त होने वाले गुणों के भंडार हो, सम्यग्ज्ञान को देने वाले हो, आपकी जय हो।

पंचकल्याणक

मोहि राखो हो सरना, श्री वर्द्धमान जिन रायजी।। मोहि राखो०।।
गरभ साढ़सित छट्ठ लियो थिति, त्रिशला उर अघ हरना।
सुर सुरपति तित सेव करौ नित, मैं पूजूं भवतरना।।मोहि०

ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठयां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

अर्थ- हे वर्धमान जिनेन्द्र ! मुझे आप अपनी शरण में ले लीजिए। आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के दिन पापों को नष्ट करने वाले आप माता त्रिशला के गर्भ में आये। इन्द्र और देवताओं ने आपकी सेवा की मैं भी संसार सागर से पार होने के लिए आपकी पूजा करता हूँ। आप मुझे अपनी शरण में लीजिए।

जनम चैत सित तेरस के दिन, कुण्डलपुर कन बरना।
सुरगिरि सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना।।
मोहि राखो हो०।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२।।

अर्थ- चैत्र शुक्ल त्रयोदशी के दिन कुण्डलपुर में जन्म लिया तब इन्द्रों ने सुमेरु पर्वत पर जाकर अभिषेक, पूजन की। मैं भी ससांर के अन्त करने के लिए आपकी पूजन करता हूँ। हे वर्धमान भगवान् ! आप मुझे अपनी शरण में लीजिए।

मगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।
नृप कुमार घर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना।।
मोहि राखो हो०।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी के दिन दीक्षा धारण कर तपस्या की थी। नृपकुमार के यहाँ पारणा की थी। मैं आपके चरण कमलों की पूजा करता हूँ। हे वर्धमान भगवान् ! आप मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।

शुक्लदशैं वैशाख दिवस अरि, घाति चतुक क्षय करना,
केवललहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना।।
मोहि राखो हो०।।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्ल-दशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- वैशाख शुक्ल दशमी के दिन चार घातियाकर्म रूपी शत्रुओं का नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया और भव्य जीवों को भव सागर से पार उतारा था। शाश्वत सुख की प्राप्ति के लिए आपके चरणों की पूजा करता हूँ। हे वर्धमान भगवान् ! मुझे आप अपनी शरण में लीजिए।

कार्तिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतैं वरना।
गणफनिवृन्द जजें तित बहुविध मैं पूजों भयहरना।।
मोहि राखो हो०।।

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णामावस्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- कार्तिक कृष्ण अमावस्या के दिन पावापुर से मुक्ति प्राप्त की थी। आपकी पूजा अर्चना गणधरदेव आदि बहुत प्रकार से करते थे। मैं संसार से दुःखों के भय को दूर करने के लिए आपकी पूजा करता हूँ।

जयमाला

छन्द हरिगीता। २८ मात्र।

गणधर अशनिधर चक्रधर हलधर गदाधर वरवदा।
अरु चापधर विद्या सुधर तिरशूलधर सेवहिं सदा।।
दुखहरन आनंदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकमाल गुणमणिमाल उन्नत भाल की जयमाल हैं।।१।।

अर्थ- गणधर, तलवार धारण करने वाले इन्द्र, चक्र को धारण करने वाले चक्रवर्ती हल को धारण करने वाले बलदेव, गदा को धारण करने वाले नारायण, श्रेष्ठ और मधुर बोलने वाले मनुष्य, धनुष धारण करने वाले, त्रिशूल धारण करने वाले, और

विद्याधर आदि सभी हमेशा हे भगवन्! आपकी सेवा करते हैं। आपके चरण कमल दुःखों को हरण करने वाले आनंद को देने वाले संसार से पार करने वाले हैं। जिनका मस्तक गुणोंरूपी सुकोमल मणियों के समूह से शोभायमान हो रहा है, उन महावीर भगवान् के गुणों का वर्णन करता हूँ।

छन्द घत्तानन्द

जय त्रिशलानंदन हरिकृतवंदन, जगदानंदन चंदवरं।
भवतापनिकंदन तनमनकंदन, रहित सपंदन नयन धरं।२।

अर्थ- हे त्रिशला के लाल! देवों द्वारा वंद्य, जगत् को आनंदित करने वाले, श्रेष्ठ चन्द्र, संसार संताप के नाशक, शरीर मन के ताप को दूर करने वाले स्पन्द रहित नयनों को धारण करने वाले आपकी जय हो।

छन्द त्रोटक

जय केवलभानु-कला-सदनं,भवि-कोक-विकासन कंदवनं।
जगजीत महारिपु मोहहरं, रजज्ञान - दृगांवर चूर करं।।१।।

अर्थ- केवलज्ञानरूपी सूर्य की कलाओं के घर, भव्य जीव–रूपी चक्रवाकपक्षियों को प्रसन्न करने वाले कमल वन, समस्त संसार को जीतने वाले महाशत्रु मोह को हरने वाले, अज्ञान–रूपी धूल को नष्ट करने वाले भगवान आपकी जय हो।

गर्भादिक-मंगलमंडित हो, दुखदारिदको नितखंडित हो।
जगमाहिं तुम्हीं सतपंडित हो, तुमहीभवभाव-विहंडित हो।।२।।

अर्थ- हे भगवन् ! आप गर्भ कल्याणक आदि पंच कल्याणकों से सहित हो। दुःख और दरिद्रता को नष्ट करने वाले हो, संसार में आप ही उद्धार करने वाले हो, ज्ञाता हो, और आप ही संसार बढ़ाने वाले भावों को नष्ट करने वाले हो।

हरिवंश सरोजनको रवि हो, बलवंत महंत तुम्हीं कवि हो।
लहि केवलधर्म प्रकाशकियो, अबलों सोइमारग राजतिया।।३।।

अर्थ- हरिवंशरूपी कमल को विकसित करने के लिए आप सूर्य के समान हो, अनंतवीर्य को धारण करने वाले महाबलवान हो। महान् उत्कृष्ट कवि हो। हे भगवान् आपने केवलज्ञान प्राप्त कर धर्म का प्रकाश किया और संसार में भटकते जीवों को मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

पुनि आप तने गुण माहिं सही, सुरमग्न रहैं जितने सबही।
तिनकी वनिता गुणगावत हैं, लय माननिसों मन भावत हैं।।४।।

अर्थ- हे भगवन् ! सुरगण आपके गुणों के चिन्तन और स्मरण करते हुए मग्न रहते हैं और उन सुरों की देवांगनाएं मन को हरण करने वाली अत्यन्त सुन्दर लय से आपके गुण गाती हैं।

पुनि नाचत रंग उमंग-भरी, तुम भक्ति विषै पग एम धरी।
झननं झननं झननं झननं, सुर लेत तहां तननं तननं।।५।।

अर्थ- भक्ति के रंग में रँग कर उमंग से नृत्य करती हैं और तरह–तरह से पाँव को उठाती और रखती हैं। उनके पाँव रखने और उठाने से उनके पाँव की पायल एवं नूपुरों से झनन झनन की आवाज होती है और देव अपने वाद्य यंत्रों से तनन तनन की तान छेड़ते हैं।

घननं घननं घनघंट बजै, दृमदं दृमदं मिरदंग सजै।
गनांगन-गर्वगता सुगता, ततता ततता अतता वितता।।६।।

अर्थ- घनन घनन घन्टों की आवाज हो रही है और दृमदं दृमदं मृदंग की ध्वनि से शोभा पा रहे हैं, गगनरूपी आँगन में देव देवियां दृश्य और अदृश्य हैं। ततत अतत वितत शब्दों की भी सुन्दर ध्वनि हो रही है।

धृगतां धृगतां गति बाजत है, सुर ताल रसालजु छाजत है।
सननं सननं सननं नभमें, इकरूप अनेक जुधारि भ्रमें।।७।।

अर्थ- उन देव देवियों के चलने से दृगतां दृगतां की ध्वनि हो रही है। उनकी तालियों की मनोहारी आवाज छा रही है। आकाश में देवों के नाना रूप धारण करके भ्रमण करने से सनन सनन की आवाज हो रही है।

कई नारि सुबीन बजावत हैं, तुमरो जस उज्ज्वल गावत हैं।
करताल विषैं करताल धरैं, सुरताल विसाल जु नाद करैं ।।८।।

अर्थ- कई स्त्रियां सुन्दर बीन बजाकर आपके गुणों का गान कर रही हैं। कुछ देवियां अपने हाथों में खड़ताल लिए हुए हैं, कुछ गम्भीर आवाज में सुरताल (सांरगी) बजा रही हैं।

इन आदि अनेक उछाह भरी, सुर भक्ति करें प्रभु जी तुम री।
तुम ही जग जीवन के पितु हो, तुम ही बिन कारनतें हितु हो ।।९।।

अर्थ- इस तरह अनेक प्रकार से उत्साहपूर्वक देवगण, हे भगवन् ! आपकी भक्ति करते हैं। आप संसार के सभी जीवों के पिता हो। आप ही बिना कारण के हित करने वाले हो।

तुम ही सब विघ्न विनाशन हो, तुम ही निज आनंदभासन हो।
तुम ही चित चिंतित दायक हो, जग माँहि तुम्हीं सब लायक हो।।१०।।

अर्थ- आप ही सब विघ्नों को नष्ट करने वाले हो। आप ही आत्मा के आनंद को प्रकाशित करने वाले हो। आप ही सभी अभिलषित फल को देने वाले हो, जग में आप ही सभी श्रेष्ठ कार्य करने में समर्थ हो।

तुमरे पन मंगल मांहि सही, जिय उत्तम पुण्य लियो सबही।
हमको तुमरी शरणागत है, तुमरे गुन में मन पागत है।।११।।

अर्थ- हे भगवन् ! आपके पाँचों कल्याणक महोत्सवों को आनंद सहित मनाकर जीव उत्कृष्ट पुण्य अर्जन करते हैं। हमारे लिए तो एक आप ही शरण हैं। आपके ही गुणों में हमारा मन आनन्दित होता हैं।

प्रभु मो हिय आप सदा बसिये, जबलों वसु कर्म नहीं नसिये।
तब लों तुम ध्यान हिये वरतों, तब लोंश्रुत चिंतन चित्त रतों।।१२।।

अर्थ- हे भगवन् ! जब तक मेरे आठ कर्म नष्ट नहीं हुए तब तक आप मेरे ह्रदय में ही निवास कीजिए। जब तक आठ कर्म नष्ट नहीं हुए तब तक तुम्हारा ही ध्यान रहे तथा श्रुत चिन्तन में ही मेरा मन लगा रहे।

तब लों व्रत चारित चाहतु हों, तब लों शुभभाव सुगाहतु हों।
तब लों सतसंगति नित्त रहो, तब लों मम संजम चित्त गहो।।१३।।

अर्थ- तब तक मैं व्रत और चारित्र चाहता हूँ, तब तक शुभ भाव धारण करना चाहता हूँ, तब तक सत्संगति नित्य रहे, जब तक मेरे चित्त में संयम ग्रहण रहे।

जबलों नहिं नाश करों अरिकों, शिव नारि वरों समता धरिकों
यह द्यो तबलों हमको जिनजी, हम जाचतु हैं इतनी सुनजी।।१४।।

अर्थ- मैं जब तक समता भाव धारण करके कर्मरूपी वैरियों का नाश न कर डालूं और जब तक मोक्ष पद को प्राप्त नहीं कर लूं तब तक आप हमें उपर्युक्त सभी वस्तुएं दीजिए। हम विनयपूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं अतः आप हमारी प्रार्थना सुन लीजिए।

घत्तानंद

श्रीवीर जिनेशा नमित सुरेशा, नाग नरेशा भगति भरा।
'वृन्दावन' ध्यावै विघन नशावै, वाँछित पावै शर्म वरा।।१५।।

ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- हे महावीर भगवन् ! आपकी भक्ति में भरकर इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती नमस्कार करते हैं। वृन्दावनलाल कविराज कहते हैं कि जो भव्य जीव श्री महावीर भगवान् का ध्यान करते हैं, उनके सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं और इच्छित उत्कृष्ट मोक्ष सुख प्राप्त होता है।

दोहा

श्री सन्मति के जुगल पद, जो पूजैं धरि प्रीति।
वृन्दावन सो चतुर नर, लहैं मुक्ति नवनीत।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपामि)

अर्थ- श्री सन्मति भगवान् के चरण युगल की जो प्रीतिपूर्वक पूजन करता है वृन्दावनलाल कवि कहते हैं कि वह ही चतुर मनुष्य है, क्योंकि वह ही मोक्षरूपी नवनीत को प्राप्त करता है।

अमृत वाणी

जिनेन्द्रदेव के चरण–कमलों की पूजा के फल से मनुष्य सुन्दर रूप से सहित होते हैं तथा तीन लोक के भोग भोगकर फिर वचनसिद्धि रूपी स्त्री के स्वामी होते हैं।

सोलहकारण पूजा

कविवर द्यानतराय जी

सोलह कारण भाय तीर्थंकर जे भये।
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये।।
पूजा करि निज धन्य लख्यौ बहु चावसौं।
हमहू षोडशकारण भावैं भावसों।।

ओं ह्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र अवतरत अवतरत, संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् (सन्निधिकरणम्)

अर्थ– सोलहकारण भावनाओं को भाने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, उन्हें जन्म के समय अत्यन्त हर्ष से इन्द्र मेरु पर ले जाकर अभिषेक कर पूजा करता हुआ[1] अपने आपको धन्य मानता है और बहुत रुचिपूर्वक आपके दर्शन करता है अतः हम भी अपने आपको धन्य मानते हुए सोलहकारण भावनाओं को शुद्ध मन से भाते हैं।

कंचन-झारी निरमल नीर पूजों जिनवर गुन-गंभीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।।
दरश विशुद्धि भावना भाय सोलह, तीर्थंकर-पद-दाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो ।।

सोलहकारण भावनाएँ- १. दर्शनविशुद्धि २. विनयसम्पन्नता ३. शीलव्रतेष्वनतीचार ४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग ५. संवेग ६. शक्तितस्त्याग ७. शक्तितस्तप ८. साधुसमाधि ९. वैयावृत्यकरण १०. अर्हद्भक्ति ११. आचार्यभक्ति १२. बहुश्रुतभक्ति १३. प्रवचनभक्ति १४. आवश्यकापरिहाणि १५. मार्गप्रभावना १६. प्रवचनवात्सल्य।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

अर्थ– स्वर्ण झारी में स्वच्छ जल लेकर गुण के भंडार जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ। हे नाथ ! आपकी जय हो, जय हो। आप परमगुरु हो, आप परम गुरु हो। दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओं को भाकर (चिन्तन कर) तीर्थंकर पद प्राप्त कर लिया है। हे नाथ ! आपकी जय हो, जय हो। आप परमगुरु हो, परमगुरु हो।

चन्दन घसौं कपूर मिलाय पूजौं श्रीजिनवर के पाँय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश०।।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ– श्री जिनेन्द्र भगवान् के चरणों को प्राप्त कर उनकी (जिनेन्द्र भगवान्) चंदन को कपूर के साथ मिलाकर पूजा करता हूँ। हे नाथ ! आपकी जय हो जय हो। आप परमगुरु हो, आप परमगुरु हो।

तंदुल धवल सुंगध अनूप पूजौं जिनवर तिहुं जग-भूप।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश०।।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ– उज्ज्वल (श्वेत) सुगंधित अनुपम चावलों से तीनों लोकों के स्वामी जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। हे नाथ ! आपकी जय हो जय आप परम गुरु, आप परम गुरु हो।

फूल सुगन्ध मधुप-गुंजार पूजौं जिनवर जग-आधार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश०।।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।४।।

अर्थ– जिन पर भौंरे मँडरा रहे हैं ऐसे सुगंधित पुष्पों से तीनों लोकों के आधार स्वरूप भगवान् की पूजा करता हूँ। हे नाथ ! आपकी जय हो, जय हो। आप परम गुरु हो, परम गुरु हो।

सद नेवज बहुविधि पकवान पूजौं श्रीजिनवर गुणखान।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश०।।

ओं ही दर्शनाविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशकाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।५।।

अर्थ– बहुत प्रकार के ताजे पकवानों (नैवेद्य) से गुणों के भण्डार जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ। हे नाथ ! आपकी जय हो जय हो, आप परम गुरु हो, परम गुरु हो।

दीपक-ज्योति तिमिर छयकार पूजूं श्रीजिन केवलधार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश०।।

ओं ही दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

अर्थ– अंधकार को नष्ट करने वाले दीपक की ज्योति से केवलज्ञानरूपी ज्योति को धारण करने वाले श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ। हे नाथ आपकी जय हो, जय हो, आप परम गुरु हो, परम गुरु हो।

अगर कपूर गन्ध शुभ खेय श्री जिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।। दरश०।।

ओं ही दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० स्वाहा।।७।।

अर्थ– अगर कपूर आदि सुगंधित शुभ धूप को अग्नि में जलाकर श्री जिनेन्द्र भगवान् के समक्ष सुंगध उड़ा रहा हूँ। हे नाथ ! आपकी जय हो, जय हो, आप परम गुरु हो, परम गुरु हो।

श्री फल आदि बहुत फलसार पूजों जिन वांछित-दातार।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो ।।दरश०।।

ओं ही दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० स्वाहा।।८।।

अर्थ– श्रीफल (नारियल) आदि बहुत प्रकार के उत्कृष्ट फलों से इच्छित फल को देने वाले श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ। हे नाथ ! आपकी जय हो, जय हो, आप परम गुरु हो, परम गुरु हो।

जल फल आठों दरव चढ़ाय, "द्यानत" वरत करों मन लाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।।दरश०।।

ओं ह्री दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०स्वाहा।।६।।

अर्थ– जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प नैवेद्य, दीप, धूप, फल, इन आठों द्रव्यों को चढ़ाकर सोलहकारण व्रत करता हूँ। ऐसा द्यानतराय जी कहते हैं; आपकी जय हो, जय हो। आप परम गुरु हो, परम गुरु हो।

जयमाला

षोडश कारण गुण करै, हरै चतुरगति-वास।
पाप पुण्य सब नाश के, ज्ञान-भान परकाश।।

अर्थ– सोलहकारण भावना सभी गुणों को उत्पन्न करने वाली हैं। चारों गतियों के निवास का नाश करने वाली हैं। पुण्य और पाप का नाश करके केवलज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश करने वाली हैं।

चौपाई १६ मात्रा

दरश विशुद्धि धरे जो कोई ताको आवागमन न होई।
विनय महा धारै जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी।।

अर्थ- दर्शन विशुद्धि को जो धारण करते हैं, उन्हें संसार का परिभ्रमण (आवागमन) नहीं होता। जो मोक्षरूपी स्त्री की सखी के समान महान् विनय को धारण करते हैं, वे अवश्य ही मोक्षरूपी स्त्री का वरण करते हैं।

शील सदा दृढ़ जो नर पालै, सो औरन की आपद टालै।
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं, ताके मोह-महातम नाहीं।।

अर्थ- जो मनुष्य अतिचार रहित हमेशा शील व्रत का पालन करते हैं वे अपनी और दूसरों की आपत्ति विपत्तियों को नष्ट करते हैं और जो मनुष्य जिनवर कथित ज्ञान का निरन्तर मन में अभ्यास करते हैं उनके मोहरूपी महांधकार नहीं रहता।

जो संवेग-भाव विसतारै, सुरग-मुकति-पद आप निहारै।
दान देय मन हरष विशेखै, इह भव जस, परभव सुख देखै।।

अर्थ- जो मनुष्य मन में संवेगभाव (संसार से विरक्ति) का विस्तार से चिन्तन करते हैं उन्हें स्वर्ग और मोक्ष की सम्पदा अपने आप प्राप्त होती है। जो मनुष्य दान देते समय मन में अत्यन्त हर्षित होते हैं, उन्हें इस भव में यश और अगले भव में सुख की प्राप्ति होती है।

जो तप तपै खपे अभिलाषा, चूरे करम-शिखर गुरु भाषा।
साधु-समाधि सदा मन लावै, तिहुं जग भोग भौगि शिव जावै।।

अर्थ- जो मनुष्य तप धारण करके इच्छाओं का नाश करते हैं, वे कर्मरूपी पर्वत को नष्ट कर देते हैं, ऐसा गुरुओं ने उपदेश दिया है। जो साधु समाधि की भावना को मन में धारण करते हैं, वे तीनों लोको के भोगों को भोगकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

निशि-दिन वैय्यावृत्य करैया, सो निहचै भव-नीर तिरैया।
जो अरहंत-भगति मन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै।।

अर्थ- जो मनुष्य दिन रात वैय्यावृत्य करते हैं, वे निश्चित संसार सागर के पार हो जाते हैं। जो व्यक्ति निरंतर अरहंत भगवान् की भक्ति को मन में धारण करते हैं, वे व्यक्ति विषय और कषाय से दूर रहते हैं।

जो आचारज-भगति करै हैं, सो निर्मल आचार धरै है।
बहुश्रुतवंत-भगति जो करई, सो नर संपूरन श्रुत धरई।।

अर्थ- जो मनुष्य निरन्तर आचार्य परमेष्ठी की भक्ति करते हैं वे निरतिचार (निर्मल) आचरण (चारित्र) को धारण करते हैं। जो बहुत श्रुतवान् साधुओं की भक्ति करते हैं, वे सम्पूर्ण श्रुत के पारगामी होते हैं।

प्रवचन-भगति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानंद-दाता।
षट् आवश्यक काल जो साधै, सो ही रत्न-त्रय आराधै।।

अर्थ- जो जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित जिनवाणी की भक्ति करता है, वह परमानंद (अनंतसुख) के देने वाले केवलज्ञान को प्राप्त करता है। जो छह आवश्यकों की प्रति समय साधना करते हैं, वे ही निश्चय से रत्नत्रय की आराधना करते हैं।

धरम-प्रभाव करैं जे ज्ञानी, तिन-शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै।।

अर्थ- जो उत्सव पूर्वक धर्म की प्रभावना करते हैं, वे ही मोक्ष प्राप्त करने की रीति अर्थात् मोक्षमार्ग को पहचानते हैं। जो गाय और बछड़े की तरह साधर्मी की प्रीति कर वात्सल्य अंग का ध्यान करते हैं। वे तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं।

दोहा

एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र-नरवंद्य-पद, "द्यानत" शिव-पद होय।।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि षोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- भ्ये सोलह कारण भावना व्रत सहित जो ग्रहण करते हैं वे देव, इन्द्र मनुष्य चक्रवर्ती आदि से वंदित पद अर्थात् तीर्थंकर पद प्राप्त करते हैं और मोक्ष प्राप्त करते हैं; ऐसा द्यानतराय जी कहते हैं।

सवैया तेईसा

सुन्दर षोडशकारण भावना निर्मल चित्त सुधारक धारैं,
कर्म अनेक हने अति दुर्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारै।।
दुःख दारिद्र विपत्ति हरै भव-सागर को पर पार उतारै,
"ज्ञान" कहे यही षोडशकारण कर्म निवारण सिद्ध सुधारै।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- हितकारी सोलहकारण भावना, मन के विकारी भाव नष्टकर निर्मल भावों को करने वाली हैं। अनेक कर्मों का नाश करने वाली एवं प्रबल व प्रचण्ड जन्म, जरा और मृत्यु के भव को निवारण करने वाली हैं, दुःख, दरिद्रता, विपत्तियों का नाश करने वाली एवं भवरूपी समुद्र को उतारने वाली हैं। श्री ज्ञानचन्द्र जी कवि कहते हैं कि ये ही सोलह कारण भावनायें कर्मों का नाश करने के लिए सिद्ध भगवान् ने भी धारण की थी।

अमृतवाणी

१. जिस तरह चक्रवर्ती की सम्पदा को छोड़कर झोपड़ी ग्रहण करना मूर्खता है, वैसे ही सम्यग्दर्शन एवं व्रतादि को छोड़कर विषय भोगों को ग्रहण करना भी महान मूर्खता है।
२. यंत्र, मंत्र, तंत्र, मणि और औषधि आदि सब पुण्योदय तक साथ देते हैं। पुण्य के क्षीण होते ही समस्त वस्तुएं निष्प्रभ हो जाती हैं।

पंचमेरु-पूजा

(कविवर द्यानतराय जी)

गीता-छन्द

तीर्थंकरों के न्हवन-जलतैं भये तीरथ शर्मदा,
तातैं प्रदच्छन देत सुर-गन पंच मेरुन की सदा।
दो जलधि ढाई द्वीपमें सब गनत-मूल विराजहीं,
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा होहि सुख दुख भाजहीं।।

ओं ह्री पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्री पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ जिनप्रतिमा-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमा-समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अर्थ- तीर्थंकरों के जन्माभिषेक जल से सुख को देने वाले जो तीर्थ बन गये हैं उन पाँचों मेरु पर्वतों की देवगण हमेशा परिक्रमा करते हैं। दो समुद्र और ढाई द्वीप में सब मेरु पर्वतों पर मूल रूप से स्थित अस्सी जिनालयों में विराजमान प्रतिमाओं की पूजा करता हूँ, जिससे सुख की प्राप्ति होती है और दुःख भाग जाते हैं।

सीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनरायं।
महासुख होय देखे नाथ परम सुख होय ।।
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करों प्रनाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।

ओं ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मंदर-विद्युन्मालि-पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।१।

अर्थ– शीतल, मधुर और सुगंधित जल से श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ, जिससे महान् सुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से परम

सुख की प्राप्ति होती है। पाँचों मेरु संबंधी अस्सी जिनालयों में स्थित सभी प्रतिमाओं को प्रणाम करता हूँ, जिससे महान् सुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन से परम सुख की प्राप्ति होती है।

जल केशर करपूर मिलाय, गंधसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।
पाँचों मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसंम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।३।

अर्थ– जल में केशर, कपूर मिलाकर सुगंधित चन्दन से जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता हूँ। जिससे महासुख (अनंतसुख) की प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करने से परमानंद की प्राप्ति होती है।

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छत सौं पूजौं जिनराय।
महासुख होय ,देखे नाथ परम सुख होय ।।पाँचों।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसंम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं नि० स्वाहा।३।

अर्थ– मल रहित, अखंडित सुगंधित, एवं सुन्दर (अच्छे लगने वाले) अक्षत (चावलों) से श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ, जिससे महासुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से परम आनंद की प्राप्ति होती है।

बरन अनेक रहे महकाय, फलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।पाँचौं०।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः पुष्पं नि० स्वाहा ।४।

अर्थ– अनेक वर्ण के (रंग के) सुगंध को फैलाने वाले पुष्पों से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ जिससे महासुख मिलता है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से परम सुख की प्राप्ति होती है।

मन वांछित बहु तुरत बनाय, चरुसौं पूजों श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।पाँचों०।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं नि० स्वाहा ।५।

अर्थ– मन को अच्छे लगने वाले तुरन्त बनाये गये ताजे नैवेद्य से श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ। जिससे महासुख की प्राप्ति होती है जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से परम आनंद को प्राप्त होता है।

तम-हर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।पाँचों०।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो दीपं नि० स्वाहा।६।

अर्थ– अंधकार का नाश करने वाली उज्ज्वल ज्योति को जलाकर दीपक से जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूं जिससे महासुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से परमसुख की प्राप्ति होती है।

खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसौं पूजौं श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।पाँचों०।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालस्थ-जिनबिम्बेभ्यो धूपं नि० स्वाहा ।७।

अर्थ– अगर आदि से बनी शुद्ध धूप अग्नि में खेकर (जलाकर) श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ , जिससे महासुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से परमसुख की प्राप्ति होती है।

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।पाँचों०।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः फलं नि० स्वाहा।८।

अर्थ– रस युक्त सुन्दर रंग के सुगंधित, मन को अच्छे लगने वाले फलों से श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ , जिससे महासुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से परमसुख की प्राप्ति होती है।

आठ दरबमय अरघ बनाय,"द्यानत" पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ।।पाँचों०।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं नि० स्वाहा।।६।।

अर्थ– श्रीद्यानतराय जी कहते हैं कि आठ द्रव्य से अर्घ्य बनाकर श्री जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करता हूँ, जिससे महासुख की प्राप्ति होती है। जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करने से परमसुख की प्राप्ति होती है।

जयमाला

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंच मेरु जगमें प्रगट ।।

अर्थ– पहला मुख्य सुदर्शनमेरु और विजयमेरु, अचलमेरु, मंदरमेरु, विद्युन्माली मेरु नाम वाले पाँच मेरु संसार में विख्यात हैं।

केसरी छन्द

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजै, भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ।।

अर्थ– पहला सुदर्शनमेरु (एक लाख योजन ऊंचा) जम्बूद्वीप के बीचों बीच स्थित है। वहाँ भूमि पर भद्रशाल नाम का वन है। जिसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय हैं। उनकी हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

ऊपर पंच-शतक पर सौहै, नंदन-वन देखत मन मोहै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनं वच तन वंदना हमारी।।

अर्थ– भद्रशाल वन से पाँच सौ योजन ऊपर सुन्दर नंदन वन स्थित है, जिसे देखने से मन मोहित हो जाता है। इसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय हैं, उनकी हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सौमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी।।

अर्थ– नंदनवन से साढ़े बासठ हजार योजन की ऊँचाई पर अधिक शोभा को धारण करने वाला सौमनस वन है। इसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय हैं, उनकी हम मन वचन काय से वंदना करते हैं।

ऊँचा जोजन सहस-छत्तीसं, पाण्डुक-वन सौहै गिरि-सीसं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी।।

अर्थ– सौमन सवन से छत्तीस हजार योजन ऊपर सुदर्शन मेरु के शीर्ष भाग पर पाण्डुक वन स्थित है इसकी चारों दिशाओं में सुख को देने वाले चार जिनालय हैं, उनकी हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

चारों मेरु समान बखाने, भूपर भद्रसाल चहुं जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी।।

अर्थ– चार मेरु (विजयमेरु, अचलमेरु, मंदरमेरु, विद्युन्मालीमेरु) समान (८४ हजार योजन) ऊँचाई एवं समान विस्तार वाले हैं इनमें भूमि पर चारों भद्रशाल वन हैं। प्रत्येक की चारों दिशा में एक–एक जिन चैत्यालय हैं। सुख को देने वाले उन सोलह चैत्यालयों की मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी।।

अर्थ– भद्रशाल वन से पाँच सौ योजन ऊपर चारों मेरु पर्वतों पर चार नंदन वन हैं। सुख को देने वाले उन सोलह चैत्यालयों की हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

साढ़े पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वचन तन वंदना हमारी।।

अर्थ– नंदनवन से साढ़े पचपन हजार सहित योजन ऊपर अनेक रंग से अर्थात् रंग–बिरंगे रत्नों से सहित सौमनसवन स्थित हैं इनकी चारों दिशाओं में एक–एक जिनालय हैं। सुख को देने वाले उन सोलह चैत्यालयों की हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी।।

अर्थ– सौमनस वन से अट्ठाईस हजार योजन ऊपर चारों मेरु पर्वतों पर चार सुन्दर पांडुक वन हैं। इनकी चारों दिशाओं में एक–एक जिनालय हैं। उनकी हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

सुर नर चारन वंदन आवैं, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी ।।

अर्थ– देव, मनुष्य (विद्याधर) और चारणऋद्धि धारी मुनिराज इन जिनालयों की वंदना करने आते हैं , वहॉ की शोभा की अर्थात् सुन्दरता का वर्णन हम अपने मुँह से नहीं कर सकते, सुख को देने वाले अस्सी जिनालयों की हम मन, वचन, काय से वंदना करते हैं।

दोहा

पंच मेरुकी आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
"द्यानत" फल जानै प्रभु, तुरत महासुख होय।।

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः पूर्णार्घ्यं नि० स्वाहा।

इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपामि

अर्थ– पंचमेरु स्थित जिनालयों की आरती जो कोई पढ़ते और सुनते हैं उन्हें जो फल प्राप्त होता है उसे भगवान् ही जानते हैं। द्यानतराय जी कहते हैं परन्तु उन्हें तुरन्त अनंत सुख की प्राप्ति हो जाती है।

पंचमेरु वर्णन

जम्बूद्वीप के बीच में एक लाख योजन ऊँचा एक गोल पर्वत है, जिसका नाम सुदर्शन मेरु है। जम्बूद्वीपवर्ती दो सूर्य, दो चन्द्र वाला ज्योतिष चक्र इसी पर्वत के चारों ओर सदा घूमता रहता है। घातकी खण्ड द्वीप में पूर्व तथा पश्चिम दिशा में विजय और अचल नामों के दो गोलाकार पर्वत हैं जो कि ८४–८४ हजार योजन ऊँचे हैं। तृतीय पुष्करवरद्वीप में पूर्व में मन्दर और पश्चिम में विद्युन्माली नाम के दो पर्वत हैं, वे भी ८४–८४ हजार योजन ऊँचे है। जम्बूद्वीप की तरह घातकी खण्ड तथा पुष्करवरद्वीप के सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिष विमान इन पर्वतों की तलहटी में भद्रसाल वन है, पहली कटनी पर नन्दन वन है, दूसरी कटनी पर सौमनस वन है। पांचों मेरुओं के ऊपर पाण्डुक वन है जिसमें पाण्डुकशिला है, उसी पर तीर्थंकर का जन्माभिषेक इन्द्र करता है।

नन्दीश्वरद्वीप पूजा

कविवर द्यानतराय जी

सरव परव में बड़ो अठाई परव है।
नंदीश्वर सुर जांहि लेय वसु दरब है।।
हमैं सकति सो नांहि इहां करि थापना।
पूजैं जिनगृह-प्रतिमा है हित आपना।।

ओं ही श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ही श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिन प्रतिमासमूह! अत्र मम तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ही श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिन प्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अर्थ– सब पर्वों में बड़ा पर्व अष्टाह्निका पर्व है। इस पर्व में चतुर्णिकाय (चारों निकाय) के देव अष्ट द्रव्य को लेकर अकृत्रिम चैत्यालयों में जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने नन्दीश्वरद्वीप जाते हैं। हमारी शक्ति नन्दीश्वरद्वीप तक जाने की नहीं है। अतः हम यहीं नन्दीश्वर द्वीप के जिनालयों की स्थापना कर जिनालय में स्थित जिनबिम्बों की अपने हित के लिए पूजा करते हैं।

कंचन -मणिमय-भृंगार, तीरथ-नीर भरा।
तिहुँ धार दई निरवार, जामन मरन जरा।।
नंदीश्वर-श्रीजिन-धाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम,आनंद-भाव-धरों।।
नन्दीश्वर द्वीप महान चारों दिशि सोहें।
बावन जिनमन्दिर जान सुर गण मन मोहें।।

ओं हीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपेपूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि०स्वाहा।२।

अर्थ- हे भगवन् ! स्वर्ण के रत्नजड़ित भृंग (कलश) में तीर्थ का जल भरकर जन्म जरा और मृत्यु को नष्ट करने को आपके चरणों के समक्ष तीन धार देता हूँ। नंदीश्वरद्वीप के जिनमंदिरों में बावन अर्घ्य (पुंज) बनाकर आठ दिन सुन्दर प्रतिमाओं की पूजा कर आनन्द भाव को धारण करता हूँ। नंदीश्वरद्वीप महान् है, जिसमें चारों दिशाएं शोभायमान हैं। वहाँ बावन जिनमंदिर हैं, जो देवसमूह के मन को मोहित करने वाले हैं।

भव-तप-हर शीतल वाच, सो चंदन नांही।
प्रभु यह गुण कीजै सांच, आयो तुम ठांही ।।नंदी०।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- हे भगवन् ! भव की ताप को नष्ट करने की सामर्थ्य आपके वचनों में ही है, चन्दन में नहीं है। अतः संसार ताप को नष्ट करने वाले अपने गुण को सत्य कीजिए। मैं उसी के लिए आपके पास आया हूँ।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै।
सब जीते अक्ष-समाज, तुम सम अरु को है।।नंदी०।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ- जिनप्रतिमाभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- हे जिनेन्द्रदेव ! आप ही श्रेष्ठ अक्षत हो; क्योंकि आप अपने स्वभाव से कभी क्षय को प्राप्त नहीं होते अर्थात् अक्षत (चावलों) के पुंज से आपकी पूजा करता हूँ। आपने सभी इन्द्रिय समूह को जीत लिया है। आपके समान और कोई नहीं है।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊं फूलनसौं।
लहुं शील-लच्छमी एव, छूटों सूलनसों।। नन्दी०।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आप काम को नष्ट करने वाले हों। पुष्पों से आपकी पूजा करता हूँ। शील रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर संसार के दुःखों से छूटना चाहता हूँ।

नेवज इंद्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिंग सोहै सार, अचरज है पूरा।।नन्दी०।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- इन्द्रियों को बलवान् बनाने वाला नैवेद्य है। हे भगवन् ! उसको आपने समाप्त कर दिया। कितने आश्चर्य की बात है कि वही नैवेद्य आपके चरणों में शोभा दे रहा है।

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन मांहि लसै।
टूटे करमन की राशि, ज्ञान-कणी दरसै ।।नन्दी०।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ- जिनप्रतिमाभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- हे भगवन् ! दीपक की ज्योति के प्रकाश के समान प्रकाश आपके शरीर से केवलज्ञानज्योति के द्वारा प्रकाशित होता है। दीपक से आपकी पूजा करने से कर्म नष्ट हो जाते हैं और केवलज्ञान की किरण प्रगट हो जाती है।

कृष्णागरु-धूप सुवास, दस-दिशिनारि वरै।
अति हरष-भाव परकाश, मानों नृत्य करे।।नन्दी०।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- कृष्ण, अगर आदि सुगंधित धूप की सुगंधि दशों दिशाओं को इस प्रकार सुगंधित कर रही है मानो दश दिशा रूपी स्त्रियों को वरण ही कर रही हो और अत्यन्त हर्षित होकर हर्ष को प्रकाशित करने के लिये नृत्य ही कर रही हो।

बहुविधि फल ले तिहुँ काल, आनन्द राचत हैं।
तुम शिव-फल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं।। नन्दी०।

ओं ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- बहुत प्रकार के फलों को लेकर हम तीनों समय आनन्द में मग्न होते हैं। हे दयालु प्रभु ! मोक्षफल दो। आपसे हम याचना करते हैं।

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।
"द्यानत" कीज्यो शिव-खेत भूमि समरपतु हों।।नन्दी०।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

अर्थ- यह अष्टद्रव्यमय अर्घ्य मैंने अपने कल्याण के लिए किया है, जिसे मैं आपके चरणों में अर्पित कर रहा हूँ, श्री द्यानतराय जी कहते हैं कि हे नाथ ! मुझे मोक्ष स्थान को दीजिये। मैं यह अर्घ्य समर्पित कर रहा हूँ।

जयमाला

कार्तिक फागुन साढ़के अंत आठ दिन मांहि।
नंदीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठांहि।।१।।

अर्थ- कार्तिक, फाल्गुन, और आषाढ़ माह के अंतिम आठ दिनों में देवगण, नंदीश्वरद्वीप पूजा करने जाते हैं। हम असमर्थ होने के कारण यहाँ (इसी स्थान पर) ही पूजा करते हैं।

एकसौ त्रेसठ कोड़ि जोजन महा।
लाख चौरासिया एक दिश में लहा।।
आठमों द्वीप नन्दीश्वरं भास्वरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ।।२।।

अर्थ- नंदीश्वरद्वीप की एक दिशा का विस्तार एक सौ त्रेसठ करोड़ चौरासी लाख महा योजन है। आगम में नंदीश्वरद्वीप आठवां द्वीप कहा गया है। हम सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सर्व प्रतिमाओं को नमस्कार करते हैं।

चार दिशि चार अंजनगिरि राजहीं।
सहस चौरासिया एक दिश छाजहीं।।
ढोल सम गोल ऊपर तले सुन्दरं।।भौन०।।३।।

अर्थ- नंदीश्वरद्वीप की चारों दिशाओं में एक–एक अंजनगिरि पर्वत है, एक दिशा का एक अंजनगिरि पर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा है। ढोल के समान गोल ऊपर और नीचे अन्यन्त सुन्दरता को धारण किये हुए है। सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सर्व प्रतिमाओं को हम नमस्कार करते हैं।

एक इक चार दिशि चार शुभ बावरी।
एक इक लाख जोजन अमल - जल भरी।।
चहुँ दिशा चार वन लाख जोजन वरं।।भौन०।।४।।

अर्थ- नंदीश्वरद्वीप की एक एक करके चारों दिशाओं में चार–चार सुन्दर बावड़ी हैं। ये एक लाख योजन निर्मल जल से भरी हैं। इन बावड़ी के चारों दिशाओं में एक–एक लाख योजन विस्तार वाले चार सुन्दर वन हैं। सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सर्व प्रतिमाओं को हम नमस्कार करते हैं।

सोल वापीन मधि सोल गिरि दधिमुखं।
सहस दश महाजोजन लखत ही सुखं।।
बावरी कौन दो माहि दो रतिकरं।।भौन०।।५।।

अर्थ- चारों दिशाओं की सोलह वापिकाओं (बावड़ियों) के मध्य में एक–एक दधिमुख पर्वत है इनकी ऊँचाई दस हजार महायोजन है इनको देखने से सुख की प्राप्ति होती है। बावड़ियों के दो बाह्य कोनों में दो–दो रतिकर नाम के पर्वत हैं। सुख को उत्पन्न करने वाले बावन जिनालयों में स्थित सर्व जिनबिम्बों को हम नमस्कार करते हैं।

शैल बत्तीस इक सहस जोजन कहे।
चार सोलै मिले सर्व बावन लहे।।
एक इक सीस पर एक जिनमंदिरं।।भौन०।।६।।

अर्थ- बत्तीस रतिकर पर्वत एक हजार योजन ऊँचे हैं चार अंजनगिरि पर्वत एवं सोलह दधिमुख पर्वतों सहित सभी बावन पर्वत हैं। एक–एक पर्वत के ऊपर एक एक जिनालय है, सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सब प्रतिमाओं को हम नमस्कार करते हैं।

बिंब आठ एक सौ रतनमयि सोहहीं।
देव देवी सरव नयन मन मोहहीं।।
पांचसै धनुष तन पद्म-आसन परं।।भौन०।।७।।

अर्थ- प्रत्येक जिनालय में एक सौ आठ रत्न से निर्मित पाँच सौ धनुष विस्तार वाली पद्मासन में विराजमान प्रतिमायें हैं इनके दर्शन से सब देव देवियों के नेत्र

और मन मोहित हो जाते हैं। सुख को करने वाली बावन जिनालयों में स्थित सभी प्रतिमाओं को हम नमस्कार करते हैं।

लाल नख मुख नयन स्याम अरु स्वेत हैं।
स्याम - रंग सिर केश छबि देत हैं ।।
वचन बोलत मनो हँसत कालुष हरं।।भौन०।।८।।

अर्थ- वे प्रतिमाए रत्नमयी हैं अर्थात् नाखून, मुँह लाल हैं, नेत्र काले और सफेद हैं, भौंह और सिर के बाल काले रंग के हैं जो अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो रहे हैं ये प्रतिमायें ऐसे लगती हैं जैसे हँसती हुई कुछ बोलती ही हों और पाप रूपी मैल को नष्ट करती हों। उन सुख को देने वाली बावन जिनालयों में स्थित सब प्रतिमाओं को हम नमस्कार करते हैं।

कोटि-शशि-भानु-दुति-तेज छिप जात है।
महा-वैराग परिणाम ठहरात है।।
वयन नहिं कहै लखि होत सम्यक्धरं।
भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं ।।९।।

अर्थ- करोड़ों सूर्यों का तेज भी इन प्रतिमाओं के तेज के आगे छिप जाता है अर्थात् मंद पड़ जाता है एवं इनके दर्शन करने से महान् वैराग्य के भाव स्थिरता को प्राप्त होते हैं। ये प्रतिमायें वचन नहीं बोलती फिर भी इनके दर्शन मात्र से सम्यग्दर्शन हो जाता है। सुख को देने वाली बावन जिनालयों में स्थित सब प्रतिमाओं को हम नमस्कार करते हैं।

नंदीश्वर-जिन-धाम, प्रतिमा-महिमा को कहै।
"द्यानत" लीनो नाम, यही भगति शिव-सुख करै।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे पूर्व-पश्चिमोत्तर-दक्षिणदिक्षु द्विपंचाशज्जिनालयस्थ-जिनप्रतिमाभ्योः पूर्णार्ध्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अर्थ- नंदीश्वरद्वीप के जिनमंदिरों एवं प्रतिमाओं की महिमा को कौन कह सकता है? द्यानतराय जी कहते हैं कि इनका नाम लेना मात्र ही भक्ति है। जो मोक्ष सुख को करने वाली हैं।

दशलक्षणधर्म-पूजा

कविवर द्यानतराय जी

उत्तम छिमा मारदव आरजव भाव हैं।
शौच सत्य संयम तप त्याग उपाव हैं।
आकिञ्चन ब्रह्मचर्य धरम दश सार हैं,
चहुँगति-दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्मसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्मसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्मसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (सन्निधिकरणम्)

अर्थ- उत्तमक्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव ये जीव के भाव हैं। उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग ये मोक्ष प्राप्ति के उपाय हैं। उत्तम आकिंचन, उत्तम ब्रह्मचर्य ये दस धर्म में सार हैं अर्थात् उत्कृष्ट हैं। ये दश धर्म चारों गतियों के दुःखों से निकालकर मोक्ष सुख को करने वाले हैं।

सोरठा

हेमाचल की धार, मुनि-चित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा ।।१।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव-शौचसत्यसंयम-तपस्त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- मुनिराज के मन के समान निर्मल, शीतल और सुगंधित हिमवन पर्वत की धारा के जल से भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा।।२।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय चन्दनं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- दशों दिशाओं को सुगंधित करने वाले चन्दन और केशर को घिसकर संसार की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

अमल अखंडित सार, तंदुल चन्द्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दस लच्छन पूजौं सदा।।३।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अक्षतं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- मलरहित, अखण्ड, (जो टूटे हुए न हो) उत्कृष्ट चन्द्रमा के समान श्वेत उज्ज्वल चावलों से भव कें ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की हमेशा पूजा करता हूँ।

फूल अनेक प्रकार, महकें ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दस - लच्छन पूजौं सदा।। ४।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अनेक प्रकार के पुष्पों से जिनकी सुगंधी ऊर्ध्वलोक तक फैल रही है। भव की ताप को नष्ट करने लिए 'दशलक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ।

नेवज विविध प्रकार, उत्तम षट्-रस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।५।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अनेक प्रकार के उत्तम छहों रसों से युक्त नैवेद्य से भव की ताप को नष्ट करने के लिए 'दशलक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ।

वाति कपूर सुधार, दीपक-ज्योति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।६।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- कपूर की बत्ती बनाकर सुन्दर लगने वाले दीपक की ज्योति द्वारा भव की ताप को नष्ट करने के लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगंधता।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा ।।७।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अगर आदि से धूप को तैयार कर जिसकी सुगंधी सर्व दिशाओं में फैल रही है, उससे भव के ताप को नष्ट करने लिए 'दशलक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ।

फल की .जाति अपार, घ्राण-नयन-मन-मोहने।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।८।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- नासिका नेत्रों और मन को मोहित करने वाले अर्थात् अच्छे लगने वाले अनेक प्रकार के फलों से भव के ताप को नष्ट करने लिए दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों।
भव-आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।६।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल, चन्दन आदि आठों द्रव्यों को सजाकर मैं (द्यानतराय) अत्यन्त उत्साह पूर्वक भव के ताप को नष्ट करने लिए 'दशलक्षण' धर्म की पूजा करता हूँ।

अंगपूजा

उत्तमक्षमा

सोरठा, चौपाई, हरिगीतिका

पीड़ैं दुष्ट अनेक, बाँध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा।।
उत्तम क्षमा गहो रे भाई, इह भव जस, पर भव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेंद न आनो,गुनको औगुन कहै अयानो।।
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करैं।
घरतैं निकारैं तन विदारैं, बैर जो न तहाँ धरैं।।
तै करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अति क्रोध-अगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा।।

ओं ह्रीं उत्तम-क्षमा-धर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

अर्थ- बहुत दुर्जन लोग दुःख देवें, बाँधकर अनेक प्रकार से मारपीट करें, यातनायें दें, हे पवित्र आत्मन् ! वहाँ क्रोध को न करके विवेक पूर्वक उत्तम क्षमा को धारण कीजिए। हे भाई ! उत्तमक्षमा को ग्रहण करो, यह क्षमा इस भव में यश और अगले भव में सुख देने वाली है, कोई अज्ञानी गुणों को अवगुण रूप भी कहता हैं, गालियां (अपशब्द) भी देता है, तो भी मन में खेद (दुःख) नहीं करना चाहिए। यदि अज्ञानी अपशब्द कहता हुआ हमारी कोई वस्तु छीन लेवे, बांध कर अनेक प्रकार से मारे, घर से निकाल देवे, शरीर का छेदन करे (विदारण करे) तब भी वहां उससे बैर भाव धारण नहीं करना चाहिए। चिन्तन करना चाहिए कि पूर्व भवों में मैंने जो पाप कर्मों का संचय किया या जो पाप कर्म किये हे जीव ! अब उन्हें सहन करो (भोगो)। अत्यन्त भीषण क्रोध रूपी अग्नि को समता रूपी अत्यन्त शीतल जल से बुझाओ, अर्थात् क्रोध के समय समता धारण करो।

उत्तम मार्दव

मान महाविषरूप, करहि नीच गति-जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा।।
उत्तम मार्दव-गुन मन माना, मान करन को कौन ठिकाना।
वस्यो निगोद मांहितैं आया, दमरी रूकन भाग बिकाया।।
रूकन बिकाया भाग-वशतैं, देव इकइंद्री भया।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीड़ों में गया।।
जीतव्य जीवन धन गुमान, कहा करै जल-बुदबुदा।
करि विनय बहु-गुन बड़े जन की, ज्ञान का पावै उदा।।

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२।।

अर्थ- मान महाविष के समान है। यह मान संसार में नीच नरकगति को करने वाला है। कोमलता (मृदुता) रूपी अमृत को ग्रहण करने वाले जीव सुख प्राप्त करते हैं। उत्तम मार्दवगुण मन को अच्छा लगने वाला है। मान करने का क्या आधार है, क्योंकि अनंतकाल से निगोद में रहता था वहाँ से आकर स्थावर में वनस्पतिकाय का जीव हुआ, कभी दमरी (सबसे छोटी मुद्रा) के भाव बिक गया। कभी रूकन अर्थात् बिना मूल्य के ही बिक गया। भाग्योदय से यह जीव देव हुआ और देव पर्याय से आकर एकेन्द्रिय हो गया, उत्तम पर्याय से चांडाल हुआ, राजा

भी हुआ और मरकर कीड़ों में जाकर उत्पन्न हो गया। स्वस्थ, शरीर रूप जवानी और धन का मान नहीं करना चाहिए। ये सब जल के बुलबुले के समान क्षणभर में नष्ट होने वाले हैं। जिनमें बहुत गुण हैं अर्थात् गुणवान हैं, जिनकी बड़ी आयु है एवं माता–पिता आदि की विनय करना चाहिए जिससे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

उत्तम आर्जव

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा।।
उत्तम आर्जव-रीति बखानी, रंचक दगा बहुत दुखदानी।
मन में हो सो वचन उचरिये,वचन होय सो तन सौं करिये।।
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट-प्रीति अंगारसी।।
नहिं लहै लछमी अधिक, छल करि, कर्म-बंध-विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता।।

ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३।।

अर्थ- छल, कपट नहीं करना चाहिए। धन–सम्पत्ति चोरों के यहाँ नहीं होती, वे हमेशा निर्धन ही होते हैं। उनके कभी नगर नही बसते हैं, जिनका स्वभाव सरल होता है उनके यहाँ बहुत धन सम्पदा होती है। उत्तम आर्जव सरल स्वभाव को कहते हैं। रंचमात्र भी दगा दुख को देने वाला है, जो विचार मन में हो वही वचन में रहना और जो वचन से कहा जाय वही काय से किया जाना चाहिए। इस प्रकार से तीनों योगों को सरल करना चाहिए जैसे निर्मल स्वच्छ दर्पण में जैसा अपना मुँह करोगे वैसा ही दिखेगा। छल कपट की प्रीति अंगारों से प्रीति करने के समान है। अधिक छल करके कोई भी धन सम्पदा प्राप्त नहीं कर सकता बल्कि अधिक कर्म बंध करता है। उस कर्मबंध का ध्यान नहीं करता और छल करता रहता है जैसे–बिल्ली आंख बंद करके दूध पीते समय भय का त्याग करती है और पीछे मार पड़ेगी इसका ध्यान नहीं रखती, उसी प्रकार छल करने वाला कर्मबंध का ध्यान न करते हुए छल करता रहता है।

उत्तम शौच

धरि हिरंदै संतोष, करहु तपस्या देहसों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में ।।
उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा-पास महा दुखदानी, सुख पावै संतोषी प्रानी।।
प्रानी सदा शुचि शील जप, तप, ज्ञान ध्यान प्रभावतैं।
नित गंग जमुन समुद्र न्हाये, अशुचि-दोष सुभावतैं।
ऊपर अमल मल भर्‌यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहै।
बहु देह मैली सुगुन-थैली, शौच-गुन साधू लहै।।

ओं ह्रीं उत्तम शौचधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४।।

अर्थ- हृदय में संतोष धारण कर शरीर से तपस्या करना चाहिए। दोष रहित शौच धर्म संसार में सबसे बड़ा धर्म है। उत्तम शौचधर्म सर्व जगत् में विख्यात है। यह लोभ कषाय के अभाव में होता है। लोभ सर्व पापों को (उत्पन्न) करने वाला है। आशा—इच्छारूपी पाप भयानक दुःखों को देने वाला है अतः संतोष को धारण करने वाले जीव सुख को प्राप्त करते हैं। इस जीव की शुचिता (पवित्रता) शील, जप, तप, ज्ञान, ध्यान के प्रभाव से होती है। हमेशा गंगा, यमुना आदि नदियों में एवं समुद्र में भी स्नान करने से शुचिता अर्थात् पवित्रता नहीं होती, क्योंकि इस शरीर का स्वभाव ही अपवित्र है। यंह ऊपर तो अत्यन्त निर्मल दिखता है परन्तु इसके अन्दर मल भरा हुआ है। ऐसे शरीर को किस प्रकार पवित्र कहा जा सकता है। अपवित्र शरीर सुगुणों का भंडार है। इसकी पवित्रता साधु महाव्रत धारण कर प्राप्त करते हैं।

उत्तम सत्य

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी।।
उत्तम सत्य-वरत पालीजे, पर-विश्वासघात नहिं कीजे।
सांचे झूठे मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो।।

पेखो तिहायत पुरुष सांचे को दरब सब दीजिए।
मुनिराज-श्रावक की प्रतिष्ठा साँच गुण लख लीजिये।।
ऊँचे सिंहासन बैठि वसु नृप, धरम का भूपति भया।
बच झूठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया।।

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।५।।

अर्थ- कठोर वचन, पर निंदा और झूठ वचनों का त्याग करना सत्यधर्म है। सत्य रूपी जवाहर रत्न का उपयोग करना चाहिए क्योंकि सत्यवादी प्राणी संसार में सुखी रहते हैं। उत्तम सत्यधर्म पालन करना चाहिए। दूसरों का विश्वासधात नहीं करना चाहिए। सत्यवादी और झूठे मनुष्यों को देखो। झूठ बोलने वाले अपने पुत्र पर भी विश्वास नहीं करते अर्थात् झूठे व्यक्तियों पर कोई विश्वास नहीं करता। सत्यवादी का सभी विश्वास करते हैं और अमानत स्वरूप धन भी रखते हैं। मुनिराजों की और श्रावकों की प्रतिष्ठा (इज्जत) सत्य गुण या सत्यधर्म से ही है। राजा बसु न्याय के ऊँचे सिंहासन पर बैठकर भी झूठ बोलने के कारण नरक में गया और सत्य को बोलने वाला नारद स्वर्ग गया।

उत्तम संयम

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो।
संयम-रतन सँभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं।।
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव-भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरक पशुगति में नाहीं, आलस-हरन-करन सुख ठांही।।
ठांही पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो।।
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जम-मुख बीच में।।

ओं ह्रीं संयमधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

अर्थ- छह काय के जीवों की रक्षा करना और पांच इन्द्रियों को वश में करना उत्तम संयम धर्म है। संयमरूपी रत्न को संभाल कर रखना चाहिए क्योंकि विषय वासना रूपी बहुत से चोर घूम रहे हैं। उत्तम संयमधर्म को हे मन ! धारण करो,

इसे धारण करने से अनेक भवों के पाप नष्ट हो जाते हैं। यह संयम स्वर्ग, नरक और पशु (तिर्यंच) गति में नहीं है। यह संयम आलस का हरण करने वाला और सुख को करने वाला है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और वनस्पति ये स्थावर और त्रस; इन छह काय के जीवों पर दयाभाव धारण कर स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कान और मन को वश में करना संयमधर्म है। इस संयम के बिना तीर्थंकर भी मोक्ष को प्राप्त नहीं हुए, तो फिर हम सामान्य मनुष्यों की क्या बात है। हमें इस संयम को एक क्षण भी नहीं भूलना चाहिए। हम (जम) अर्थात् मृत्यु के मुँह में आ गये हैं।

उत्तम तप

तप चाहें सुरराय, करम-शिखरकौं वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम।।
उत्तम तप सब मांहि बखाना, करम-शैल को वज्र समाना।
वस्यो अनादि-निगोद-मँझारा, भू-विकलत्रय-पशु-तन धारा।।
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषय-पयोगता।।
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नर-भव अनूपम कनक घर पंर, मणिमयी, कलशा धरैं।।

ओं ह्रीं उत्तमंतपोधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

अर्थ- उत्तम तप को सौधर्मेन्द्र भी चाहते हैं। यह तप कर्म रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए वज्र के समान है। यह बारह प्रकार का है। इन तपों को अपनी शक्ति के अनुसार सबको धारण करना चाहिए। उत्तम तपधर्म का सब ग्रन्थों में वर्णन मिलता है। कर्मरूपी पर्वत को नष्ट करने के लिए यह वज्र के समान है। अनादिकाल से यह जीव निगोद में रह रहा है। वहाँ से निकलकर पृथ्वी आदि स्थावर हुआ। स्थावर के बाद त्रस पर्याय में विकलेन्द्रिय हुआ और फिर पशुओं (तिर्यंच) के शरीर को धारण किया। अब दुर्लभ यह मनुष्य पर्याय प्राप्त की है, उसमें भी उच्चकुल, पूर्णआयु, निरोग शरीर, जिनवाणी का संयोग, तत्त्वज्ञान, आत्मचिन्तन में उपयोग अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त किया है, जो व्यक्ति अत्यन्त महा दुर्लभ विषय और कषाय का त्याग कर तप को आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं।

वे मनुष्य भवरूपी स्वर्ण गृह पर रत्नमयी कलश चढ़ाते हैं अर्थात् नर जन्म धन्य करते हैं।

उत्तम त्याग

दान चार परकार, चार संघ को दीजिए।
धन बिजुरी उनहार, नर-भव लाहो लीजिए।।
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता दोनों दान संभारै।।
दोनों संभारे कूप-जलसम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया बह गया।।
धनि साध शास्त्र अभय-दिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहै नाहीं बोध को।।

ओं ह्रीं उत्तम त्यागधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।८।।

अर्थ- दान चार प्रकार के होते हैं। ये चारों दान चार संघ अर्थात् मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका को देना चाहिए। धन, सम्पत्ति, वैभव बिजली की चमक की तरह हैं अतः मनुष्य भव का लाभ लेना चाहिए। उत्तम त्याग संसार में श्रेष्ठ है। औषधिदान, शास्त्रदान, अभयदान, और आहारदान के भेद से दान चार प्रकार का है। ये व्यवहार त्याग रूप है। निश्चय त्याग राग–द्वेष के त्याग को कहते हैं। ज्ञानीजन दोनों दान (निश्चय, और व्यवहार) करते हैं। कुयें का पानी यदि खर्च न हो तो खराब हो जाता है और यदि खर्च होता रहे तो खराब नहीं होता। उसी प्रकार घर में धन सम्पत्ति वैभव हो तो दोनों हाथों से दान करना चाहिए, यही श्रेष्ठ है नहीं तो खाने में चला जायेगा या नष्ट हो जायेगा। सदा रहने वाला नहीं है। धन्य हैं वे साधक जो शास्त्रदान, अभयदान के देने वाले हैं और राग– द्वेष का त्याग करने वाले हैं। चार प्रकार के दान के बिना श्रावक और राग–द्वेष के त्याग के बिना साधु दोनों ही सम्यग्ज्ञान को प्राप्त नहीं होते हैं।

उत्तम आकिंचन्य

परिग्रह चौबिस भेद त्याग करैं मुनिराज जी।
तिसना भाव उछेद, घटती जान घटाइए।।

उत्तम आकिंचन गुण जानो, परिग्रह-चिंता दुख ही मानो।
फाँस तनक सी तन में सालै, चाह लँगौटी की दुख भालै।।
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरै।
धनि नगन पर तन-नगन ठाढ़े, सुर-असुर पायनि परैं।।
घर माहिं तिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगार सौं।।

ओं ह्रीं उत्तम-आकिञ्चन्यधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।६।।

अर्थ- परिग्रह के चौबीस भेद हैं उनका त्याग (व्यवहार आकिंचन) मुनिराज करते हैं और तृष्णा भाव को नष्ट करते हैं (निश्चय आकिंचन)। धीरे—धीरे दोनों प्रकार के परिग्रहों को श्रावकों को भी घटाना चाहिए। उत्तम आकिंचन श्रेष्ठ गुण है, परिग्रह चिन्ता दुःख के ही पर्याय हैं। जैसे छोटी सी फॉस भी पूरे शरीर को दुःखी कर देती है उसी प्रकार लँगोटी का आवरण या लँगोटी की चाह दुःख को देने वाली होती है। यह मनुष्य महाव्रत अर्थात् निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि की मुद्रा को धारण किये बिना समता और सुख को प्राप्त नहीं कर सकते। धन्य हैं वे मुनिराज जो अन्तर से नग्न हैं। अंतरंगपरिग्रह से रहित और शरीर से भी नग्न (बाह्यपरिग्रह से रहित) खड़े रहते हैं, उनके चरणों की पूजा सुर और असुर सभी करते हैं। घर में रहकर श्रावकों को तृष्णा को घटाकर संसार से अरुचि का भाव धारण करना चाहिए। घर में बहुत धन बुरा भी है और भला भी है। यदि धन में लीनता हो तो बुरा है और यदि वह धन परोपकार में लगाया जाय तो भला है।

उत्तम ब्रह्मचर्य

शील-बाढ़ नौ राख, ब्रह्म-भाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर-भव सदा।।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानौ।
सहे बान-वरषा बहु सूरे, टिकै न नैन-बान लखि कूरे।।
कूरे तिया के अशुचि तन में, काम-रोगी रति करैं।
बहु मृतक सड़हिं मसान माहीं, काग ज्यों चोंचें भरैं।।
संसार में विष-बेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
"द्यानत" धरम दस पैंड़ि चढ़िकै, शिवमहल में पग धरा।।

ओं ह्रीं ब्रह्मचर्यधर्मांगाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१०।।

अर्थ- शील को नौ बाड़ें लगाकर सुरक्षित रखना चाहिए (व्यवहार ब्रह्मचर्य) और अन्तर में ब्रह्म अर्थात् आत्मचिन्तन करना चाहिए (निश्चय ब्रह्मचर्य); इन दोनों की प्राप्ति के अभिलाषी बनकर मनुष्य जन्म सफल करना चाहिए। उत्तम ब्रह्मचर्य मन में धारण करं माता, बहिन और पुत्री की पहिचान करना चाहिए। जैसे कोई योद्धा युद्धभूमि में शूरवीरों द्वारा की जाने वाली वाणों की वर्षा को सहन कर लेता है परन्तु स्त्रियों के क्रूर नेत्ररूपी वाण को सहन नहीं कर पाता; ऐसा काम रोग से पीड़ित स्त्री के अपवित्र शरीर में रति (प्रेम) करता है। जिस प्रकार श्मशान में मरे हुए, सड़े हुए शरीर में कौआ प्रेम करके चौंचों से मृत शरीर को खाता है। संसार में स्त्री विष बेल के समान है। इसीलिए सभी मुनिराजों ने स्त्रियों का त्याग कर दिया। श्री द्यानतराय जी कहते हैं कि ये दस धर्म रूपी सीढ़ियां चढ़कर मनुष्य मोक्ष रूपी महल में पग रखता है।

समुच्चय जयमाला

दोहा

दस लच्छन बंदों सदा, मन वांछित फलदाय।
कहों आरती भारती, हम पर होहु सहाय।।

अर्थ- दशलक्षण धर्म कीं सदा वंदना करता हूँ। इससे मन के अनुकूल फल की प्राप्ति होती हैं। दशलक्षण धर्म की आगमानुकूल आरती कहता हूँ। हे भगवन् ! मेरी सहायता कीजिए।

वेसरी छन्द

उत्तम छिमा जहाँ मन होइ, अंतर-बाहिर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नाना भेदज्ञान सब भासै।।

अर्थ- उत्तमक्षमा जिनके मन में होती है उनके मन में राग–द्वेष आदि विकारभाव आत्मा के शत्रु और बाह्य में भी कोई शत्रु नहीं रहता। उत्तम मार्दवधर्म, विनयगुण का प्रकाशन करके अनेक प्रकार से ज्ञान के आठ भेदों का आभास करवाता है।

उत्तम आर्जव कपट मिटावे, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे।
उत्तम शौच लोभ-परिहारी, संतोषी गुण-रतन भंडारी।

अर्थ- उत्तम आर्जवधर्म छलकपट को नाश करता है एवं खोटी गतियों से छुड़ाकर श्रेष्ठ गतियों में उत्पन्न करवाता है। उत्तम शौच धर्म लोभ कषाय का नाश करता है, जिनके संतोष है वे गुणों के भंडार होते हैं।

उत्तम सत्य-वचन मुख बोलै, सो प्रानी संसार न डोलै।।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नर-भव सफल करै ले साता।।

अर्थ- जो उत्तम सत्य वचन मुख से बोलते हैं वे जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करते। उत्तम संयम धर्म को जो ज्ञानीजन धारण करते हैं, वे साता को प्राप्त करके मनुष्यभव को सफल करते हैं।

उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करे जो कोई, भोगभूमि-सुर शिवसुख होई।।

अर्थ- इच्छा रहित उत्तम तपधर्म का पालन करने से मनुष्यों के कर्मरूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है। जो व्यक्ति उत्तम त्याग करते हैं वे भोगभूमि और स्वर्ग के सुख भोग कर मोक्षसुख प्राप्त करते हैं।

उत्तम आकिञ्चन व्रत धारे, परम समाधि दशा विस्तारे।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नर-सुर सहित मुकति-फल पावै।।

अर्थ- जो उत्तम आकिंचन धर्म को धारण करते हैं वे परमसमाधि को प्राप्त होते हैं। उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म को जो मन में धारण करते हैं, वे मनुष्य देव गति को प्राप्त कर मोक्षफल प्राप्त करते हैं।

दोहा

करै करमकी निरजरा, भव पींजरा विनाशि।
अजर अमर पद को लहै, "द्यानत" सुखकी राशि।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तप-त्याग-आकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्य-दश-लक्षण-धर्माय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

अर्थ- दशलक्षणधर्म द्वारा भव्य जीव कर्म की निर्जरा कर भवरूपी पिंजरा को नष्ट कर अजर, अमर पद को प्राप्त कर सुख क़ी राशि अर्थात् अनंतसुख की प्राप्ति करते हैं, ऐसा द्यानतराय जी कहते हैं।

रत्नत्रय-पूजा

चहुँगति-फनि-विष-हरन-मणि दुख-पावक-जल-धार।
शिव-सुख-सुधा-सरोवरी, सम्यक्-रत्नत्रयी निहार।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- चार गति रूपी सर्प के विष को दूर करने के लिए मणि के समान, दुःख रूपी अग्नि के शमन को जल धारा के समान एवं मोक्ष सुख रूपी तालाब के समान सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की स्थापना करता हूँ।

अष्टक (सोरठा छन्द)

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्न-त्रय भजूँ ।।१।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- क्षीरसागर के जल के समान (उज्ज्वल) स्वच्छ एवं अत्यन्त सुन्दर जल से जन्म (जरा और मृत्यु) के नाश करने के लिए सम्यक्रत्नत्रय धर्म की पूजा करता हूँ।

चंदन-केसर गारि, परिमल-महा-सुरंग-मय।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ।।२।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- चंदन के साथ केशर को घिसकर अच्छे रंग वाले एंव सुगंधित चंदन से जन्मादिक रोगों के नाश करने के लिए सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

तंदुल अमल चितार, वासमती-सुखदास के।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्न-त्रय भजूँ।।३।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्राय अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- अच्छी तरह शोधकर सुखदास के स्वच्छ वासमती चावलों से जन्मादिक रोगों के नष्ट करने के लिए सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

महकैं फूल अपार, अलि गुंजैं ज्यों थुति करैं।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्न-त्रय भजूँ।।४।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- अत्यन्त सुगंध को छोड़ने वाले अनेक फूल जिन पर भौंरे गुंजार कर रहे हैं, ऐसे लगते हैं जैसे स्तुति ही कर रहे हो। उन फूलों से जन्मादिक रोगों के नाश करने को सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्न-त्रय भजूँ।।५।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- बहुत प्रकार के अत्यन्त बड़े लड्डू जो घृत, मीठा और सुगन्धी से सहित हैं; इसी नैवेद्य से जन्मादिक रोगों के नाश करने को सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्न-त्रय भजूँ।।६।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- रत्नों के दीपक की ज्योति संसार में प्रकाश करने वाली है; ऐसे दीपक से जन्मादिक रोगों के नाश करने को सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूर की।
जनम-रोग निरवार, सम्यक् रत्न-त्रय भजूँ।।७।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- चंदन, अगर और कपूर से निर्मित धूप की सुगंधि को फैलाकर जन्मादिक रोगों के नष्ट करने को सम्यक् रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

फल शोभा अधिकार, लोंग छुहारे जायफल।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्न-त्रय भजूँ।।८।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्ताय फलं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- जो अत्यन्त सुन्दर लग रहे हैं ऐसे लोंग, छुहारे, जायफल आदि फलों से जन्मादिक रोगों को नष्ट करने के लिए सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

आठ दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्न-त्रय भजूँ।।९।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- उत्कृष्ट से उत्कृष्ट आठ द्रव्यों का निर्धारण कर जन्मादिक रोगों के नष्ट करने के लिए सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

सम्यक्दरश ज्ञान, व्रत शिव-मग-तीनों मयी।
जनम-रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ।।१०।।

ओं ह्रीं सम्यक्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्थ- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र; इन तीनों रूप रत्नत्रय मोक्षमार्ग है। जन्मादिक रोगों को नष्ट करने के लिए उसी सम्यक्रत्नत्रय की पूजा करता हूँ।

सम्यग्दर्शन-पूजा

दोहा

सिद्ध अष्ट-गुनमय प्रगट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित जिहँ बिन अफल, सम्यक्दर्श प्रधान।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- सिद्ध भगवान् के आठ गुणों को प्रकट करने के लिए सम्यक्दर्शन ही मुख्य है। जीवों को मुक्ति दिलाने के लिए यह सीढ़ी के समान है। सम्यक्दर्शन सब में प्रधान है, क्योंकि इसके बिना ज्ञान और चारित्र फल नहीं देते।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।१।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- सुगंधित जल से, प्यास को मिटाने के लिए एवं आत्म मल धोने के लिए उत्कृष्ट सम्यक्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।२।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल के साथ केशर घिसकर ताप को नष्ट करने के लिए एवं शीतलता प्राप्त करने के लिए चन्दन के द्वारा उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।३।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- उपमा से रहित, देखने में अच्छे लगने वाले अक्षतों (चावलों) से दरिद्रता को नष्ट करने के लिए एवं सुखों से परिपूर्ण होने के लिए उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।४।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- सुगंधित फूलों से उदारता पूर्वक दुःख को नष्ट करने एवं मन की शुचिता अर्थात् मन को पवित्र करने के लिए उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।५।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अनेक प्रकार के नैवेद्यों (पकवानों) से भूख को मिटाने के लिए एवं स्थिरता प्राप्त करने के लिए उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

दीप-ज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।६।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- दीपक की ज्योति से अंधकार को नष्ट करने के लिए एवं घट पटादि पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा।।७।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- नासिका को अच्छी लगने वाली धूप से रोगों को नष्ट करने के लिए, विघ्नों को नष्ट करने के लिए एवं अज्ञान को दूर करने के लिए उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।८।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- श्रीफल (नारियल) आदि विस्तृत फलों से निश्चय ही स्वर्ग और मोक्ष फल को प्राप्त करने के लिए उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

जल गंधाक्षत फूल चरु, दीप धूप फल लेय।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा ।।६।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल लेकर अर्थात् आठों द्रव्य मिलाकर अर्घ्य से उत्कृष्ट सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की पूजा करता हूँ।

जयमाला

दोहा

आप आप निहचै लखै, तत्त्व-प्रीति व्योहार ।
रहित दोष पच्चीस हैं, सहित अष्ट गुन सार।।१।।

सम्यक्दरशन-रतन गहीजै, जिन-वच में संदेह न कीजै।
इह भव विभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी।।
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
पर-दोष ढकिये धरम डिगते को सुथिर कर हरखिये।।
चहुं संघ को वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना।
गुन आठ सों गुन आठ लहिकै, इहाँ फेर न आवना।।

ओं ह्रीं अष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहितसम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं नि० स्वाहा।

अपने आप पर श्रद्धा करना निश्चय सम्यग्दर्शन है और तत्त्वों पर श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शन को ग्रहण कीजिए। जिनेन्द्र भगवान् की वाणी में शंका नहीं कीजिए। इस भव में वैभव की चाह, दुःख को देने वाली है। अगले भव के भोगों की चाह नहीं करना चाहिए। मुनिराज के शरीर की अशुचिता को न देखकर उनके धर्म को देखिये। दूसरों के दोषों को छुपाना चाहिए और उसे धर्म में स्थिर कर हर्षित होना चाहिए। चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) से वात्सल्यभाव रखिये और धर्म की प्रभावना कीजिए। इन आठ गुणों को धारण करने से फिर यहाँ (संसार में) पुनः आना नहीं होता।

सम्यग्ज्ञान-पूजा

दोहा

पंच भेद जाके प्रकट, ज्ञेय-प्रकाशन-भान।
मोह-तपन-हर चंद्रमा, सोई सम्यग्ज्ञान ।।१।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अर्थ- जिसके पाँच भेद हैं, जो ज्ञेय पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए सूर्य के समान है और मोह के ताप को नष्ट करने के लिए चन्द्रमा के समान है वह सम्यग्ज्ञान है।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।१।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अत्यन्त सुगंधित जल से, प्यास को मिटाने के लिए एवं आत्म मल धोने के लिए दोष रहित आठ भेद सहित सम्यग्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।२।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल के साथ केशर घिसकर ताप को नष्ट करने के लिए एवं शीतलता प्राप्त करने के लिए चन्दन से दोष रहित आठ भेद सहित सम्यग्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।३।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- उपमा से रहित, देखने में अच्छे लगने वाले अक्षतों (चावलों) से दरिद्रता को नष्ट करने के लिए एवं सुखों से परिपूर्ण होने के लिए दोष रहित आठ भेद सहित सम्यग्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।४।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- सुगंधित फूलों से, उदारता पूर्वक दुःख को नष्ट करने एवं मन की शुचिता अर्थात् मन को पवित्र करने के लिए दोष रहित आठ भेद सहित सम्यक्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।५।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अनेक प्रकार के नैवेद्यों (पकवानों) से भूख को मिटाने एवं स्थिरता को प्राप्त करने के लिए दोष रहित आठ भेद सहित सम्यक्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

दीप-जोति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।६।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- दीपक की ज्योति से, अंधकार को नष्ट करने के लिए एवं घट पटादि पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए दोष रहित आठ भेद सहित सम्यक्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।७।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- नासिका को अच्छी लगने वाली धूप से रोगों को नष्ट करने के लिए, विघ्नों को नष्ट करने के लिए एवं अज्ञान को दूर करने के लिए दोष रहित आठ अंग युक्त सम्यग्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।८।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- श्रीफल (नारियल) आदि विस्तृत फलों से निश्चय ही स्वर्ग और मोक्ष फल को प्राप्त करने के लिए दोष रहित आठ अंग युक्त सम्यक्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा ।।९।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत, सुन्दर दीप, धूप, फल, पुष्प और नैवेद्य से दोष रहित आठ अंग युक्त सम्यक्ज्ञान की हमेशा पूजा करता हूँ।

जयमाला

दोहा

आप आप जानै नियत, ग्रन्थ पठन व्यौहार।
संशय विभ्रम मोह बिन, अष्ट भेद गुनकार।।

सम्यक् ज्ञान-रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अच्छर शुद्ध अर्थ पहिचानो, अच्छर अरथ उभय सँग जानो।।
जानो सुकाल-पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तप रीति गहि बहु मौन देकै, विनय गुण चित लाइये।।
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पण देखना।
इस ज्ञान ही सों भरत सीझा, और सब पटपेखना।।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अपने आपको जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है और ग्रन्थों को पढ़ना व्यवहार सम्यग्ज्ञान हैं। संशय, विभ्रम, मोह के बिना ही सम्यग्ज्ञान के अंग गुणों की वृद्धि करने वाले होते हैं।

सम्यग्ज्ञानरूपी रत्न मन को अच्छा लगता है। पदार्थ ज्ञान हेतु आगम को तीसरा नेत्र कहा गया है। शुद्ध अक्षर और शुद्ध अर्थ को पहचानिये और अक्षर तथा अर्थ को एक साथ जानना चाहिए। जैनागम के स्वाध्याय का समय जानना आवश्यक है। अपने गुरु का नाम कभी न छिपावें। पूर्ण मौन पूर्वक स्वाध्याय को तप के समान ग्रहण करें। मन में जिनागम के प्रति विनय गुण धारण करें। ज्ञान के उक्त आठ भेद कर्म के विनाशक हैं। ज्ञान दर्पण के समान (सभी पदार्थों को) प्रकाशित करने वाला होता है। इसी ज्ञान के द्वारा भरत की मुक्ति हुई। सम्यग्ज्ञान से भिन्न सभी ज्ञान जुगनू की तरह हैं।

सम्यक्-चारित्र पूजा

दोहा

विषय-रोग औषध महा, दव-कषाय-जल-धार।
तीर्थंकर जाको धरै सम्यक्चारित सार।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्(सन्नि०)

अर्थ- जो विषय वासना रूपी रोगों के लिए औषधि के समान हैं और कषायरूपी दावानल को शान्त करने के लिए जल धारा के समान हैं जिसे तीर्थंकर भी धारण करते हैं, वही सम्यक्चारित्र सारभूत है।

सोरठा

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।१।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अत्यन्त सुगंधित जल से, प्यास को मिटाने के लिए एवं आत्म मल धोने के लिए उत्कृष्ट तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।२।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल के साथ केशर घिसकर ताप को नष्ट करने के लिए एवं शीतलता प्राप्त करने के लिए चन्दन से सारभूत तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।३।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- उपमा से रहित, देखने में अच्छे लगने वाले अक्षतों (चावलों) से दरिद्रता को नष्ट करने के लिए एवं सुखों से परिपूर्ण होने के लिए सारभूत तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।४।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- सुगंधित फूलों से, उदारता पूर्वक दुःख को नष्ट करने एवं मन की शुचिता अर्थात् मन को पवित्र करने के लिए सारभूत तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

नेवज विविध प्रकार, छुधा हरै थिरता करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।५।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- अनेक प्रकार के नैवेद्यों (पकवानों) से भूख को मिटाने के लिए एवं स्थिरता को प्राप्त करने के लिए तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

दीप-जोति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।६।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- दीपक की ज्योति से, अंधकार को नष्ट करने के लिए एवं घट पटादि पदार्थों को प्रकाशित करने के लिए सारभूत तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

धूप घ्रान-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।७।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- नासिका को अच्छी लगने वाली धूप से रोगों को नष्ट करने के लिए, विघ्नों को नष्ट करने के लिए एवं अज्ञान को दूर करने के लिए सारभूत तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर-शिव-फल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजौं सदा ।।८।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

भावार्थ- श्रीफल (नारियल) आदि विस्तृत फलों से निश्चय ही स्वर्ग और मोक्ष फल को प्राप्त करने के लिए सारभूत तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

जल गंधाक्षत फूल चरु, दीप धूप फल लेय।
सम्यक्चारित सार, तेरहविध पूजों सदा ।।९।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्थ- जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल लेकर अर्घ्य से सारभूत तेरह प्रकार सम्यक्चारित्र की पूजा करता हूँ।

जयमाला

दोहा

आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्यौहार।
स्व-पर-दया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार।।

चौपाई मिश्रित गीताछन्द

सम्यक्चारित रतन सँभालो, पाँच पाप तजि के व्रत पालो।
पंच समिति त्रय गुपति गहीजै, नरभव सफल करहु तन छीजै।।
छीजै सदा तनको जतन यह, एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नरक-निगोद मांही, विष-कषायनि टालिये।।
शुभ करम जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है।।२।।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

अर्थ- अपने आप में स्थिर रहना निश्चयनय से सम्यक्चारित्र है और तप, संयम आदि का पालन करना व्यवहारनय से सम्यक्चारित्र है। तेरह प्रकार का चारित्र अपनी आत्मा पर एवं दूसरे जीवों पर दया करने वाला है और दुखों को दूर करने वाला है।

सम्यक्चारित्र रूपी रत्न की सम्हाल करना चाहिए। पाँच पापों का त्याग कर पाँच व्रत पालन करना चाहिए। पाँच समितियाँ, तीन गुप्तियां ग्रहण कर मनुष्य भव को सफल बनाना चाहिए। इस शरीर को धारण किया है अतः हमें इस शरीर के द्वारा एक संयम (देशसंयम या सकलसंयम) अवश्य पालन करना चाहिए। नरक और निगोद में बहुत समय तक रुला हूँ अब विषय और कषायों का नाश कर शुभकार्य के संयोग से अच्छा स्थान प्राप्त हुआ है। हमें शीघ्र ही भव सागर से पार हो जाना चाहिए नहीं तो सूर्य अस्त हो जावेगा (आयु समाप्त हो जावेगी) श्री द्यानतराय जी कहते हैं कि धर्म की नौका में बैठना चाहिए जिससे मोक्ष रूपी नगर में कुशलता पूर्वक पहुँच सकते हैं।

समुच्चय-जयमाला

दोहा

सम्यक्दरशन-ज्ञान-व्रत, इन बिन मुकति न होय।
अन्ध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ।।१।।

अर्थ- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इनके बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती जिस प्रकार अंधा, लंगड़ा, और आलसी व्यक्ति जंगल की आग में अलग–अलग रहने पर जल जाते हैं।

चौपाई १६ मात्रा

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करम- बंध कट जावै ।
तासों शिव-तिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक्रत्न-त्रय ध्यावै।।

अर्थ- जो सम्यक्रत्नत्रय का ध्यान करते हैं उनके ध्यान की स्थिरता बनती है। कर्म के बंध कट जाते हैं और उससे मोक्षरूपी स्त्री की प्रीति बढ़ जाती है।

ताको चहुंगति के दुख नाहीं, सो न परै भव-सागर मांहीं।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावै, जो सम्यक् रत्न-त्रय ध्यावै।।

अर्थ- जो सम्यक्रत्नत्रय का ध्यान करते हैं, उन्हें चारों गतियों के दुःख नहीं होते। वे भव सागर में भ्रमण नहीं करते हैं। वे जन्म जरा और मृत्यु के दोषों को मिटा देते हैं।

सोई दश लच्छन को साधै, सो सोलह कारण आराधै।
सो परमातम पद उपजावै, जो सम्यक्रत्न-त्रय ध्यावै।।

अर्थ- जो सम्यक्रत्नत्रय का ध्यान करते हैं वे दशलक्षण धर्म की साधना करते हैं, सोलह कारण भावनाओं की आराधना करते हैं और वे ही परमात्म पद की प्राप्ति करते हैं।

सोई शक्र-चक्रिपद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक्रत्न-त्रय ध्यावै।।

अर्थ- जो सम्यक्रत्नत्रय का ध्यान करते हैं वे इन्द्र और चक्रवर्ती का पद प्राप्त करते हैं। तीनों लाकों के सुखों को भोग करते हैं और वे ही रागादिक भावों का नाश करते हैं।

सोई लोकालोक निहारै, परमानंद दशा विसतारै।
आप तिरै औरन तिरवावै जो सम्यक्रत्नत्रय ध्यावै।।

अर्थ- जो सम्यक् रत्नत्रय का ध्यान करते हैं वे लोक और अलोक को देखते हैं (केवलज्ञान प्राप्त करते हैं) परम आनंद की अवस्था को प्राप्त करते हैं और आप संसार से पार होते है और दूसरों को भी संसार से पार उतारते हैं।

दोहा

एक स्वरूप-प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' को सुखदाय ।।७।।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

निश्चयनय से रत्नत्रय एकमात्र जीव स्वभाव को ही प्रकाशित करता है। यह वचन से भी नहीं कहा जा सकता। रत्नत्रय के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ये तीन भेद व्यवहारनय से हैं। श्री द्यानतराय जी कहते हैं कि ये सुख को देने वाले हैं।

समुच्चय महार्घ्य

मैं देव श्री अर्हन्त पूजूँ सिद्ध पूजूँ चाव सों।
आचार्य श्री उवझाय पूजूँ साधु पूजूँ भाव सों।।
अर्हन्त-भाषित बैन पूजूँ द्वादशांग रचे गनी।
पूजूँ दिगम्बर गुरुचरन शिव हेतु सब आशा हनी।।
सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि दया-मय पूजूँ सदा।
जजुं भावना षोड़श रत्नत्रय, जा बिना शिव नहिं कदा।।
त्रैलोक्य के कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालय जजूँ।
पनमेरु नन्दीश्वर जिनालय खचर सुर पूजित भजूँ।।
कैलाश श्री सम्मेद श्री गिरनार गिरि पूजूँ सदा।
चम्पापुरी पावापुरी पुनि और तीरथ सर्वदा।।
चौबीस श्री जिनराज पूजूँ बीस क्षेत्र विदेह के।
नामावली इक सहस-वसु जपि होय पति शिवगेह के।।
जल गंधाक्षत पुष्प चरू दीप धूप फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूज हूं बहु विधि भक्ति बढ़ाय।।

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनागमेभ्यो दशलाक्षणिकधर्मेभ्यो, षोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो त्रिलोकस्थितकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यचैत्यालेभ्यो, पञ्चमेरुसम्बन्ध्यशीतिजिनालयस्थसर्वजिनबिम्बेभ्यो, नन्दीश्वरदीपस्थितद्विपञ्चाशत जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो श्रीसम्मेदाष्टापदूर्जयन्तगिरिचम्पापुरादिसिद्धक्षेत्रेभ्यो,सातिशयक्षेत्रेभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अष्टाधिकसहस्रजिननामेभ्यो श्रीवृषभादिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो मन्वादिसप्तऋषिराजेभ्यो समस्त दिगम्बरमुनिवरेभ्यो जलादि महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

अर्थ- मैं अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सभी साधुओं को भक्ति भाव से पूजता हूँ।

मैं अर्हंत की द्वादशांग वाणी को, दिगम्बर मुनियों के चरणों को सर्वज्ञ के कहे हुए दयामय दशधर्मों को पूजता हूँ, सोलहकारण भावनाओं को और रत्नत्रय (सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चारित्र) को पूजता हूँ क्योंकि इनके बिना मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता।

तीनों लोकों के अनादि तथा निर्मित किये गये चैत्यालयों और मंदिरों को पूजता हूँ। पाँचों मेरु और नन्दीश्वरद्वीप के बावन चैत्यालय जो कि विद्याधर एवं देवों से पूजित हैं उनको पूजता हूँ।

श्री कैलाश जी, श्री सम्मेदशिखर जी, श्री गिरनार जी, श्री चम्पापुर जी, श्री पावापुरी जी और सब तीर्थों को पूजता हूँ।

चौबीस तीर्थंकरों, विदेह क्षेत्र के बीस तीर्थंकरों और भगवान् के एक हजार आठ नामों को बार–बार पूजता हूँ।

जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल आदि आठों द्रव्यों से सर्व पूज्य जिनचरणों को बहुत ही भक्ति भाव से पूजता हूँ।

◆ ◆ ◆

शांतिपाठः (संस्कृत)

शान्तिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रम्।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममम्बुजनेत्रम्।।

अर्थ- जिनका मुख चन्द्रमा के समान निर्मल है, जो शील, गुण, व्रत और संयम के पात्र हैं, जिनका शरीर १०८ लक्षणों से युक्त है और जिनके नेत्र कमल के समान हैं; उन शान्तिनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।।१।।

पञ्चमभीप्सित-चक्रधराणां, पूजितमिन्द्रनरेन्द्रगणैश्च।
शान्तिकरं गणशान्तिमभीप्सुः षोड़शतीर्थकरं प्रणमामि।।

अर्थ- जो चक्रवर्तियों में पाँचवें चक्रवर्ती हैं, इन्द्र और नरेन्द्रों के समूह से पूजनीय हैं, संघ की शान्ति की इच्छा से मैं उन शान्ति के करने वाले सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ को नमस्कार करता हूँ।।२।।

दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुन्दुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मण्डलतेजः।।
तं जगदर्चितशान्तिजिनेन्द्रं शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शान्तिं मह्यमरं पठते परमां च।।

अर्थ- जिनके देवमयी अशोकवृक्ष, देवों के द्वारा की गयी पुष्प–वर्षा, दुन्दुभि बाजा, सिंहासन, एक योजन तक दिव्यध्वनि का घोष, तीन छत्र, चामर युगल और भामण्डल शोभा देते हैं उन जगत्पूज्य और शान्ति के करने वाले शान्तिनाथ भगवान् को सिर नवाकर नमस्कार करता हूँ। वे शान्तिनाथजिन समस्त संघ को और मुझे शान्तिपाठ पढ़ने से अतिशीघ्र परम शान्ति दें।।

अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिः दिव्यध्वनिश्चामरमासनञ्च।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम्।।

अशोकवृक्ष, देवकृत पुष्पवर्षा, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामण्डल, दुन्दुभि, और छत्र ये तीर्थंकरों के आठ प्रातिहार्य होते हैं।

येऽभ्यर्चितामुकुटकुण्डलहाररत्नैःशक्रादिभिःसुरगणैःस्तुतपादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्तीर्थंकराः सततशान्तिकरा भवन्तु।

अर्थ- जो तीर्थंकर जन्मोत्सव के समय इन्द्रादि के द्वारा मुकुट, कुण्डल और रत्नों के हार से पूजित हुए तथा जिनके चरण–कमलों की स्तुति देवगणों ने की वे श्रेष्ठवंशी तथा जगत् के दीपक २४ तीर्थंकर मुझे सदा शान्ति देवें।।५।।

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यतीन्द्रसामान्यतपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवज्जिनेन्द्रः।।

अर्थ- पूजा करने वालों को, प्रजा के रक्षकों को, मुनीन्द्रों को और सामान्य तपस्वियों को तथा देश, राष्ट्र, नगर और राजा को भगवान् जिनेन्द्र शान्ति प्रदान करें।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्विकिरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि।।

अर्थ- सब प्रजा का कल्याण हो। राजा बलवान् और धार्मिक हो। मेघ समय–समय पर अच्छी वृष्टि करें। सब रोगों का नाश हो। जगत् में प्राणियों को दुर्भिक्ष, चोरों का उपद्रव तथा मारी क्षण भर के लिए भी न हो और सब सुखों का देने वाला जैनधर्म सदा फैला रहे।।७।।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः।
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृषभाद्याः जिनेश्वराः।।

अर्थ- घातियाकर्मों का नाश करने वाले और केवलज्ञानरूपी सूर्य ऋषभदेव आदि तीर्थंकर जगत् की शान्ति करें।।८।।

इष्ट प्रार्थना

प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगति-सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्।

सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यन्तां मम भव भवे यावदेतेऽपवर्गः।

अर्थ- प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो। शास्त्र का अभ्यास, जिनेन्द्रदेव का दर्शन, निरन्तर श्रेष्ठ पुरुषों की संगति, श्रेष्ठ चरित्रवान् पुरुषों के गुणसमूह की कथा, परदोष के कहने में मौन, सबसे मिष्ट और हितकारी बोलना तथा आत्मतत्त्व की भावना ये बातें मुझे भव–भव में तब तक मिलें जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र ! आपके चरण मेरे हृदय में और मेरा हृदय आपके चरणों में तब तक लीन रहे जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य मज्झ वि दुक्खक्खयं दिंतु।।

अर्थ- हे ज्ञानदेव ! जो मैंने अक्षरहीन, पदहीन, अर्थहीन तथा मात्राहीन पढ़ा हो उसे क्षमा करो और मेरे दुःख का नाश करो।

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, समाहिमरणं च वोहिलाहो य।
मम होउ जगद्बान्धव ! तव जिणवर चरणसरणेण।।

अर्थ- हे तीनों लोकों के बन्धु जिनवर ! आपके चरणों की शरण से मेरा दुःख क्षय हो, मेरे कर्मों का क्षय हो, मुझे समाधिमरण और बोधि का लाभ हो।

स्तुति

त्रिभुवनगुरो ! जिनेश्वर ! परमानन्दैककारणं कुरुष्व।
मयि किंकरेऽत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः।।

अर्थ- हे परम आनन्द के कारण, त्रिभुवन के गुरु जिनवर ! मुझ किंकरपर ऐसी करुणा करो जिससे मुक्ति की प्राप्ति होवे।

निर्विण्णोहम् नितरामर्हन् बहुदुक्खया भवस्थित्या।
अपुनर्भवाय भवहर ! कुरु कुरुणामत्र मयि दीने।।

अर्थ- हे अर्हन् ! दुःखबहुल भवस्थिति से मैं अत्यन्त विरक्त हूँ। हे भवहर ! मुझ दीन पर ऐसी करुणा करो जिससे पुनः भव की प्राप्ति न होवे।

उद्धर मां पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनर्पुनर्वच्मि ।।

अर्थ- मैं विषय–भवकूप में पड़ा हुआ हूँ, कृपा करके उससे आप मेरा उद्धार करें। यह बात मैं बार–बार दुहराता हूँ कि भवकूप से उद्धार करने में एकमात्र आप ही समर्थ हैं।

त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश ! तेनाहम्।
मोहरिपुदलितमानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे।।

अर्थ- हे जिनेश ! आप कारुणिक हैं, आप स्वामी हैं और आप ही समर्थ हैं, इसलिए मैं आपके समक्ष मोहरूपी शत्रु के मान का मर्दन करने वाली यह करुणा–भरी पुकार कर रहा हूँ।

ग्रामपतेरपि करुणा परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि।
जगतां प्रभो ! न किं तव, जिन ! मयि खलु कर्मभिः प्रहते।।

अर्थ- अन्य किसी के द्वारा किसी मनुष्य के प्रताड़ित होने पर ग्रामपति को भी करुणा उत्पन्न होती है। हे जगत् के पति जिनदेव ! मैं तो कर्मों के द्वारा रंगा गया हूँ। मुझ पर आपकी करुणा कैसे नहीं होगी, अर्थात् अवश्य होगी।

अपहर मम जन्म दयां, कृत्वा चेत्येकवचसि वक्तव्यम्।
तेनातिदग्ध इति मे देव ! बभूव प्रलापित्वम्।।

अर्थ- मेरा एकमात्र यही निवेदन है कि दया करके मेरी इस जन्मसन्तति का अन्त करें। मैं उससे अत्यन्त दग्ध हो रहा हूँ, इसलिए हे देव ! मेरी यह करुणा–भरी पुकार है।

तव जिनवर ! चरणाब्जयुगं करुणामृतशीतलं यावत्।
संसारतापतप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी।।

अर्थ- हे जिन ! संसार के ताप से तप्त हुआ मैं जब तक आपके करुणामृत से शीतल चरण कमल–युगल को अपने हृदय में धारण करता हूँ तभी तक मैं सुखी रहता हूँ।

जगदेकशरणभगवन् ! नौमि श्रीपद्मनन्दिगुणौघः।
किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने।।

अर्थ- हे पद्मनन्दि आचार्य के द्वारा प्रशंसित गुण–समूह वाले, जगत् के एकमात्र शरणरूपी भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। बहुत कहने से क्या? शरण को प्राप्त हुए इस जनपर आप करुणा करें।

परिपुष्पांजलिं क्षिपामि।

(नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें।)

विसर्जनम्

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर!।।

अर्थ- ज्ञान से या अज्ञान से जो शास्त्रोक्तविधि मैं न कर सका हूँ, हे जिनवर! आपके प्रसाद से वह सब पूर्ण हो।

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम्।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर!।।

अर्थ- मैं न तो आह्वान जानता हूँ, न पूजन करना जानता हूँ, और न विसर्जन करना जानता हूँ। हे परमेश्वर ! क्षमा करो।

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर!।।

अर्थ- जो कुछ मन्त्र में कमी रही हो, क्रिया में कमी रही हो, द्रव्य में कमी रही हो, हे देव ! वह सब क्षमा करो। हे जिनवर ! रक्षा करो। रक्षा करो।

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम्
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तुयथास्थितिम्।।

अर्थ- जिन देवों का पहले मैंने आह्वान किया तथा जिन्होंने क्रमशः (अपने–अपने) भाग लिये उनका मैंने भक्ति से अर्चन किया वे सब अपने–अपने स्थान पर जावें।

(ठोने के ऊपर लवंग या पुष्पों का क्षेपण करें और आशिका ग्रहण करें।)

शांतिपाठ भाषा

शान्तिनाथ मुख शशि उनहारी, शील गुणव्रत संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजै, निरखत नयन कमलदल लाजै।।

अर्थ- हे शान्तिनाथ भगवन् ! आपका चन्द्रमा के समान निर्मल मुख है। आप शील, गुण, व्रत और संयम के धारक हैं। आपकी देह में १०८ शुभ लक्षण हैं और आपके नेत्रों की सुन्दरता के आगे कमल भी लज्जित हैं, आपको नमस्कार करता हूँ।

पंचम चक्रवर्ति पदधारी, सोलम तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र नरेन्द्र पूज्य जिन नायक, नमों शान्ति हित शान्ति विधायक।।

अर्थ- आप पाँचवें चक्रवर्ती हैं और आप इन्द्र तथा नरेन्द्रों से पूजनीय हैं। सुखदायी सोलहवें तीर्थंकर हैं। शान्ति की इच्छा से शान्ति के कर्त्ता सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ।

दिव्य विटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणी सरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी।।

अर्थ- १. अशोक वृक्ष, २. देवों द्वारा की गई फूलों की वर्षा, ३. दुन्दुभि (नगाड़ों) का बजना, ४. सिंहासन ५. एक योजन तक दिव्यध्वनि का पहुँचना ६. सिर पर तीन छत्रों का होना, ७. चमरों का ढुरना और ८. भामण्डल । ये मनोहर आठ प्रातिहार्य आपके हैं।

शान्ति जिनेश शान्ति सुखदाई, जगतपूज्य पूजौं शिरनाई।
परम शान्ति दीजै हम सबको, पढ़ैं तिन्हैं पुनि चार संघको ।।

अर्थ- संसार के पूजनीय शान्ति और सुख को करने वाले श्री शान्तिनाथ तीर्थंकर को मस्तक नवाकर नमस्कार करता हूँ। हे शान्तिनाथ भगवन्! चतुर्विध संघ (मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका) को पढ़ने वालों और हम सभी को सदा परम शान्ति प्रदान करें।

बसन्ततिलका

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके,
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके।
सो शांतिनाथ वरवंश जगत्प्रदीप,
मेरे लिये करहिं शान्ति सदा अनूप।।

अर्थ- मुकुट, कुण्डल, हार और रत्नों को धारण करने वाले, इन्द्र इत्यादि देव, जिनके चरण कमलों की पूजा करते हैं। उत्तम वंश में उत्पन्न होने वाले और संसार को प्रकाशित करने वाले शान्तिनाथ भगवान मुझे शान्ति प्रदान करें।

इन्द्रवज्रा

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीन को औ यतिनायकों को।
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले कीजे सुखी हे जिन ! शांति को दे।।

अर्थ- हे जिनेन्द्रदेव ! आप पूजन करने वालों को, रक्षा करने वालों को, सामान्य मुनियों को, आचार्यों को, राष्ट्र और देश, राजा प्रजा को सदा शान्ति प्रदान करें।

होवै सारी प्रजा को सुख बलयुत हो धर्म-धारी नरेशा।
होवै वर्षा समै पै तिलभर न रहे व्याधियों का अन्देशा।।
होवै चोरी न मारी सुसमय वरते हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारैं जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी।।

अर्थ- समस्त प्रजा को सुख हो, राजा बलवान और धर्मात्मा हो, समय–समय पर वर्षा हो, क्षणभर भी रोग–व्याधियां न रहें। प्राणियों को संसार में चोरी और मारी का दुःख न हो। निरन्तर अच्छा समय रहे, बुरा काल न आवे। सम्पूर्ण देश जैन धर्म को धारण करें, जो सदा सुख करने वाला है।

दोहा

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शान्ति करो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज।।

अर्थ- चार घातियाकर्मो को नष्ट कर केवलज्ञान रूपी सूर्य को प्राप्त करने वाले वृषभ आदि जिनेन्द्र भगवान् जगत् को शान्ति प्रदान करें।

शास्त्रों का हो पठन सुखदा लाभ सत्संगती का।
सद्वृतों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का।।
बोलूँ प्यारे वचन हित के आपका रूप ध्याऊँ।
तौलों सेऊँ चरण जिनके मोक्ष जौलों न पाऊँ।।

अर्थ- हे भगवन् ! सुख देने वाले शास्त्रों का पढ़ना होवे, सत्संगति का लाभ हो। सदाचारियों के सुयश कहकर अन्य सभी के दोषों को आच्छादित करूं। प्रिय वचन बोलूँ। आपके रूप का ध्यान करूँ, उस समय तक आपके चरणों की उपासना करूँ। जब तक मुक्ति प्राप्त न हो।

तव पद मेरे हियमें, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तबलौं लीन रहौं प्रभु, जबलौं पाया न मुक्ति पद मैंने।।

अर्थ- हे जिनेन्द्रदेव ! तब तक आपके दोनों चरण मेरे हृदय में विराजमान रहें और मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो जावे।

अक्षर पद मात्रा से दूषित जो कछु कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुड़ाहु भवदुख से।।
हे जगबन्धु जिनेश्वर!, पाऊँ तब चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी।।

अर्थ- हे परमात्मन् ! मैंने आपकी पूजा करने में अक्षर, पद और मात्रा से हीन (कम) जो कुछ कहा हो उसे आप क्षमा करें, करुणाकर मुझे संसार के दुःखों से छुड़ा दें। हे जगद्बन्धु जिनेश्वर ! अति दुर्लभ दुःखों को दूर करने वाली आपके चरणों की शरण प्राप्त करूँ, दुर्लभ समाधिमरण प्राप्त हो और कर्मों का क्षय होकर सुख देने वाले केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो।

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र जपना चाहिये।

विसर्जन

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय।
तुव प्रसाद तैं परमगुरु, सो सब पूरन होय।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र भगवन् ! आपकी पूजा करने में जानकर अथवा बिना जाने जो कोई त्रुटि रही हो वह सब आपकी कृपा से पूर्ण हो जावे।

पूजनविधि जानूं नहीं, नहिं जानूं आह्वान।
और विसर्जन हू नहीं, क्षमा करो भगवान्।।

अर्थ- हे परमेश्वर ! आह्वान करने की विधि मुझे मालूम नहीं है, पूजा करना भी नहीं जानता और न विसर्जन करना ही आता है। इसलिए आप मुझे क्षमा कीजिए।

मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहु राखहु, मुझे, देहु चरण की सेव।।

अर्थ- हे जिनेन्द्र देव ! मैं मंत्रहीन, क्रियाहीन और द्रव्यहीन हूँ अतः क्षमा कीजिये और मेरी रक्षा कीजिए और चरण की सेवा प्रदान कीजिए।

चौबीसों जिनराज पद पूजें शक्ति प्रमाण।
पूजा विसर्जन मैं करूँ सदा करो कल्याण।

अर्थ- मैंने चौबीसों जिनेन्द्र भगवान् के चरण कमलों की शक्ति प्रमाण पूजा की है। अब मैं पूजन का विसर्जन/पूर्णता करता हूँ। हे जिन! सदा कल्याण कीजिए।

ठोने के ऊपर लवंग या पुष्पों को क्षेपण करें

आशिका

श्री जिनवर की आशिका, लीजे शीश चढाय।
भव भव के पातक कटें, दुःख दूर हो जाय।।

यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र जपना चाहिये। वेदिका की तीन परिक्रमा करके साष्टांग नमन करना चाहिए।

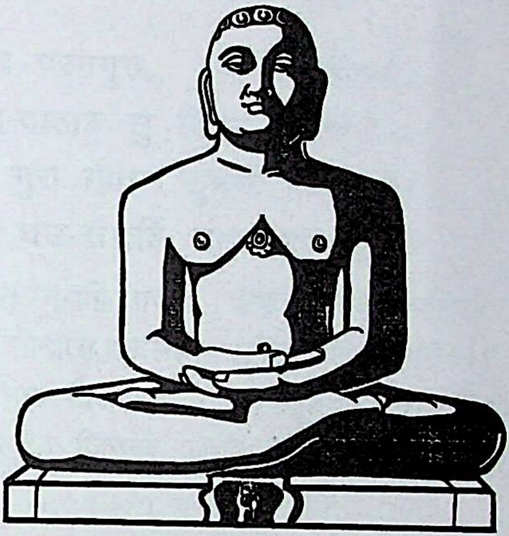

द्वितीय भाग

सामान्य पूजाएँ

पंच मंगल पाठ

पणविवि पंच परमगुरु,. गुरुजिनशासनो।
सकल-सिद्धि-दातार सु विघन-विनाशनो।।
सारद अरु गुरु गौतम सुमति प्रकाशनो।
मंगल कर चउ-संघहिं पाप-पणासनो।।

पापहिं प्रणासन गुणहिं गरुआ, दोष अष्टादश–रहिउ।
धरि ध्यान कर्म विनासि केवलज्ञान अविचल जिन लहिउ।।
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं।।१।।

१. गर्भकल्याणक

जाके गर्भकल्याणक धनपति आइयो।
अवधिज्ञान-परवान सु इंद्र पठाइयो।।
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी।
कनक-रयण-मणि-मंडित, मन्दिर अति बनी।।

अति बनी पौरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहये।
नरनारि सुन्दर चतुर भेख सु, देख जनमन मोहये।।
तँह जनकगृह छहमास प्रथमहिं, रतन–धारा बरसियो।
पुनि रुचिकवासिनि जननि–सेवा करहिं सबविधि हरसियो।।२।।

सुरकुंजर-सम कुंजर, धवल धुरंधरो।
केहरि-केशर-शोभित, नख-शिख सुन्दरो।।
कमला-कलस-न्हवन, दुइ दाम सुहावनी।
रवि-ससि-मंडल मधुर, मीन जुग पावनी।।

पावनि कनक–घट–जुगम पूरण, कमल–कलित सरोवरो।
कल्लोल–माला–कुलित–सागर सिंहपीठ मनोहरो।।

रमणीक अमरविमान फणिपति–भवन भुवि छवि छाजई।
रुचि रतनरासि दिपंत, दहन सु तेजपुंज विराजई।।३।।

ये सखि सोलह सुपने सूती सयनही ।
देखे माय मनोहर, पश्चिम रयनही।।
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिंह भासियो।।

भासियो फल तिहिं चिंत दम्पति परम आनन्दित भये।
छहमास परि नवमास पुनि तँह, रैन दिन सुखसों गये।।
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
'मणि रुपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं।।४।।

२. जन्मकल्याणक

मति-श्रुत-अवधि-विराजित, जिन जब जनमियो।
तिहुंलोक भयो छोभित, सुरगन भरमियो।
कल्पवासि घर घंट अनाहद वज्जियो।
जोतिष-घर हरिनाद, सहज गल गज्जियो।।

गज्जियो सहजहिं संख भावन, भुवन सबद सुहावने।
विंतर–निलय पटु पटहिं बज्जिय, कहत महिमा क्यों बने।।
कंपित सुरासन अवधिबल जिन–जनम निहचैं जानियो।
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो।।५।।

जोजन लाख गयंद, वदन सौ निरमये।
वदन वदन वसुदंत, दंत सर संठये।।
सर-सर सौ-पनवीस, कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं।।

राजहिं कमलिनि कमलऽठोतर सौ मनोहर दल बने।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हाव भाव सुहावने।।
मणि कनक–किंकणि वर विचित्र सु अमर–मण्डप सोहये।
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये।।६।।

तिहिं करि हरि चढ़ि आयउ सुर-परिवारियो।
पुरहिं प्रदच्छंन दे त्रय, जिन जयकारियो।।
गुपत जाय जिन-जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामयी सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची।।

आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपित न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरिने सहस लोचन पूजिये।।
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इन्द्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईशान इन्द्र सुचंद्र छबि सिर, छत्र प्रभु के दीनऊ।।७।।

सनतकुमार माहेन्द्र, चमर दुइ ढारहीं।
शेष सक्र जयकार, सबद उचारहीं।।
उच्छव-सहित चतुरविधि सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानवै, गगन उलंघि गये।।

लँघि गये सुरगिरि जहाँ पांडुक, वन विचित्र विराजहीं।
पांडुक—शिला तहँ अर्द्धचन्द्र समान, मणि छवि छाजहीं।।
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊँची गनी।
वर अष्ट—मंगल कनक कलसनि सिंहपीठ सुहावनी।।८।।

रचि मणिमंडप शोभित, मध्य सिंहासनो।
थाप्यो पूरब मुख तहँ प्रभु कमलासनो।।
बाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने।
दुंदुभि प्रमुख मधुर धुनि, अवर जु बाजने।।

बाजने बाजहिं सची सब मिल, धवल मंगल गावहीं।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना, सब देव कौतुक धावहीं।।
भरि छीरसागर जल जु हाथहिं हाथ सुरगिर ल्यावहीं।
सौधर्म अरु ईशान इन्द्र सु कलस ले प्रभु न्हावहीं।।६।।

वदन उदर अवगाह, कलसगत जानिये।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये।।

सहस-अठोतर कलसा, प्रभु के सिर ढुरे।
पुनि सिंगार प्रमुख, आचार सबै करे।।

करि प्रगट प्रभु महिमा महोच्छव, आनि पुनि मातहिं दयो।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गयो।।
जन्माभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं।।१०।।

३. तपकल्याणक

श्रम-जल-रहित सरीर, सदा सब मल-रहिउ।
छीर वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ।।
प्रथम सार संहनन, सरूप विराजहीं।
सहज सुगंध सुलच्छन ! मंडित छाजहीं।।

छाजहिं अतुल बल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने।
दस सहज अतिशय सुभग मूरति, बाललील कहावने।।
आबाल काल त्रिलोकपति मन–रुचिर उचित जु नित नये।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम सकल भोग विभोगये।।११।।

भव-तन-भोग-विरत्त, कदाचित चिंतए।
धन-यौवन पिय पुत्त, कलित्त अनित्त ए।।
कोउ न सरन मरन दिन, दुख चहुँगति भस्यो।
सुखदुख एकहि भोगत, जिय विधि-वसि पस्यो।।

पस्यो विधि–वस आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो।
तन असुचि परतैं होय आस्रव, परिहरे तैं संवरो।।
निरजरा तपबल होय समकित, बिन सदा त्रिभुवन भ्रम्यो।
दुर्लभ विवेक बिना न कबहूँ, परम धरम विषैं रम्यो।।१२।।

ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया।।
कुसुमांजलि दे चरन, कमल सिर नाइया।
स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकर, तिन समुझाइया।।

समुझाय प्रभु को गये निजपुर, पुनि महोच्छव हरि कियो।
रुचि रुचिर चित्र विचित्र सिविका कर सुनन्दन वन लियो।
तहँ पंचमुट्ठी लोंच कीनों, प्रथम सिद्धनि नुति करी।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर सकल परिगह परिहरी।।१३।।

मणि-मय-भाजन केश परिट्ठिय सुरपती।
छीर-समुद्र-जल खिप करि, गयो अमरावती।।
तप-संयम-बल प्रभु को, मनपरजय भयो।
मौन सहित तप करत, काल कछु तहँ गयो।।

गयो कछु तहँ काल तपबल, रिद्धि वसुविधि सिद्धिया।
जसु धर्मध्यान–बलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धिया।।
खिपि सातवें गुण जतन बिन तहँ, तीन प्रकृति जु बुधि बढ़िउ।
करि करण तीन प्रथम सुकल–बल, खिपक–सेनी प्रभु चढ़िउ।।१४।।

प्रकृति छतीस नवें, गुण-थान विनासिया।
दसवें सूच्छम लोभ, प्रकृति तहँ नासिया।।
सुकल ध्यानपद दूजो, पुनि प्रभु पूरियौ ।
बारहवें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियौ ।।

चूरियौ त्रेसठ प्रकृति इह विधि, घातिया–करमनि तणी।
तप कियो ध्यान–पर्यन्त बारह–विधि त्रिलोक–सिरोमणी।
निःक्रमण–कल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं।।१५।।

४ ज्ञानकल्याणक

तेरहवें गुणथान सयोगि जिनेसुरो ।
अनंत-चतुष्टय-मंडिय, भयो परमेसुरो।।
समवसरन तब धनपति बहु-विधि निरमयो।
आगम-जुगति प्रमान, गगन-तल परिठयो।।

परिठयो चित्र विचित्र मणिमय, सभा–मण्डप सोहये।
तिहिमध्य बारह बने कोठे, कनक सुरनर मोहये।

मुनि कंलप–वासिनि अरजिका, पुन ज्योति–भौम–व्यन्तर–तिया।
पुनि भवन–व्यंतर नभग सुर नर पसुनि कोठे बैठिया।।१६।।

मध्यप्रदेश तीन, मणिपीठ तहाँ बने।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने।।
तीन छत्र सिर सोहत त्रिभुवन मोहए।
अन्तरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहए।।

सोहये चौसठ चमर ढुरत, अशोक–तरु–तल छाजए।
पुनि दिव्यधुनि प्रति–सबद–जुत तहँ, देव दुंदुभि बाजए।।
सुर–पुहुपवृष्टि सुप्रभा–मण्डप, कोटि रवि छवि छाजए।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजये।।१७।।

दुईसै जोजनमान सुभिच्छ चहूँ दिसी।
गगन-गगन अरु प्राणी-वध नहिं अह-निसी।।
निरुपसर्ग निराहार, सदा जगदीश ए।
आनन चार चहूँदिस सोभित दीसए।।

दीसए असेस विसेस विद्या, विभव वर ईसुरपना।
छाया–विवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभु का बना।।
नहिं नयन–पलक–पतन कदाचित केश नख सम छाजहीं।
ये घातिया छय–जनित अतिशय, दस विचित्र विराजहीं।।१८।।

सकल अरथमय मागधि-भाषा जानिए।
सकल जीवगत मैत्री-भाव बखानिए।।
सकल रितुज फलफूल, वनस्पति मन हरै।
दरपन-सम मनि अवनि, पवन-गति अनुसरै।।

अनुसरै परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता।
जोजन प्रमान धरा सुमार्जहिं, जहाँ मारुत देवता।।
पुन करहिं मेघकुमार गंधोदक सुवृष्टि सुहावनी।
पद–कमल–तर सुर खिपहिं कमल सु धरणि ससि–सोभा बनी।१९।

5/38

अमल-गगन-तल अरु दिसि, तहँ अनुहारहीं।
चतुर-निकाय देवगण, जय जयकारहीं।।
धर्मचक्र चलै आगैं, रवि जहँ लाजहीं।।
पुनि भृंगार-प्रमुख, वसु मंगल राजहीं ।।

राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बने।।
तब इन्द्र आय कियो महोच्छव, सभा सोभा अति बनी।
धर्मोपदेश दियो तहाँ, उच्चरिय वानी जिनतनी।।२०।।

छुधा तृषा अरु राग, रोष असुहावने।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने ।।
रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी।।

गनिये अठारह दोष तिनकरि रहित देव निरंजनो।
नव परम केवललब्धि मंडिय सिव–रमनि–मनरंजनो।।
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं।।२१।।

५. निर्वाणकल्याणक

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो।
भव्यनि प्रति उपदेस्यो, जिनवर तारिसो।।
भव-भय-भीत भविकजन, सरणै आइया।
रत्नत्रय-लच्छन सिवपंथ लगाइया।।

लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु तृतिय सुकल जु पूरियो।
तजि तेरवां गुणथान जोग अजोगपथ पग धारियो।
पुनि चौदहें चौथे सुकल बल बहत्तर तेरह हती।
इमि घाति वसुविध कर्म पहुँच्यो, समय मैं पंचम गती।।२२।।

लोकसिखर तनुवात, वलयमँह संठियो।
धर्मद्रव्य बिन गमन न, जिहि आगैं कियो।।
मयन-रहित मूषोदर, अंबर जारिसो।
किमपि हीन निज तनुतैं, भयो प्रभु तारिसो।।

तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी।
निश्चयनयेन अनंतगुण, विवहार नय वसु–गुणमयी।।
वस्तुस्वभाव विभावविरहित, सुद्ध परिणति परिणयो।
चिद्रुप परमानंद मंदिर, सिद्ध परमातम भयो।।२३।।

तनु-परमाणु दामिनि-वत, सब खिरगए ।
रहे शेष नखकेश-रूप, जे परिणए ।।
तब हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभ सच्यो।
मायामयि नखकेश-रहित, जिनतनु रच्यो।।

रचि अगर चंदन प्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जयकारियो।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविध संस्कारियो।।
निर्वाण कल्याणक सु महिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचन्द' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं।।२४।।

मैं मतिहीन भगतिवस, भावन भाइया।
मंगल गीतप्रबंध, सु जिनगुण गाइया।।
जो नर सुनहिं बखानहिं सुर धरि गावहीं।
मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं।।

पावहीं आठों सिद्धि नवनिधि, मन प्रतीत जो लावहीं।
भ्रम भाव छूटैं सकल मन के निज स्वरूप लखावहीं।।
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन सु होंहिं मंगल नित नये।
भणि 'रूपचन्द' त्रिलोकपति,. जिनदेव चउ–संघहिं जये।।२५।।

अभिषेक पाठ भाषा

श्रीमत् स्याद्वाद के नायक तीन लोक में पूजित ईश।
चार अनंत चतुष्टयराजित श्रीजिनभव्य नमावत शीश।।
शुद्धदृष्टि से गुन चिन्तन में कारण आतमरूप गिरीश।
कायोत्सर्ग नवकार मंत्र जप करूं त्रियोग कर्म की खीश।।

अथ पौर्वाह्निक, (माध्याह्निक, अपराह्निक) देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा वंदनास्तवसमेतं श्रीपंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् (नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ें)

पावन शीतल केशर चन्दन सलिल संग दीजे घिसवाय।
नव स्थान पर तिलक लगावें तब जिनवर का न्हवन कराय।।
शिखा कंठ अरु हृदय भुजा शिर कान कुक्षि कर नाभि लगाय।
तिलक लगाकर जिनवर पूजें बनें पुजारी भव्य सुपाय।।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांगशुद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।

क्षीर सिंधु सम निर्मल पावन, प्रासुक जल कर में लाया।
न्हवन पीठ क़े प्रक्षालन हित भक्ति भाव मन में आया।
वीतराग जिनवर की मूरति के अभिषेक विधी के काज।
देवेन्द्रों से अनुपम अवसर भाग्योदय से पाया आज।।

ओं ह्रीं पीठप्रक्षालनं करोमि।

शारद मुख से निर्गत 'श्री' है विघन विनाशक मंगल रूप।
सब जीवों को शान्ति प्रदाता स्वस्तिक मय है आत्म स्वरूप।।
भद्र पीठ पर लिखकर 'श्री' को स्थापन जिनवर जगभूप।
विधि अभिषेक करूं जिनवर का होवेगा तन मन सुख रूप।।

ओं ह्रीं श्रीं अर्हं श्री लेखनं करोमि।

ऐसे जिनपद पंकज को नमि नित्य सही विधि न्ह्वन प्रसारे।
तिनपद सम्मुख तिष्ठत उज्ज्वल, द्रव्यसुधार यहां विस्तारे।।
कंचन सिंहासन श्री लिखकर निर्मल प्रासुक द्रव्य संभारे।
ता मधि बिम्ब शिवालय नायक हो अभिषेक हितार्थ सुधारे।।

ओं ह्रीं श्री भगवन्निह स्नपनपीठे तिष्ठ तिष्ठ (जिनबिम्बं स्थापनम्)

रत्न स्वर्णमय कलश मनोहर क्षीरोदधि से लिए भराय।
केशर स्वस्तिक लिखकर सुन्दर चार कोण पर चार धराय।।
भाग्य उदय है आज हमारा जिनवर न्ह्वन करूं हरषाय।
सम्यग्दर्शन साधन पाकर यह मिथ्यात्व करम नश जाय।।

ओं ह्रीं चतुः कोणेषु स्वस्तये चतुःकलशस्थापनं करोमि।

प्रासुक निर्मल द्रव्य मनोहर हर्षित मन से सुरगण आय।
वादित्रों के अनुपम स्वर से श्री जिनवर के गुण को गाय।।
नीर गंध चरुपुष्प सु अक्षत दीप धूप फल अर्घ बनाय।
अर्चन करता प्रभु चरणों का अवसर आज मिला है आय।।

ओं ह्रीं स्नपनपीठस्थितजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

१ अभिषेक मंत्र

कृत्रिम और अकृत्रिम बिम्ब सनातन राजत श्री जिन तेरे।
तासु तनी नित भव्य उपासन ठानत भानत कर्म करेरे।।
क्षीर समुद्र नदी नद तीरथ तासु तनों जल प्रासुक हेरे।
कंचन कुंभ भरे परिपूरित ल्याय यथाक्रम उत्थित टेरे।।

ओं ह्रीं श्रीमंतं भगवन्तं कृपालुसन्तं श्रीवृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतितीर्थंकर परमदेवं आद्यानामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे .... प्रान्ते................मण्डलान्तर्गते...नगरे (ग्रामे) ....मंदिरे (मण्डपे)...........वीरनिर्वाणसंवत्सरे मासानामुत्तमे.......... ....मासे ....पक्षे ....पुण्यतिथौ........ वासरे मुनि-आर्यिका-श्रावक -श्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषेचयामः।

लघुमंत्र

१

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः।

२

कर्म जंजीर जुरयो यह जीव शुभाशुभ भोगत ज्ञान ना पायो।
पै अब कालसुलब्धि प्रसाद लह्यो तव दर्शन आनंद आयो।।
हो तुम कर्म कलंक विनाशक प्रेमभक्ति रत प्रेरित लायो।
हो गुनकार करूँ अभिषेक वरों शिवनारि समय अब आयो।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः।

(अभिषेक के बाद उदकचन्दन आदि बोलकर अर्घ्य चढ़ाना चाहिए)

३

यो कहि दीप चहूं दिश जोय कियो बहु धूप सूधूपक केरो।
बाजत ताल सुबीन मृदंग सु जिनगुण गावत भाव सुटेरो।।
जय जिनराय सु विरद उचार कियो अभिषेक जिनेश्वर तेरो।
भावन शक्ति प्रमाण यहाँ हम ठानत मानत कर्म करेरो।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः।

४

अष्टादश दोष रहित तुम पावन अमल चिदानंद ज्योति स्वरूपी।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी शुद्धातम तन-रहित-अरूपी।।
मैं आत्म स्वरूप नहिं जाना राग द्वेष की परनति ठानी।
इसी मलिनता धोने को प्रभु करता न्हवन त्रिभुवन ज्ञानी।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः।

५

तन बिन सहज पवित्र प्रभुवर मज्जन तन बिन वनता नाहीं।
तुम पवित्रता कारण भगवन् न्हवन करने की विधि नाहीं।।

मैं मलीन रागादिक मल से दुःख उपजाया बन अज्ञानी।
मिले नाथ सद्ज्ञान आत्म का इसीलिए मज्जन विधि ठानी।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः।

६

पावन जल को लेकर आया न्हवन करने को हे स्वामी।
सब विभाव का नाश होय जब तभी बनूं मैं अन्तर्यामी।।
जैसा पावन पद तुम पाया मैं कब ऐसा अवसर पाऊं।
भक्ति भावना सुदृढ़ बनें मम भवसागर से अब तिर जाऊं।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः।

७

बीताऽनन्तानन्तकाल नहि शुचिता अब तक मन में आई।
पुण्यसंयोग मिला यह नर तन भक्ति भावना आतम पाई।
जलाभिषेक मैं करूं आपका पाप न कण मन में रह जाए।
शरण आपका पाकर भगवन् जनम मरण के दुख नश जाए।।

ओं ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामः।

८

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय साधू मुनिवर आतमज्ञानी।
जग में मंगलमय सुखदायक भविजन को शिवमारग दानी।।
उत्तम जग में शरण सदा ही जीवन में सब विधि सुखदानी।
श्री विनायक सिद्धयंत्र का न्हवन करते हैं भवि प्राणी।।

ओं भूर्भुवः स्वरिह विघ्नौघवारकं यंत्रं जलेन अभिषेचयामः।

६

र्ह बीजाक्षर मध्य विराजे अष्टरूप है कमलाकार।
स्वरव्यंजन से शोभित वसुदिशि मंत्र अनाहत है सुखकार।।

अन्त ह्रीं से वेष्टित यंत्र है सिद्धचक्र अनुपम गुणधार।
कर्म नाश के कारण न्हवन सिद्धयंत्र का करूं निहार।।

ओं ह्रीं अर्हं सिद्धचक्रयंत्रं जलेन अभिषेचयामः।

(यहाँ शान्तिधारा करें)

अर्घ्य मंत्र (शान्तिधारा करने के बाद)

नीर महाशुचि गंधित चन्दन पुष्प सु अक्षत ले अनियारे।
व्यंजन संयुत ले चरुउत्तम दीप धूप फल अर्घ सुधारे।।
यों वसुद्रव्य तनों कर अर्घ उतारि उतारि जजों पदथारे।
दो मोहि शीघ्र शिवालय वास सदा तुम भव्य उतारनहारे।।

ओं ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ले शुचि निर्मल स्वर्ग समुद्भव वस्त्र अलौकिक हाथ मँझारे।
तव तन ऊपर नीर सतत परिमार्जन को विस्तारे।।
पुलकित भक्ति भाव से भविजन निरखत पावन रूप तिहारे।
धन्य धन्य जिनराज लोक में वसु विधि कर्म जलावन हारे।।

ओं ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बं परिमार्जनं करोमि।

दोहा

मार्जनकरि वेदि विषैं सिंहासन पर थाप।
प्रातिहार्य युत निरख जिन यजन करूँ गुण जाप।।
विनय सहित अभिषेक करि धारा शांति कराय।
प्रक्षालन करि बिम्ब को सिंहासन पधराय।।

ओं ह्रीं अर्हं सिंहासने जिनबिम्बं स्थापनं करोमि।

यों अभिषेक कियो अब पूरन पूजन के हित अर्घ सुधारो।
तीरथ को जल प्रासुक चन्दन अक्षय अक्षत पुष्प सुधारो।।
ले चरु उत्तम दीप सुधूप फलार्घ करों वर मंत्र उचारो।
वार धरों तुम चरणन के ढिंग हो जिन तारक मोहि उबारो।।

ओं ह्रीं सिंहासनस्थितजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गन्धोदक लेने का मंत्र

जिन तन परस पवित्र भयो गंधोदक जन जन शुचि कर तारो।
ले चरणोदक शीश धरें हम भीषण रोग व्यथा निरवारो।।
कर गुणगान नमावत मस्तक, जनम जनम के दुख निरवारो।
जीवन मेरा धन्य हुआ प्रभु भक्ति भाव सम्यक् निधि धारो।।

(गन्धोदक नेत्रों और मस्तक पर लगावें)

अभिषेक का फल

अहिसेय फलेण नरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरिं
खीरीय जलेण सुरिंदप्प सुहदेवेहिं भत्तीए ।।४६१।।

वसु. श्रा.

अर्थ- जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक करने से मनुष्य सुदर्शनमेरु के ऊपर क्षीरसागर के जल से सुरेन्द्र प्रमुख देवों से अभिषिक्त किया जाता है।

जिनबिम्ब का अभिषेक करने की आगम विहित परम्परा है। अभिषेक करने से आत्मा की निर्मलता होती है और परिणामों में सरलता आ जाती है। जिनेन्द्र के बिम्ब के स्पर्श मात्र करने से अनन्त भवों के कर्म एक साथ निर्जरा को प्राप्त होते हैं। सौधर्मेन्द्र जब मध्यलोक में आकर नन्दीश्वरद्वीप में जाकर जिनाभिषेक कर महान् पुण्यार्जन करता है, तब हम मनुष्यगण उस सातिशय पुण्य से वंचित क्यों रहें? अतः अपने–अपने नगर के जिनालयों में प्रतिदिन जिनबिम्बों का अभिषेक कर पुण्य का उपार्जन अवश्य ही करें।

जलाभिषेक वा प्रक्षाल-पाठ

(प्रक्षाल करते समय पढ़ना चाहिये)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान।।

ढाल मंगल की, छंद अडिल्ल और गीता

श्रीजिन जगमें ऐसो कों बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अंत जू।।
इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी।
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवनधनी।।

अनुपम अमित तुम गुणनि-वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरैं हम उर कोषमें सो अकथ-गुण-मणि-राश है।।
पै निजप्रयोजन सिद्धि की तुम नाम में ही शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातैं नाम ही में भक्ति है।।१।।

ज्ञानावरणी दर्शन-आवरणी भने।
कर्म मोहनी अंतराय चारों हने।।
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में।
इंद्रादिक के मुकुट नये सुरथान में।।

तब इन्द्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरन-युत वंदत भयो।
तुम पुन्य को प्रेरयो हरी ह्वै मुदित धनपति सौं चयो ।।
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपद को करौ।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ।।२।।

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती ।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अती।।
वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ।
दे प्रदच्छिना बार बार वंदत भयौ।।

अति भक्ति-भीनो नम्र-चित है समवशरण रच्यौ सही।
ताकी अनूपम शुभ गती को, कह न समरथ कोउ नहीं।।
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं।
नग-जड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं।।३।।

सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्‌भुत दिपै।
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै।।
तीनछत्र सिर शोभित चौंसठ चमरजी।
महा भक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी।।

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया।।
मुनि आदि द्वादश सभाके भविजीव मस्तक नायकें ।
बहुभांति बारंबार पूजैं, नमैं गुणगण गायकैं।।४।।

परमौदारिक दिव्य देह पावन सही ।
क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं।।
जन्म जरामृति अरति शोक विस्मय नसे।
राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे।।

श्रमबिना श्रमजलरहित पावन अमल ज्योति-स्वरूपजी।
शरणागतनिकी अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी।।
ऐसे प्रभू की शांतिमुद्रा को न्हवन जलतैं करैं।
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं हम भानु ढिग दीपक धरैं।।५।।

तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो।।
मैं मलीन रागादिक मलतैं है रह्यो।
महा मलीन तनमें वसु-विधि-वश दुख सह्यो।।

बीत्यो अनंतो काल यह मेरी अशुचिता ना गई ।
तिस अशुचिता-हर एक तुम ही, भरहु बांछा चित ठई।।
अब अष्टकर्म विनाश सब मल रोष-रागादिक हरौ।
तनरूप कारा-गेहतैं उद्धार शिव वासा करौ।।६।।

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गये।
आवागमन विमुक्त राग-वर्जित, भये ।।
पर तथापि मेरो मनोरथ पूरत सही।
नय-प्रमानतैं जानि महा साता लही।।

पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरूं ।
साक्षात् श्रीअरहंत का मानों न्हवन परसन करूं ।।
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंध तैं ।
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै शर्म सब विधि तासतैं।।७।।

पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतैं।
पावन पानि भये तुम चरननि परसतैं।।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यानतैं।
पावन रसना मानी, तुम गुण गानतैं।।

पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरण-धनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी; पूर्णभक्ति नहीं बनी।।
धन धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिव-घर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणिकुंभ भर भक्ती करी।।८।।

विघन-सघन-वन-दाहन-दहन प्रचंड हो।
मोह-महा-तम-दलन प्रबल मारतण्ड हो।।
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो।
जग-विजयी जमराज नाश ताको करो।।

आनन्द-कारण दुख-निवारण, परम-मंगल-मय सही।
मोसों पतित नहिं और तुमसों, पतित-तार सुन्यौ नहीं।।
चिंतामणी पारस कल्पतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नवका जे चढ़े, ते भये भवदधि-पार ही।।६।।

दोहा

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार।।१०।।

।। इति हरजसराय कृत अभिषेक पाठ।।

समुच्चय पूजन

दोहा

देव-शास्त्र गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा नमूँ चित्त हुलसाय।।

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह, विद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह अनन्तानन्त-सिद्ध-परमेष्ठिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह, विद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह अनन्तानन्त-सिद्ध-परमेष्ठिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्रीदेव-शास्त्र-गुरुसमूह, विद्यमानविंशतितीर्थंकरसमूह अनन्तानन्त-सिद्ध-परमेष्ठि- समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

वीरछन्द

अनादिकाल से जग में स्वामिन् जल से शुचिता को माना,
शुद्ध निजातम सम्यक्‌रत्नत्रय-निधि को नहीं पहिचाना।
अब निर्मल रत्नत्रय-जल ले श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-आताप मिटावन की निज में ही क्षमता समता है,
अनजाने अब तक मैंने पर में की झूठी ममता है।
चन्दन सम शीतलता पाने श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो, अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यश्च संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद के बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनि में,
अष्ट कर्म के नाश करन को अक्षत तुम ढिंग लाया मैं।
अक्षयनिधि निजकी पाने अब श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने शील स्वभाव नशाया है,
मन्मथ बाणों से बिंध करके चहुँगति दुःख उपजाया है।
स्थिरता निज में पाने को श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो, अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा.।

षट् रस-मिश्रित भोजन से ये भूख न मेरी शान्त हुई,
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय-मन इच्छा शमन हुई।
सर्वथा भूख के मेटन को श्री देव शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो, अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़-दीप विनश्वर को अब तक समझा था मैंने उजियारा,
निज-गुण दरशायक ज्ञानदीप से मिटा मोह का अंधियारा।
ये दीप समर्पित करके मैं श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अनन्तानन्तसिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से कर्मों को नहीं जलायेगी,
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो राग द्वेष नशायेगी।
उस शक्ति-दहन प्रगटाने को, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योअनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यश्च अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बदाम श्री फल लवंग चरणन तुम ढिंग मैं ले आया,
आतम रस भीने निज गुणफल मम मन अब उनमें ललचाया।
अब मोक्ष-महाफल पाने को श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योअनन्तानन्त सिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को कर में ये आठों द्रव्य लिये,
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से निज में निजगुण प्रकट किये।
यह अर्घ्य समर्पण करके मैं श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ,
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योअनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यश्च अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

देव शास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जयमालिका, करूँ स्तवन गुणगान।।

भुजंगप्रयात

नसे घातिया कर्म जु अर्हन्त देवा,
करें सुर-असुर-नर-मुनि नित्य सेवा।

दरश-ज्ञान-सुख-बल अनन्त के स्वामी।
छियालीस गुण युत महाईश नामी।।
तेरी दिव्य-वाणी सदा भव्य मानी,
महा-मोह विध्वंसिनी मोक्ष-दानी।
अनेकान्तमयं द्वादशांगी बखानी,
नमो लोक माता श्री जैनवाणी।
विरागी अचारज उवज्झाय साधू
दरस-ज्ञान भण्डार समता अराधू।
नगन वेषधारी सु एका विहारी,
निजानन्द मंडित मुकति पथ प्रचारी।।
विदेहक्षेत्र में तीर्थंकर बीस राजे,
विरहमान बन्दूँ सभी पाप भाजे।
नमूँ सिद्ध निर्भय निरामय सुधामी,
अनाकुल समाधान सहजाभिरामी।।

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धरले रे।
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तरले रे।।५।।

ओं ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो, अनन्तानन्तसिद्ध-परमेष्ठिभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अडिल्य

देव शास्त्र गुरु राय महासुखदाय जी,
तीर्थंकर शुभ बीस सिद्ध जिन राय जी।
नमो सु मन वचन काय हर्ष मन लाय जी,
पुत्र मित्र धन बढ़े अमर पद पाय जी।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालय अर्घ्य (भाषा)

भूत भविष्यत वर्तमान की, तीस चौबीसी मैं ध्याऊँ।
चैत्य चैत्यालय कृत्रिमाकृत्रिम, तीन लोक के मन लाऊँ।।

ओं ह्रीं त्रिकालसम्बनधिकृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्यभक्ति आलोचन चाहूँ कायोत्सर्ग अघ नाशन हेत।
कृत्रिमाकृत्रिम तीनलोक में राजत हैं जिनबिम्ब अनेक।।
चतुर निकाय के देव जजें ले अष्ट द्रव्य निजभक्ति समेत।
निज शक्ति अनुसार जजूँ मैं कर समाधि पाऊँ शिवखेत।।

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

पूर्व मध्य अपराह्न की बेला, पूर्वाचार्यों के अनुसार।
देव वन्दना करूँ भाव से सकल कर्म की नाशन हार।।
पंच महा गुरु सुमरन करके कायोत्यर्ग करूँ सुखकार।
सहज स्वभाव शुद्ध लख अपना जाऊँगा अब मैं भव पार।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

(नौ बार णमोकार मंत्र जपें)

चैत्यवृक्ष, चैत्यसदन, प्रतिमा या बिम्ब की पूजा अर्चा चैत्यभक्ति कहलाती है। चैत्य और चैत्यालयों की भक्ति से सातिशय पुण्य का बन्ध होता है। अनन्त कर्मों की निर्जरा होती है। इसलिए पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है –

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्य तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्तये विभवानामलयालीस्ताः।।

तीनों लोकों में तीर्थंकर परमदेव के जितने भी चैत्यालय हैं उन सबको संसार की दुःखाग्नि को शान्त करने के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

इसी को स्वीकार कर सभी को त्रिलोक सम्बन्धी सभी चैत्य–चैत्यालयों की वन्दना नित्य अवश्य करना चाहिए।

पंच-परमेष्ठी पूजन

स्थापना

श्री अरहन्त छियालिस गुणयुत अष्ट सुगुणयुत सिद्ध अधीश।
छत्तिस पच्चिस आठवीस गुण धनी सूरि उवझाय मुनीश।।
ये ही सार पंच पद जग में इनके चरण नमाऊं शीश।
थापूं तीन योग शुचि करके मुक्त मन मंदिर वसो जगीश।।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा श्री पंचपरमेष्ठिनः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा श्री पंचपरमेष्ठिनः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा श्री पंचपरमेष्ठिनः ! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

मैं पूजूँ पद अरहंत सिद्ध भगवंत सूरि गुरु संत साधु दुख हरना।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।।टेक।।

धारे जो जन्म अशेष, बचा नहिं देश,
मध्य प्रदेश आठ भी घेरे।
सो क़हूँ कहाँ तक किये सफल भव फेरे।।
सुरलोक मनुज पर्याय तिरियतन मांहि
दुख सुख पाय, विविध विध भटका।
नारक गति में भी दुख का पाया खटका।।
ले जल परिपूरित झारी। तुझ पर धारा त्रय डारी।।
पद पंच परम सुखकारी। पूजूँ त्रयताप निवारी।।
त्रय जन्म जरा मृति ताप सहे चुपचाप।

चखे फल, पाप भूल की भारी।
अब पकरे तुम्हरे चरण सब टारो।
प्रभु पकड़ो मेरो हाथ राखिये साथ,
आप हो नाथ लिया हे शरणा।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं लख चौरासी जौण, किया भव भौण,
बुरी थी होण ऋषिवरजी
अब कैसे छूटे दुःख सुनो मम अरजी।।
जिमि मिटै कर्म का फंद जनित दुःख द्वंद्व।
मिले सुखकंद कहो तुम ऐसी
प्रभु बिना तुम्हारे नहीं बनै तुम जैसी।।
यह मलयज चंदन सारा। ले तुम पद प्रति विस्तारा।।
तन ताप मिटावन हारा। पै नहीं आत्महित कारा।।
यह मिला भवोदधि ताप, सुकरम प्रताप,
प्रभो बिन आप टरै ना टारा।
तुम ही मुक्त कारज हेतु, न और सहारा।।
यों शरण गही मैं आय, सुगंध चढ़ाय,
विमल गुण गाय, मरण परिहरना।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षणभंगुर सब संजोग, विषय हैं रोग
विषम विषभोग कि भव भव दुखदा।
यों सब सांसारिक योग नहीं कोई सुखदा।।
अब तुमरे चरण प्रसाद, रहा न विषाद,

भोग की याद न चित में आवे।
प्रभु करुं तुम्हारी सेव, भ्रमण मिट जावे।।
अक्षत लेकर मनहारी। शुभ पुंज करुं भर थारी।।
संसार संपदा सारी। रुचती जियको नहि प्यारी।।
कब शुद्ध निजातम सौख्य, मिले पद मोक्ष,
टेर सब कर्म की फाँसी।
कब वन निराकुल, बनूँ मोक्ष का वासी।।
मैं सुमरुँ बारम्बार त्रियोग सम्हार शरण दातार आपके।
चरणा भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।।

ओं हां हीं हूं हौं हः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

है दुसह काम का भोग, विनाशत जोग,
हरत उपयोग महादुखकारी।
वश हुए काम के घने सूर धनुधारी।।
सो भगा आपसे आप, अहो निष्पाप
महान प्रताप आपके माँहीं।
हो आप परम अविकार, और कोउ नाहीं।।
ये पुष्प काम के बाणा, लखि भेंट करुँ प्रभु नाना।
पुद्गल का सारा बाना, है आत्मा को दुखदाना।।
हमें अपने सुख के काज, छोड़ दे राज,
पुष्प क्या साज चाह यह भारी।
पै चंरण मोह का उदय है बाधाकारी।।
मुनिव्रत धारण की आस, चित्त में खास,
करुं अभ्यास गहे तुम चरणा।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।।

ओं हां हीं हूं हौं हः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

है क्षुधा महादुखदान, रोग बलवान जानि अनर्थ
अपार संज्ञा आहार वश जीव जगत के सार।।
सो प्रबल रोग लिया जीत, आप निर्भीक,
हुए जगमीत अमितबल सार ।
संसार सिन्धु से भव्य घनेर तार।।
नैवेद्य न क्षुधा निवारी । करता दुगुणी बढवारी।
ले अरघ चरु भरि थारी। प्रभु मेटो क्षुधा हमारी ।।
हम क्षुधा निवारण काज, विविध सर साज,
छोड़ कर लाज, मोह में भूले ।
खाये बहु भक्ष्य अभक्ष्य विषय में भूले।।
अब पाये श्री जिनराज, मोह गया भाज,
भई चित्त लाज नैन विच झरना ।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अति फैला मोह अंधेर, लिये सब घेर,
दिये भव फेर, न इससे सूझे ।
तब कैसे आप पर विवेक हम बूझे।।
प्रभु दिया आपने त्याग, मोह मदराग,
ज्ञान चित पाग, स्वपर को जाना।
हम लखैं और सब ठौर मोह का बाना।।
दीपक यह तिमिर मिटावे पै मूर्ति पदार्थ बतावैं ।
रहि आत्मरूप दरसावे, यों दीपक आरति लावे।।
अंतर अंधेर मिट जाय सो किस विध थाय,
ध्यान में लाय कभी न विचारा ।

पूजे बहु मोहीं देव न हित निरधारा।।
अब हुआ हमें कुछ ज्ञान, आत्म का भान,
सत्य श्रद्धान मोह का खिरना।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।

ओं हां हीं हूं हौं हः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जिय के कषाय सम्बन्ध, कर्म के खंड,
बन्धे दृढ़ बन्ध दिलावे गोते ।
जो एक देह छुड़ा अन्य से जोते।।
इम घरि तन अपरंपार, फिरा संसार,
सहे दुख भार, कर्म के झोखे।
नहिं लगा जीव का वार मोह के धोखे।।
प्रभु हो भव सिन्धु उबारी, यो तुम पदसेव चितारी
दसगंध अगनि में डारी ।
विधि अष्ट हरो दुखकारी ।।
जिम कुंभकार का चाक, कर्म परिपाक,
अनेक विपाक फिर बहु फेर।
अब काढ़ि भँवर से नाव लगादो नेर।।
अब मिल जावे पद मोख, निराकुल सौख्य,
जहाँ नहि दोष, जन्म जर-मरणा।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।

ओं हां हीं हूं हौं हः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तन इन्द्रिय पोषक खास, भखे फल राशि,
विविध करि आस नहीं सुख पाया।
खाते खाते ही क्षण में स्वाद दिलाया।।
यों मैंने काल किरोड़ भाव के जोर,

आसवश घोर कर्म अति बाँधे।
नहिं मिला यथार्थ उपाय आस जो साधे।।
बहु चार बढ़ावन वार। लखि भेंट करूं फल सार ।।
प्रभु तुम अनंतगुण धार। भवजल से करहुँ किनार।।
वर मोक्ष नगर का द्वार सत्य अधिकार,
रत्नत्रय सार आपने खोला।
सो स्याद्वाद मत सत्य तुला से तोला।।
प्रभु हो देवो के देव, चहूं मैं सेव, सत्य स्वयमेव आपका शरणा।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा ।

ओं हां ह्रीं हूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इंद्रिय सुखकारी द्रव्य भोग लिये सर्व,
किया अतिगर्व न हित पहिचाना।
आय पाप उदय सुख की क्षति में दुखमाना।।
धरि मोह भाववश झूल, उदय शुभ फूलि,
पाप को शूल समझकर रोये।
यों मानुष भव के दिवस वृथा हम खोये।।
अब पा कुछ ज्ञान उजारा। हित अहित विवेक चितारा।।
ले अर्घ्य अमोल संवारा। प्रभु अग्रधर सुखकारा ।।
अब दरस मोह अंधियारा, मिटा दुखकारा,
चित्त के द्वार खोलि हम परखे।
सब द्वेषी रोगी मिले, न कोई तुम सरखे।।
यों करके परख विचार, भक्ति चितधारि,
देव सब टारि लिया है शरणा।
भव भ्रमण मिटावो नाथ लिया तुम शरणा।।

ओं हां ह्रीं हूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

नमस्कार करि भाव से, त्रिभुवन पूज्य दयाल।
पंच परमपद गुण अमल वरणौ विरुद विशाल।।
श्री अरहंत जिनेश ने दिया तत्त्व उपदेश।
हम उनका उपकार नित सुमिरण करैं विशेष।।
सुमिरण करैं विशेष-जति जिन लोक उजागर।
धर्म तीर्थंकर वंदनीय केवलि गुण सागर।।
मंगल उत्तम शरण कीर्ति-पूजा स्तुति लायक।
हमैं दीजिये बोधि, समाधि, सुगति वरदायक।।
नमन करैं हम सिद्धपद, ध्यावैं सिद्ध स्वरूप।
अविचल, अविनाशी, सुखी चेतनरूप अनूप।।
चेतनरूप अनूप, कर्ममलरहित, गुणान्वित।
द्रष्टालोक अलोक प्रकट सब हस्तामलकवत्।।
ज्ञायक हो प्रभु आप दुख हम जो नित भरते।
लहैं निराकुल सौख्य सिद्ध पद मंत्र उचरते।।
तीर्थंकर ने जो दिया हितकर श्रुत उपदेश।
द्वादशांगमय सो भया गणधर ग्रंथिन विशेष।।
गणधर ग्रंथिन विशेष तासु आधार सूरिगण।
रचे ग्रंथ बहु तदनुसार चलि भविजन।।
रक्षक चउविध श्रमण संघ के ज्ञान भंडारे।
श्री आचारज पद पूज्य आराध्य हमारे।।

उपाध्याय पद के धनी पाठक परम दयाल।
उनका ध्यान किये मिटै मिथ्या मोह विशाल।।
मिथ्या मोह विशाल हरत जे आत्मध्यानी।
पढ़े पढ़ावै द्वादशांग श्रुत पाठक ज्ञानी।।
श्रुत परिपाठी अविच्छिन्न उन्हीं से पावैं।
पर उपकारी पाठक पद को नित ही ध्यावैं।।
आठबीस गुण के धनी, ज्ञान ध्यान में लीन।
द्वादश बिध तप आचरैं सदाचार प्रवीण।।
सदाचार प्रवीण तजैं मुनि सकल गृहारम्भ।
कर्म निर्जरा हेतु जिन्हों को सारा प्रारम्भ।।
सारे साधन सिद्धि साधने की जो धारैं।
यातैं अंजलि जोरि साधुपद मंत्र चितारैं।।
श्री अरहंता सिद्ध महंता आचारज की भक्तिकरी।
श्री उवझाया मुनिगण गाया पंच परमपद विनति करी।।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा पंचपरमेष्ठिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच परमपद का स्मरण दायक सकल समृद्धि।
सघन विघन सब नाश करि पावें त्रिभुवन सिद्धि।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपामि)

नवदेवता पूजा

स्थापना (गीता छन्द)

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं।
जिनधर्म जिनआगम जिनेश्वरमूर्ति जिनगृह वंद्य हैं।।
नव देवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें।
आह्वान कर थापें यहाँ मन में अतुल श्रद्धा धरें।।

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्यचैत्यालयसमूह ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्यचैत्यालयसमूह ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्मजिनागमजिनचैत्यचैत्यालयसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

गंगानदी का नीर निर्मल, बाह्य मल धोवे सदा।
अंतर मलों को क्षालने को नीर से पूजूँ मुदा।।
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकांता वरें।।

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर मिश्रित गंध चंदन, देह ताप निवारता।
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता।।नव०।।

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षीरोदधी के फेन सम सित तंदुलों को लायके।
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सुचढ़ायके।।

नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नवनिधि ऋद्धि मंगल पाय शिवकांता वरें।।

ओं ह्रीं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चम्पा चमेली केवड़ा, नाना सुंगधित ले लिये।
भव के विजेता आपको, पूजंत सुमन अर्पण किये।।नव०।।

ओं ह्रीं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में।
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु पूजहूँ नत भाल मैं।।नव०।।

ओं ह्रीं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर ज्योति जगमगे दीपक लिया निज हाथ में।
तुम आरती तम वारती, पाऊँ सुज्ञान प्रकाश मैं।।नव०।।

ओं ह्रीं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगंधधूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊँ सदा।
निज आत्मगुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझसे विदा।।नव०।।

ओं ह्रीं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊँ थाल में।
उत्तम अनूपम मोक्ष फल के, हेतु पूजूँ आज मैं।।नव०।।

ओं ह्रीं अर्हंत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक सुधूप फलार्घ्य ले।
वर रत्नत्रयनिधि लाभ यह बस अर्घ्य से पूजत मिले।।नव०।।

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जलधारा से नित्य मैं, जगकी शांति हेत।
नवदेवों को पूजहूँ, श्रद्धाभक्ति समेत।।

शांतये शांतिधारा

नाना विध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय।
मैं पूजूँ नव देवता, पुष्पांजली चढ़ाय।।

दिव्यपुष्पांजलिः

जाप्य– ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्पोपाध्याय सर्वसाधु–जिनधर्म–जिनागम जिनचैत्य–चैत्यालयेभ्योनमः (६ बार पढ़े)

जयमाला

सोरठा

चिच्चिंतामणिरत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो।
गाऊँ गुणमणिमाल, जयवंते वर्तो सदा।।१।।

चाल (हे दीन बन्धु)

जय जय श्री अरिहंत देवदेव हमारे
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे।।
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूँ।
जय अष्ट कर्ममुक्त की मैं अर्चना करूँ।।२।।

आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं।
दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं।।
जैवंत उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी।
सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी।।३।।

जय साधु अठाईस गुणों को धरें सदा।
निज आत्मा की साधना से च्युत न हों कदा।।

ये पंच परमदेव सदा वंद्य हमारे।
संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें।।४।।

जिनधर्म चक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा।।
जिनकी ध्वनि पीयूष को जो पान करेंगे।
भव रोग दूर कर वे मुक्ति कांत बनेंगे।।५।।

जिनचैत्य की जो वंदना त्रिकाल करें हैं।
वे चित्स्वरूप नित्य आत्मलाभ करे हैं।।
कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजें।
वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें।।६।।

नव देवताओं की जो नित आराधना करें।
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें।।
मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूँ।
सम्पूर्ण "ज्ञानमती" सिद्धि हेतु ही भजूँ।।७।।

दोहा

नवदेवों को भक्तिवश, कोटि कोटि प्रणाम।
भक्ती का फल मैं चहूँ, निजपद में विश्राम।।

ओं ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुजिनधर्म-जिनागम-जिन चैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा, दिव्यपुष्पांजलिः।

गीता छन्द

जो भव्य श्रद्धाभक्ति से नवदेवता पूजा करें।
वे सब अमंगल दोष हर, सुख शांति में झूला करें।।
नवनिधि अतुल भंडार ले, फिर मोक्ष सुख भी पावते।
सुखसिंधु में हो मग्न फिर, यहाँ पर कभी न आवते।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

पंचबालयति-जिनपूजा

श्री जिन पंच अनंग-जित, वासुपूज्य मलि नेमि।
पारसनाथ सुवीर अति, पूजूं चित धर प्रेम।।१।।

ओं ह्रीं पंचबालयति-तीर्थंकराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं पंचबालयति-तीर्थंकराः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं पंचबालयति-तीर्थंकराः ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् (सन्नि०)

अथाष्टक

शुचि शीतल सुरभि सुनीर लायो भर झारी।
दुख जामन मरन गहीर, याकों परिहारी।।
श्री वासुपूज्य मलि नेमि, पारस वीर अति,
नमूँ मन वच तन धरि प्रेम पाँचों बालयति।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन केशर कर्पूर, जल में घसि आनौ,
भव तप भंजन सुखपूर, तुमको मैं जानौ।। श्री वासु०।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रभ्यो भवातापविनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

वर अक्षत विमल बनाय, सुवरण थाल भरे,
बहु देश देश के लाय, तुमरी भेंट धरे।।श्री वासु०।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

यह काम सुभट अति सूर, मन में क्षोभ करौ,
मैं लायौ सुमन हजूर, याको वेग हरौ ।।श्री वासु०।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविनाशाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

षट् रस पूरित नैवेद्य, रसना सुखकारी,
द्वय कर्म वेदनी छेद, आनन्द है भारी।।श्री वासु०।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि दीपक जगमग ज्योति, तुम चरणन आगे,
मम मोहतिमिर क्षय होत, आतम गुण जागे।।श्री वासु०।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्योमोहान्धकारविनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ले दशविधि धूप अनूप खेऊं गंध मई,
दशगंध दहन जिन भूप तुम हो कर्म जई।। श्री वासु०।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता अरु दाख बदाम श्रीफल लेय घने।
तुम चरण जजूं गुणधाम द्यौ सुख मोक्ष तने।।श्री वासु०।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ, अरघ बनावत हैं,
वसुकर्म अनादि संयोग ताहि नशावत हैं।
श्री वासुपूज्य मलि नेमि, पारस वीर अति,
नमूँ मन वच तन धरि प्रेम पाँचों बालयति।।

ओं ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

बालब्रह्मचारी भये, पांचों श्री जिनराज ।
तिनकी अब जयमालिका, कहूं स्वपर हितकाज।।

पद्धरी छन्द

जय जय जय जय श्री वासुपूज्य, तुम सम जग में नहिं और दूज।
तुम महा शुक्र सुरलोक छार, जब गर्भ मात माहीं पधार।।
षोड़श सपने देखे सुमात, बल अवधि जान तुम जन्म तात।
अति हर्ष धार दंपति सुजान, बहु दान दियो जाचक जनान।।
छप्पन कुमारिका कियो आन, तुम मात सेव बहु भक्ति ठान।
छः मास अगाऊ गर्भ आय, धनपति सुवरन नगरी रचाय।।

तुम तात महल आँगन मंझार, तिहुं काल रतन धारा अपार।
वरषाए षट् नव मास सार, धनि जिन पुरुषन नयनन निहार।।
जय मल्लिनाथ देवन सुदेव, शत इन्द्र करत तुम चरण सेव।
तुम जनमत ही त्रय ज्ञान धार, आनन्द भयो तिहुं जग अपार।।
तब ही ले चहुं विधि देव संग, सौधर्म इन्द्र आयो उमंग।
सजि गज ले तुम हरि गोद आप, वन पाँडुक शिल ऊपर सुथाप।।
क्षीरोदधि तैं बहु देव जाय, भरि जल घट हाथों हाथ लाय।
करि न्हवन वस्त्र भूषण सजाय, दे मात नृत्य ताण्डव कराय।।
पुनि हर्ष धार हृदय अपार, सब निर्जर तब जय जय उचार।
तिस अवसर आनन्द हे जिनेश ! हम कहिवे समरथ नहीं लेश।।
जय जादोपति श्री नेमिनाथ, हम नमत सदा जुग जोरि हाथ।
तुम ब्याह समय पशुवन पुकार, सुनि तुरत छुड़ाये दया धार।।
कर कंकण अरु सिर मौर बन्द, सो तोड़भये छिन में स्वच्छन्द।
तब ही लौकान्तिक देव आय, वैराग्य थुति कराय।।
ततक्षण शिविका लायो सुरेन्द्र, आरुढ़ भये तापर जिनेन्द्र।
सो शिविका निजकंधन उठाय, सुरनर खग मिल तपवन ठराय।।
कच लौंच वस्त्र भूषण उतार, भये जती नगन मुद्रा सुधार।
हरि केश लेय रतनन पिटार, सो क्षीर उदधि माहीं पधार।।
जय पारसनाथ अनाथ नाथ, सुर असुरनमत तुम चरणमाथ।
जुग नाग जरत कीनो सुरक्ष, यह बात सकल जग में प्रत्यक्ष।।
तुम सुरधनुसम लखिजग असार, तप तपत भये तन ममत छांड़।
शठ कमठ कियो उपसर्ग आय, तुम मन सुमेर नहिं डगमगाय।।
तुम शुक्लध्यान गहि खड़गहाथ, अरि च्यारि घातियाकरसुघात।
उपजायो केवल ज्ञान भानु, आयो कुबेर हरि बच प्रमाण।।
की समोशरण रचना विचित्र, तहाँ खिरत भई वाणी पवित्र।
मुनि सुर नर खग तिर्यंच आय, सुनि निज निज भाषा बोधपाय।।

जय वर्द्धमान अन्तिम जिनेश, पायो न अंत तुम गुण गणेश।
तुम च्यारि अघाती करम हान, लियोमोक्ष स्वयं सुख्ख अचलथान।
तब ही सुरपति बल अवधि जान, सब देवन युत बहु हर्ष ठान।
सजि निज वाहन आयो सुतीर, जहं परमौदारिक तुम शरीर।।
निर्वाण महोत्सव कियो भूर, ले मलयागिर चंदन कपूर।
बहु द्रव्य सुगंधित सरससार, तामे श्री जिनवर वपु पधार।।
निज अगनिकुमारिन मुकुट नाय, तिहंरतनन शुचिज्वालाउठाय।
तस सर माहीं दीनी लगाय, सो भस्म सबन मस्तक चढ़ाय।।
अति हर्ष थकी रचि दीप माल, शुभ रतन मई दश दिश उजाल।
पुनि गीत नृत्य बाजे बजाय, गुणगाय ध्याय सुरपति सिधाय।।
सो थान अबै जग में प्रत्यक्ष, नित होत दीप माला सुलक्ष।
हे जिन ! तुम गुण महिमा अपार, बसु सम्यक् ज्ञानादिक सु सार।।
तुम ज्ञान माहिं तिहुं लोक दर्व, प्रतिबिम्बित हैं चर अचर सर्व।
लहि आतम अनुभव परम ऋद्धि, भये वीतराग जग में प्रसिद्ध।
ह्वै बालयती तुम सबन एम, अचरज शिव काँता वरी केम।
तुम परम शाँति मुद्रा सुधार, किय अष्ट कर्म रिपु को प्रहार।।
हम करत बीनती बार-बार, कर जोर स्व मस्तक धार-धार।
तुम भये भवोदधि पार-पार, मोंको सुवेग ही तार-तार।।
अरदास दास ये पूर-पूर, वसु कर्म शैल चक चूर-चूर।
दुख सहन दास अब शक्ति नाहिं, गहि चरण शरण कीजे निवाह।।

चौपाई

पाँचो बाल यती तीर्थेश, तिनकी यह जयमाल विशेष।
मन बच काय त्रियोग सम्हार, जे गावत पावत भव पार।।

ओं ह्रीं श्री पंचबालयतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ब्रह्मचर्य सों नेह धरि, रचियो पूजन ठाठ।
पाँचों बाल यतीन का, कीजे नित प्रतिपाठ।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री बाहुबली पूजा

कर्म अरिगण जीति के, दरशायो शिव पंथ।
प्रथम सिद्ध पद जिन लयो भोग भूमि के अंत।।१।।
समर दृष्टि जल जीत लहि, मल्लयुद्ध जय पाय।
वीर अग्रणी बाहुबलि, वंदों मन वच काय।।२।।

ओं ह्रीं श्रबाहुबलीपरमयोगीन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्र !अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अथ अष्टकं चाल जोगीरासा

जन्म जरा मरनादि तृषा कर, जगत जीव दुख पावै।
तिहि दुख दूर करन जिनपद को पूजन जल ले आवै।।
परम पूज्य वीराधिवीर जिन बाहुबलि बलधारी।
जिनके चरण कमल को नित प्रति धोक त्रिकाल हमारी।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्व०स्वाहा।

यह संसार मरुस्थल अटवी तृष्णा दाह भरी है,
तिहि दुख वारन चंदन लेकैं जिन पद पूज करी है।।परम.।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि० स्वाहा।

स्वक्ष सालि शुचि नीरज रजसम गंध अखंड प्रचारी,
अक्षय पद के पावन कारन पूजे भवि जगतारी।।परम.।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा०

हरिहर चक्रपति सुर दानव मानव पशु बस याकै,
तिहि मकरध्वज नासक जिनकोंपूजों पुष्पचढ़ाकै।।परम.।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

दुखद त्रिजग सीवन को अति ही दोष क्षुधा अनिवारी,
तिहि दुख दूर करन को चरु वर ले जिन पूज प्रचारी।
परम पूज्य वीराधिवीर जिन बाहुबलि बलधारी।
जिनके चरण कमल को नित प्रति धोक त्रिकाल हमारी।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व०स्वाहा।

मोह महातम में जग जीवन सिव मग नाहिं लखावै,
तिहि निरवारन दीपक करले जिनपद पूजन आवै।।परम.।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वापामीति स्वाहा।

उत्तम धूप सुगंध बनाकर दश दिश में महकावै,
दश विधि बंध निवारन कारण जिनवर पूज रचावै ।।परम.।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वापामीति स्वाहा।

सरस सुवरण सुगंध अनूपम स्वच्छ महासुचि लावै,
शिव फल कारण जिनवर पदकी फलसों पूज रचावै।।परम।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वापामीति स्वाहा।

वसु विधि के वस वसुधा सब ही परवश अति दुख पावै।
तिहिं दुख दूर करन को भविजन अर्घ जिनाग्र चढ़ावैं।।परम।।

ओं ह्रीं श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

जयमाला

आठ कर्म हनि आठ गुण प्रकट करे जिन रूप।
सो जयवंतो भुजवली प्रथम भये शिव भूप।।

कुसुमलता

जै जै जै जगतार शिरोमणि क्षत्रिय वंस असंस महान,
जै जै जै जग जन हितकारी दीनौ जिन उपदेश प्रमाण।
जै जै चक्रपति सुत जिनके सतसुत ज्येष्ठ भरत पहिचान,
जै जै जै श्रीऋषभदेव जिनसों जयवंत सदा जग जान।।१।।

जिनके द्वितीय महादेवी सुचि नाम सुनंदा गुण की खान,
रूप शील सम्पन्न मनोहर तिनके सुत भुजबली महान।
सवापंच शत धनु उन्नत तनु हरितवरण सोभा असमान,
बैडूर्यरजतमणि पर्वत मानो नील कुलाचल सम थिर जान।।२।।
तेजवंत परमाणु जगत में तिन करि रचो शरीर प्रमाण,
सत वीरत्व गुणाकर जाको निरखत हरि हरषै उर आन।
धीरज अतुल व्रज सम नीरज सम वीराग्रणि अति बलवान,
जिनछविलखिंमनुशशिछविलाजैकुसुमायुधलीनोंसुपुमान।।३।।
बालसमै जिन बाल चन्द्रमा शसि से अधिक धरे दुतिसार,
जो गुरुदेव पढ़ाई विद्या शस्त्र शास्त्र सब पढ़ी अपार।
ऋषभदेव ने पोदनपुर के नृप कीने भुजबली कुमार,
दई अयोध्या भरतेश्वर को आप बने प्रभुजी अनगार।।४।।
राजकाज षट्खंड महीपति सब दल लै चढ़ि आये आप,
बाहुबलि भी सन्मुख आये मंत्रिन तीन युद्ध दिये थाप।
दृष्टि, नीर अरु जाय सैन्यकी यातैं लड़िये आपों आप।।५।।
भरत भुजबलि भूपति भाई उतरे समर भूमि में जाय,
दृष्टि नीर रण थके चक्रपति मल्लयुद्ध तब करो अघाय।
पगतल चलत चलत अचला तब कंपत अचल शिखर ठहराय,
निषध नील अचलाधर मानौं भये चलाचल क्रोध बसाय।।६।।
भुज विक्रमबलबाहुबली ने लये चक्रपति अधर उठाय,
चक्र चलायो चक्रपति तव सो भी विफल भयो तिहि ठाय।
अति प्रचण्ड भुजदण्ड सुण्ड सम नृप शार्दूल बाहुबलि राय,
सिंहासन मंगवाय जास पै अग्रज को दीनों पधराय।।७।।

राजरमा रामासुर धनु में जोवन दमक दामिनी जान,
भोग भुजंग जंग सम जग को जान त्याग कीनों तिहि थान।
अष्टापद पर जाय वीरनृप वीर व्रतीधर कीनों ध्यान,
अचल अंग निरभंग संगतज संवतसरलों एक स्थान।।८।।
विषधर बंबी करी चरनतल ऊपर बेल चढ़ी अनिवार,
युगजंघा कटि बाहुबेढ़ि कर पहुँची वक्षस्थल परसार।
सिर के केश बढ़े जिस मांहीं नभचर पक्षी बसे अपार,
धन्य धन्य इस अचल ध्यान को महिमा सुर गावै उरधार।।६।।
कर्मनासि शिव जाय बसे प्रभु ऋषभेश्वर से पहले जान,
अष्ट गुणांकित सिद्ध शिरोमणि जगदीश्वर पद लयो पुमान।
वीरव्रती वीराग्रगन्य प्रभु बाहुबली जगधन्य महान,
वीरवृत्ति के काज जिनेश्वर नमैं सदा जिनबिंब प्रमान।।१०।।

दोहा

श्रवणबेलगुल विंध्यगिरि जिनवर बिंब प्रधान।
छप्पन फुट उतंगतनो खड्गासन अमलान।।१।।
अतिशयवंत अनंत बल धारक बिंब अनूप।
अर्घ चढ़ाय नमों सदा जै जै जिनवर भूप।।

ओं ह्रीं कर्मारिविजयी-वीराधिवीर-वीराग्रणी-श्रीबाहुबलीपरमयोगीन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

रक्षाबन्धन पूजा

श्री अकम्पनाचार्यादि सप्त-शत-मुनिपूजा

पूज्य अकम्पन साधु-शिरोमणि सात-शतक मुनि ज्ञानी।
आ हस्तिनापुर के कानन में हुए अचल दृढ़ ध्यानी।।
दुखद सहा उपसर्ग भयानक सुन मानव घबराये।
आत्म-साधना के साधक वे, तनिक नहीं अकुलाये।।
योगिराज श्री विष्णु त्याग तप, वत्सलता-वश आये।
किया दूर उपसर्ग, जगत-जन मुग्ध हुए हरषाये।।
सावन शुक्ला पन्द्रस पावन शुभ दिन था सुख दाता।
पर्व सलूना हुआ पुण्य-प्रद यह गौरवमय गाथा।।
शान्ति दया समता का जिनसे नव आदर्श मिला है।
जिनका नाम लिये से होती जागृत पुण्य-कला है।।
करूं वन्दना उन गुरुपद की वे गुण मैं भी पाऊं।
आह्वानन संस्थापन सन्निधिकरण करूं हर्षाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अथाष्टकम्

मैं उर-सरोवर से विमल जल भाव का लेकर अहो।
नत पाद-पद्मों में चढ़ाऊँ मृत्यु जनम जरा न हो।।
श्रीगुरु अकम्पन आदि मुनिवर मुझे साहस शक्ति दें।
पूजा करूं पातक मिटें, वे सुखद समता भक्ति दें।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यो जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सन्तोष मलयागिरि चन्दन निराकुलता सरस ले।
नत पादपद्मों में चढ़ाऊं विश्वताप नहीं जले।। श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यःसंसारतापविनाशनाय चंदन निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल अखंडित शुद्ध आशा के नवीन सुहावने।
नत पाद पद्मों में चढ़ाऊँ दीनता क्षयता हने।। श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्व० स्वाहा।

ले विविध विमल विचार सुन्दर सरस सुमन मनोहरे।
नत पाद-पद्मों में चढ़ाऊँ काम की बाधा हरे।। श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।

शुभ भक्ति घृत में विनय के पकवान पावन मैं बना।
नत पाद-पद्मोंमें चढ़ा मेटूं क्षुधाकी यातना।। श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

उत्तम कपूर विवेक का ले आत्म-दीपक में जला।
कर आरती गुरु की हटाऊँ मोह-तमकी यह बला।। श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्रीअक्पनाचार्यादिसप्तशत-मुनिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

ले त्याग-तपकी यह सुगन्धित धूप मैं खेऊं अहो।
गुरुचरण-करुणा से करम का कष्ट यह मुझको न हो।।श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

शुचि-साधना के मधुरतम प्रिय सरस फल लेकर यहाँ।
नत पाद-पद्मोंमें चढ़ाऊँ मुक्ति मैं पाऊँ यहाँ।। श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

यह आठ द्रव्य अनूप श्रद्धा स्नेह से पुलकित हृदय।
नत पाद-पद्मों में चढ़ाऊं भव-पार मैं होऊं अभय।। श्रीगुरु०।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

जयमाला

पूज्य अकम्पन आदि सात शतक साधक सुधी।
यह उनकी जयमाला वे मुझको निज भक्ति दें।।

वे जीव दया पालें महान, वे पूर्ण अहिंसक ज्ञानवान।
उनके न रोष उनके न राग, वे करें साधना मोह त्याग।।
अप्रिय असत्य बोलें न वैन, मन वचन काय में है न भेद।
वे महासत्य धारक ललाम, है उनके चरणों में प्रणाम।।
वे लें न कभी तृणजल, अदत्त, उनके न धनादिक में ममत्त।
वे व्रत अचौर्य दृढ़ धरें सार, है उनको सादर नमस्कार।।
वे करें विषय की नहीं चाह, उनके न हृदय में काम दाह।
वे शील सदा पालें महान, सब मग्न रहें निज आत्मध्यान।।
सब छोड़ वसन भूषण निवास, माया ममता स्नेह आस।
वे धरे दिगम्बर वेष शान्त, होते न कभी विचलित न भ्रांत।।
नित रहें साधना में सुलीन, वे सहैं परीषह नित नवीन।
वे करें तत्त्व पर नित विचार, है उनको सादर नमस्कार।।
पंचेंद्रिय दमन करें महान, वे सतत बढ़ावें आत्मज्ञान।
संसार देह सब भोग त्याग, वे शिव-पथ साधें सतत जाग।।
"कुमरेश" साधु वे हैं महान, उनसे पाये जग नित्य त्राण।
मैं करूं वंदना बार बार, वे करें भवार्णव मुझे पार।।
मुनिवर गुण-धारक पर-उपकारक, भव दुखकारक सुख-कारी।
वे करम नशायें सुगुण दिलायें, मुक्ति मिलायें भय-हारी।।

ओं ह्रीं श्रीअकम्पनाचार्यादि-सप्तशतमुनिभ्यो महार्घ्यं निर्व० स्वाहा ।

श्रद्धा भक्ति समेत जो जन यह पूजा करे।
वह पाये निज ज्ञान, उसे न व्यापे जगत दुख।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री विष्णुकुमारमहामुनि पूजा

स्थापना (लावनी छन्द)

श्री योगी विष्णुकुमार बाल वैरागी।
पाई वह पावन ऋद्धि विक्रिया जागी।।
सुन मुनियों पर उपसर्ग स्वयं अकुलाये।
हस्तिनापुर वे वात्सल्य-भरे हिय आये।।
कर दिया दूर सब कष्ट साधना-बल से।
पा गये शान्ति सब साधु अग्नि के झुलसे।।
जन जन ने जय जय किया मन भाया।
मुनियों को दे आहार स्वयं भी पाया।।
हैं वे मेरे आदर्श सर्वदा स्वामी।
मैं उनकी पूजा करूं बनूँ अनुगामी।।
वे दें मुझमें यह शक्ति भक्ति प्रभु पाऊं।
मैं कर आतम कल्याण मुक्त हो जाऊं।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुने ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुने ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (प्रतिष्ठापनम्)
ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुने ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

चाल जोगीरासा

श्रद्धा की वापी से निर्मल, भावभक्ति जल लाऊं।
जनम मरण मिट जाये मेरे इससे विनत चढ़ाऊं।।
विष्णुकुमारमुनीश्वर वन्दूं यति-रक्षा हित आये।
यह वात्सल्य हृदय में मेरे अभिनव ज्योति जगाये।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये जन्मजरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

मलयागिरि धीरज से सुरभित समता चन्दन लाऊं।
भव-भवकी आताप न हो यह इससे विनत चढ़ाऊं।। विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्द्रकिरण सम आशाओं के अक्षत सरस नवीने।
अक्षय पद मिल जाये मुझको गुरु सम्मुख धर दीने।।विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये अक्षय-पद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

उर उपवनसे चाह सुमन चुन विविध मनोहर लाऊँ।
व्यथित करे नहिं काम वासना इससे विनत चढ़ाऊं।।विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नव नव व्रत के मधुर रसीले मैं पकवान बनाऊं।
क्षुधा न बाधा यह दे पाये इससे विनत चढ़ाऊं।।विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मैं मन का मणिमय दीपक ले ज्ञान-वातिका जारूं।
मोह-तिमिर मिट जाये मेरा गुरु सम्मुख उजियारूं।।विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये मोहतिमिरविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

ले विराम की धूप सुगन्धित त्याग धूपायन खेऊं।
कर्म आठ का ठाठ जलाऊँ गुरु के पद नित सेऊँ।।विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा सेवा दान और स्वाध्याय विमल फल लाऊँ।
मोक्ष विमल फल मिले इसी से विनत गुरु पद ध्याऊं।। विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह उत्तम वसु द्रव्य संजोये हर्षित भक्ति बढ़ाऊं।
मैं अनर्घपद को पाऊं गुरुपद पर बलि बलि जाऊं।। विष्णु०।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्रावण-शुक्ला पूर्णिमा यति रक्षा दिन जान।
रक्षक विष्णु मुनीश की यह गुणमाल महान।।

छन्द पद्धड़ी

जय योगिराज श्रीविष्णु धीर, आकर तुम हर दी साधु-पीर।
हस्तिनापुर वे आये तुरन्त, कर दिया विपत का शीघ्र अन्त।।
वे ऋद्धि सिद्धि-साधक महान, दयावान वे ज्ञानवान।
धर लिया स्वयं वामन सरूप, चल दिये विप्र बनकर अनूप।।
पहुंचे बलि नृप के राजद्वार, वे तेज-पुंज धर्मावतार।
आशीष दिया आनन्दरूप, हो गया मुदित सुन शब्द भूप।।
बोला वर मांगो विप्रराज, दूँगा मनवांछित द्रव्य आज।
पग तीन भूमि याची दयाल, बस इतना ही तुम दो नृपाल।।
नृप हँसा समझ उनको अजान, बोले यह क्या लो और दान।
इससे कुछ इच्छा नहीं शेष, बोले वे ये ही दो नरेश।।
संकल्प किया दे भूमि दान, ली वह मन में अति मोद मान।
प्रगटाई अपनी ऋद्धि सिद्धि, हो गई देह की विपुल वृद्धि।।
दो पग में नापा जग समस्त, हो गया भूप बलि अस्त-व्यस्त।
इक पग को दो अब भूमिदान, बोले बलि से करुणा-निधान।।
नत मस्तक बलि ने कहा, अन्य है भूमि न मुझ पर हे अनन्य!
रख लें पग मुझ पर एक नाथ, मेरी हो जाये पूर्ण बात।।
कहकर तथास्तु पग रखा आप, सह सका न बलि वह भार ताप।
बोला तुरन्त ही कर विलाप, करदें अब मुझको क्षमा आप।।
मै हूं दोषी मैं हूँ अजान, मैंने अपराध किया महान।
ये दुखित किये सब साधु-सन्त, अब करो क्षमा हे दयावन्त!।।

तब की मुनिवर ने दया-दृष्टि, हो उठी गगन से महावृष्टि।
पा गये दग्ध वे साधु-त्राण, जन-जन के पुलकित हुए प्राण।।
घर घर में छाया मोद-हास, उत्सव ने पाया नव प्रकाश।
पीड़ित मुनियों का पूर्णमान, रख मधुर दिया आहारदान।।
युग युग तक इसको रहे याद, कर सूत्र बँधाया साह्लाद।
बन गया पर्व पावन महान, रक्षाबन्धन सुन्दर निधान।।
वे विष्णु मुनीश्वर परम सन्त, उनकी गुण-गरिमा का न अन्त।
वे करें शक्ति मुझको प्रदान, 'कुमरेश' प्राप्त हो आत्मज्ञान।।

घत्ता

श्री मुनि विज्ञानी आतम-ध्यानी।
मुक्ति-निशानी सुख-दानी।।
भव-ताप विनाशे सुगुण प्रकाशे।
उनकी करुणा कल्यानी।।

ओं ह्रीं श्रीविष्णुकुमारमुनये महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

विष्णुकुमार मुनीश को जो पूजे धर प्रीत।
वह पावे 'कुमरेश' शिव और जगत में जीत।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री रविव्रत पूजा

अडिल्ल स्थापना

यह भविजन हितकार, सु रविव्रत जिन कही।
करहु भव्यजन सर्व, सुमन देकें सही।।
पूजों पार्श्व जिनेन्द्र, त्रियोग लगायके।
मिटै सकल सन्ताप, मिलै निधि आयके।।
मतिसागर इक सेठ, सुग्रन्थन में कहो।
उनने भी यह पूजा कर आनन्द लहो।।
तातें रविव्रत सार, सो भविजन कीजिये।
सुख सम्पत्ति संतान, अतुल निधि लीजिये।।
प्रणमों पार्श्व जिनेश को, हाथ जोड़ सिर नाय।
परभव सुख के कारने, पूजा करूं बनाय।।
रविवार व्रत के दिना, ये ही पूजन ठान।
ता फल सम्पत्ति को लहैं, निश्चय लीजे मान।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

उज्ज्वल जल भरकें अतिलायो, रतन कटोरन माहीं।
धार देत अति हर्ष बढ़ावत, जन्म जरा मिट जाहीं।।
पारसनाथ जिनेश्वर पूजो, रविव्रत के दिन भाई।
सुख सम्पत्ति बहु होय तुरतही, आनन्द मंगल दाई।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

मलयागिर केशर अतिसुन्दर, कुंकुम रंग बनाई।
धार देत जिन चरनन आगे, भव आताप नशाई।।पारस०।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्व०स्वाहा।

मोतीसम अति उज्ज्वल तंदुल, लावो नीर पखारो।
अक्षयपद के हेतु भावसों, श्री जिनवर ढिग धारो।।
पारसनाथ जिनेश्वर पूजो, रविव्रत के दिन भाई।
सुख सम्पत्ति बहु होय तुरतही, आनन्द मंगल दाई।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बेला अरु मुचकुंद चमेली, पारिजात के ल्यावो।
चुन चुन श्रीजिन अग्र चढ़ाऊं, मनवांछित फल पावो।।पारस०।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बावर फैनी गुजिया आदिक, घृत में लेत पकाई।
कंचन थार मनोहर भरके, चरनन देत चढ़ाई।।पारस०।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

मणिमय दीप रतनमय लेकर, जगमग जोति जगाई।
जिनके आगे आरति करके, मोहतिमिर नश जाई।।पारस०।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चूरन कर मलयागिर चंदन, धूप दशांग बनाई।
तट पावक में खेय भाव सों, कर्मनाश हो जाई।।पारस०।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि बादाम सुपारी, भाँति भाँति के लावो।
श्रीजिन चरन चढ़ाय हरषकर, तातें शिव फल पावो।।पारस०।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, अर्घ बनावो भाई।
नाचत गावत हर्षभाव सों, कंचन थार भराई।।पारस०।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मन वचन काय त्रिशुद्ध करके, पार्श्वनाथ सु पूजिये।
जल आदि अर्घ बनाय भविजन, भक्तिवंत सु हूजिये।।

पूज्य पारसनाथ जिनवर, सकल सुखदातार जी।
जे करत हैं नर नारि पूजा, लहत सौख्य अपार जी

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

यह जग में विख्यात है, पारसनाथ महान।
तिन गुण की जयमालिका, भाषा करूं बखान।।

जय जय प्रणमों श्री पार्श्व देव, इन्द्रादिक तिनकी करत सेव।
जय जय सु बनारस जन्म लीन, तिहुँ लोक विषैं उद्योत कीन।।
जय जिनके पितु श्री अश्वसेन, तिनके घर भये सुख-चैन देन।
जय वामा देवी मात जान, तिनके उपजे पारस महान।।
जय तीन लोक आनन्द देन, भविजन के दाता भये ऐन।
जय जिनने प्रभु का शरण लीन, तिनकी सहाय प्रभुजी सो कीन।।
जय नाग नागिनी भये अधीन, प्रभु चरणन लाग रहे प्रवीन।
तज देह देवगति गये जाय, धरणेन्द्र पद्मावति पद लहाय।।
जय अंजन चोर अधम अजान, चोरी तज प्रभु को धरो ध्यान।
जय मृत्यु भये वह स्वर्ग जाय। ऋद्धि अनेक उनने सो पाय।।
जय मतिसागर इक सेठ जान, तिन अशुभकर्म आयो महान।
तिनके सुत थे परदेश मांहि, उनके मिलने की आश नांहि।।
जय रविव्रत पूजन करी सेठ, ता फल कर सबसे भई भेंट।
जिन-जिन ने प्रभु का शरण लीन, तिन ऋद्धि सिद्धि पाई नवीन।।
जयं रविव्रत पूजा करहिं जेय, ते सौख्य अनन्तानन्त लेय।
धरणेन्द्र पद्मावति हुये सहाय, प्रभु भक्त जान तत्काल आय।।
पूजा विधान इहि विधि रचाय, मन वचन काय तीनों लगाय।
जो भक्तिभावं जयमाल गाय, सो ही सुखसम्पत्ति अतुल पाय।।

बाजत मृदंग वीणादि सार, गावत नाचत नाना प्रकार।
तन नन नन नन नन ताल देत, सन नन नननन सुरभर सोलेत।।
ता थेई थेई थेई पग धरत जाय, छम छम छम छम घुंघरु बजाय।
जे करहिं निरत इहि भांत भांत, ते लहहिं सुक्ख शिवपुर सुजात।।

रविव्रत पूजा पार्श्व की, करैं भविक जन जोय।
सुख सम्पत्ति इह भव लहैं, आगे सुर पद होय।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रविव्रत पार्श्व जिनेन्द्र, पूज भवि मन धरें।
भव भव के आताप, सकल छिन में टरें।।
होय सुरेन्द्र नरेन्द्र, आदि पदवी लहे।
सुख सम्पत्ति सन्तान, अटल लक्ष्मी रहे।।
फेर सर्व विधि पाय, भक्ति प्रभु अनुसरें।
नानाविध सुख भोग बहुरि शिवतिय वरें।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपामि)

श्रीपार्श्वनाथ के पूर्वभव

१. मरुभूति
२. हाथी
३. बारहवें स्वर्ग में देव
४. अग्निवेग मुनि
५. सोलहवें स्वर्ग में देव
६. ब्रज्रनाभि चक्रवर्ती
७. ग्रैवेयक में अहमिन्द्र
८. आनन्द–कुमार
६. प्राणत स्वर्ग में देवेन्द्र

अनन्तर पार्श्वप्रभु का अवतार

पारस प्रभु ने कराया, चेतन रस का पान,
आत्मा को स्पर्श कर, जीवन बना महान।
लोहा जो कंचन बने, आत्मा बने भगवान,
प्रभु मैं भी तुमसा बनूँ, दीजे यह वरदान।।

क्षमावणी पूजा

छप्पयछंद

अंग क्षमा जिनधर्म तनों दृढ़ मूल बखानो।
सम्यक् रतन संभाल हृदय में निश्चय जानो।
तज मिथ्या विष मूल और चित निर्मल ठानो।
जिनधर्मी सों प्रीति करो सब पातक भानो।।
रत्नत्रय गह भविक जन, जिन आज्ञा सम चालिए।
निश्चय कर आराधना, कर्म राशि को जालिए।।

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपरत्नत्रयसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपरत्नत्रयसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्ररूपरत्नत्रयसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अथाष्टकम्

क्षमा गहो उर जीवड़ा, जिनवर वचन गहाय।।टेक।।
नीर सुगन्ध सुहावनो, पद्म द्रह को लाय।
जन्म रोग निरवारिये, सम्यक्रत्न लहाय।।क्षमा०।।१।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यो जन्म-जरा-मृत्य-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।।१।।

केसर चन्दन लीजिये, संग कपूर घसाय।
अलि पंकति आवत घनी, बास सुगन्ध सुहाय।।क्षमा० २।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।।२।।

शालि अखंडित लीजिए, कंचन थाल भराय।
जिनपद पूजों भावसों, अक्षयपद को पाय।।क्षमा०।।३।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधिसम्यक्चारित्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्ताये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।।३।।

पारिजात अरु केतकी, पहुप सुगन्ध गुलाब।
श्रीजिन चरण सरोज कूं, पूज हरष चित चाव।।क्षमा० ४।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।।४।।

शक्कर घृत सुरभी तनों, व्यंजन षट्रस स्वाद।
जिनके निकट चढ़ाय कर, हिरदे धरि आह्लाद।।क्षमा० ५।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।५।।

हाटकमय दीपक रचो, बाति कपूर सुधार।
शोधक घृतकर पूजिये, मोह तिमिर निरवार ।।क्षमा० ।।६

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यो मोहान्धाकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।।६।।

कृष्णागर करपूर हो, अथवा दशविध जान।
जिन चरणां ढिग खेइये, अष्ट करम की हान।।क्षमा० ७।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।।७।।

केला अम्ब अनार हो, नारिकेल ले दाख।
अग्रधरों जिन पद तने, मोक्ष होय जिन भाख।।क्षमा० ८।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।।८।।

जल फल आदि मिलाइके, अरघ करो हरषाय।
दु:ख जलांजलि दीजिए, श्रीजिन होय सहाय।।क्षमा० ९।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।९।।

जयमाला

दोहा

उनतिस अंग की आरती, सुनो भविक चित लाय।
मन वच तन सरधा करो, उत्तम नर भव पाय।।१।।

चौपाई

जैनधर्म में शंक न आनै, सो निःशंकित गुण चित ठानै।
जप तप कर फल वांछे नाहीं, निःकांक्षित गुण हो जिस माहीं।।२।।
पर को देखि गिलान न आने, सो तीजा सम्यक् गुण ठाने।
आन देव को रंच न माने, सो निर्मूढता गुण पहिचाने।।३।।
परको औगुण देख जु ढाके, सो उपगूहन् श्री जिन भाखे।
जैनधर्म तें डिगता देखे, थापे बहुरि थिति कर लेखे।४।।
जिन धर्मी सों प्रीति निवहिये, गऊ बच्छावत् वच्छल कहिये।
ज्यों त्यों जैन उद्योत बढ़ावे, सो प्रभावना अंग कहावे।।५।।
अष्ट अंग यह पाले जोई, सम्यग्दृष्टि कहिये सोई।
अब गुण आठ ज्ञान के कहिये, भाखे श्रीजिन मन में गहिये।।६।।
व्यंजन अक्षर सहित पढ़ीजे, व्यंजन व्यंजित अंग कहीजे।
अर्थ सहित शुद्ध शब्द उचारे, दूजा अर्थ समग्रह धारे।।७।।
तदुभय तीजा अंग लखीजे, अक्षर अर्थ सहित जू पढ़ीजे।
चौथा कालाध्ययन विचारै काल समय लखि सुमरण धारे।।८।।
पंचम अंग उपधान बतावै, पाठ सहित तब बहु फल पावे।
षष्ठम विनय सुलब्धि सुनीजै, वानी विनय युक्त पढ़ लीजे।।६।।
जानै पढ़ै न लौपे जाई, सप्तम अंग गुरुवाद कहाई।
गुरुकी बहुत विनयजु करीजे, सो अष्टम अंग धर सुख लीजे।।१०।।
यह आठों अंग ज्ञान बढ़ावें, ज्ञाता मन वच तन कर ध्यावें।
अब आगे चारित्र सुनीजे, तेरहविध धर शिव सुख लीजे ।।११।।
छहों काय की रक्षा कर है, सोई अहिंसाव्रत चित धर है।
हितमित सत्य वचन मुख कहिये, सो सतवादी केवल लहिये ।।१२।।

मन वच काय न चोरी करिये, सोई अचौर्यव्रत चित धरिये।
मन्मथ भय मन रंच न आने, सो मुनि ब्रह्मचर्यव्रत ठाने।।१३।।
परिग्रह देख़ न मूर्छित होई, पंच महाव्रत धारक सोई।
ये पाँचों महाव्रत सु खरे हैं, सब तीर्थंकर इनको करे हैं।।१४।।
मनमें विकलप रंच न होई, मनोगुप्ति मुनि कहिये सोई।
वचन अलीक रंच नहिं भाखें वचनगुप्ति सो मुनिवर राखें।।१५।।
कायोत्सर्ग परीषह सहि हैं, ता मुनि कायगुप्ति जिन कहि हैं।
पंच समिति अब सुनिए भाई, अर्थ सहित भाषे जिनराई।।१६।।
हाथ चार जब भूमि निहारे, तब मुनि ईर्य्या मग पद धारे।
मिष्ट वचन मुख बोलें सोई, भाषा समिति तास मुनि होई।।१७।।
भोजन छयालिस दूषण टारे, सो मुनि एषण शुद्धि विचारे।
देखके पोथी ले अरु धरि हैं, सो आदान निक्षेपन वरि हैं।।१८।।
मल मूत्र एकान्त जु डारें, प्रतिष्ठापन समिति सँभारे।
यह सब अंग उनतीस कहे हैं, श्रीजिन भाखे गणेश गहे हैं।।१९।।
आठ आठ तेरह विध जानों, दर्शन ज्ञान चारित्र सुठानो।
तातें शिवपुर पहुँचो जाई, रत्नत्रय की यह विधि भाई।।२०।।
रत्नत्रय पूरण जब होई, क्षमा क्षमा करियो सब कोई।
चैत माघ भादों त्रय वारा, क्षमा क्षमा हम उरमें धारा।।२१।।

दोहा

यह क्षमावणी आरती, पढ़े सुने जो कोय।
कहे "मल्ल" सरधा करो, मुक्ति श्रीफल होय।।२२।।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन-अष्टांगसम्यग्ज्ञान-त्रयोदशविधसम्यक्चारित्रेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।।१०।।

सोरठा

दोष न गहिये कोय, गुण गण गहिये भावसों।
भूल चूक जो होय, अर्थ विचारि जु शोधिये।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजा

स्थापना

हे पार्श्वनाथ करुणानिधान महिमा महान मंगलकारी।
शिव भर्तारी, सुख भंडारी सर्वज्ञ सुखारी त्रिपुरारी।।
तुम धर्मसेत, करुणानिकेत आनन्द हेत अतिशय धारी।
तुम चिदानन्द आनन्द कन्द दुख-द्वन्द फन्द संकटहारी।।
आवाहन करके आज तुम्हें अपने मन में पधराऊँगा।
अपने उर के सिंहासन पर गद-गद हो तुम्हें बिठाऊंगा।।
मेरा निर्मल मन टेर रहा हे नाथ हृदय में आ जाओ।
मेरे सूने मन मन्दिर में पारस भगवान समा जाओ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

भव वन में भटक रहा हूँ मैं भर सकी न तृष्णा की खाई।
भव सागर के अथाह दुख में सुख की जलबिन्दु नहीं पाई।।
जिस भांति आपने तृष्णा पर, जय पाकर तृषा बुझाई है।
अपनी अतृप्ति पर, अब तुमसे जय पाने की सुधि आई है।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधित हो क्रूर कमठ ने जब नभ से ज्वाला बरसाई थी।
उस आत्मध्यान की मुद्रा में आकुलता तनिक न आई थी।।
विघ्नों पर वैर-विरोधों पर मैं साम्यभाव धर जय पाऊँ।
मन की आकुलता मिट जाये ऐसी शीतलता पा जाऊँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तुमने कर्मों पर जय पाकर मोती सा जीवन पाया है।
यह निर्मलता मैं भी पाऊँ मेरे मन यही समाया है।।
यह मेरा अस्तव्यस्त जीवन इसमें सुख कहीं न पाता हूँ।
मैं भी अक्षय पद पाने को शुभ अक्षत तुम्हें चढ़ाता हूँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

अध्यात्मवाद के पुष्पों से जीवन फुलवारी महकाई।
जितना जितना उपसर्ग सहा उतनी उतनी दृढ़ता आई।।
मैं इन पुष्पों से वञ्चित हूँ अब इनको पाने आया हूँ।
चरणों पर अर्पित करने को कुछ पुष्प सँजोकर लाया हूँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा.।

जय पाकर चपल इन्द्रियों पर अन्तर की क्षुधा मिटा डाली।
अपरिग्रह की आलोक शक्ति अपने अन्दर ही प्रगटा ली।।
भटकाती फिरती क्षुधा मुझे मैं तृप्त नहीं हो पाया हूँ।
इच्छाओं पर जय पाने को मैं शरण तुम्हारी आया हूँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अपने अज्ञान अंधेरे में वह कमठ फिरा मारा मारा।
व्यन्तर विमानधारी था पर तप के उजियारे से हारा।।
मैं अंधकार में भटक रहा उजियारा पाने आया हूँ।
जो ज्योति आप में दर्शित है वह ज्योति जगाने आया हूँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

तुमने तपके दावानल में कर्मों की धूप जलाई है।
जो सिद्ध शिला तक आ पहुंची वह निर्मल गंध उड़ाई है।।

मैं कर्म बन्धनों में जक़ड़ा भव बन्धन से घबराया हूँ।
वसु-कर्म दहन के लिये तुम्हें मैं धूप चढ़ाने आया हूँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम महा तपस्वी शान्ति मूर्ति उपसर्ग तुम्हें न डिगा पाये।
तप के फल ने पद्मावति के इन्द्रों के आसन कम्पाये।।
ऐसे उत्तम फल की आशा मैं मन में उमड़ी पाता हूँ।
ऐसा शिव सुख पाने को, फल की शुभ भेंट चढ़ाता हूँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

संघर्षों में उपसर्गों में तुमने समता का भाव धरा।
आदर्श तुम्हारा अमृत-बन भक्तों के जीवन में बिखरा।।
मैं अष्ट द्रव्य से पूजा का शुभ थाल सजा कर लाया हूँ।
जो पदवी तुमने पाई है मैं भी उस पर ललचाया हूँ।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

वैशाख कृष्ण दुतिया के दिन तुम वामा के उर में आये।
श्री अश्वसेन नृप के घर में, आनन्द भरे मंगल छाये।।

ओं ह्रीं वैशाख-कृष्ण-द्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जब पौष कृष्ण एकादशि को, धरती पर नया प्रसून खिला।
भूले भटके भ्रमते जग को, आत्मोन्नति का आलोक मिला।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्म-मंगल-मण्डिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकादशि पौष कृष्ण के दिन, तुमने संसार अथिर पाया।
दीक्षा लेकर आध्यात्मिक पथ, तुमने तप द्वारा अपनाया।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादशीदिने तपोमंगलमण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहिच्छत्र धरा पर जी भर कर, की क्रूर कमठ ने मनमानी।
तब कृष्णा चैत्र चतुर्थी को, पद प्राप्त किया केवलज्ञानी।।
यह वन्दनीय हो गई धरा, दश भव का बैरी पछताया।
देवों ने जय जयकारों से, सारा भूमण्डल गुञ्जाया।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णा-चतुर्थी-दिवसे श्री अहिच्छत्रतीर्थे ज्ञान-साम्राज्य-प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला सप्तमि के दिन, सम्मेदशिखर ने यश पाया।
'सुवरणगिर' भद्रकूटसे जब, शिवमुक्ति रमा को परिणाया।।

ओं ह्रीं श्रावण-शुक्लासप्तम्यां सम्मेदशिखरस्य सुवरणभद्रकूटाद् मोक्ष-मंगल-मण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सुरनर किन्नर गणधर फणधर योगीजन ध्यान लगाते हैं।
भगवान तुम्हारी महिमा का, यशगान मुनीश्वर गाते हैं।।१।।
जो ध्यान तुम्हारा ध्याते हैं दुख उनके पास न आते हैं।
जो शरण तुम्हारी रहते हैं उनके संकट कट जाते हैं।।२।।
तुम कर्मदली, तुम महाबली इन्द्रिय सुख पर जय पाई है।
मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ मन में यह आज समाई है।।३।।
तुमने शरीर औ आत्मा के अंतर स्वभाव को जाना है।
नश्वर शरीर का मोह तजा निश्चय स्वरूप पहिचाना है।।४।।
तुम द्रव्य मोह, औ भाव मोह इन दोनों से न्यारे न्यारे।
जो पुद्गल के निमित्त कारण वे राग द्वेष तुम से हारे।।५।।
तुम पर निर्जन वन में बरसे ओले-शोले पत्थर पानी।
आलोक तपस्या के आगे चल सकी न शठ की मनमानी।।६।।

यह सहन शक्तियों का बल है जो तप के द्वारा आया था।
जिसने स्वर्गों में देवों के सिंहासन को कम्पाया था।।७।।
'अहि' का स्वरूप धर कर तत्क्षण धरणेन्द्र स्वर्ग से आया था।
ध्यानस्थ आप के ऊपर प्रभु फण-मण्डप बन कर छाया था।।८।।
उपसर्ग कमठ का नष्ट किया मस्तक पर फण-मण्डप रचकर
पद्मादेवी ने उठा लिया तुम को सिर के सिंहासन पर।।६।।
तप के प्रभाव से देवों ने व्यंतर की माया विनशाई।
पर प्रभो आपकी मुद्रा में मिल मात्र न आकुलता आई।।१०।।
उपसर्गों का आतंक तुम्हें हे प्रभु तिल भर न डिगा पाया।
अपनी विडम्बना पर बैरी असफल हो मन में पछताया।।११।।
शठ कमठ बैर के वशीभूत भौतिक बल पर बौराया था।
अध्यात्म आत्मबल का गौरव यह मूरख समझ न पाया था।।१२।।
दश भव तक जिसने बैर किया पीड़ायें देकर मन मानी।
फिर हार मानकर चरणों में झुक गया स्वयम् वह अभिमानी।।१३।।
यह बैर महा दुख दायी है यह बैर न बैर मिटाता है।
यह बैर निरन्तर प्राणी को भव सागर में भटकाता है।।१४।।
जिनको भव सुख की चाह नहीं दुख से न जरा भय खाते हैं।
वे सर्व-सिद्धियों को पाकर भव सागर से तिर जाते हैं।।१५।।
जिसने भी शुद्ध मनोबल से ये कठिन परीषह झेली हैं।
सब ऋद्धि-सिद्धियां नत होकर उनके चरणों पर खेली हैं।।१६।।
जो निर्विकल्प चैतन्य रूप शिव का स्वरूप तुमने पाया।
ऐसा पवित्र पद पाने को मेरा अन्तर मन ललचाया।।१७।।
कार्माणवर्गणायें मिलकर भव वन में भ्रमण कराती हैं।
जो शरण तुम्हारी आते हैं ये उनके पास न आती हैं।।१८।।
तुमने सब बैर विरोधों पर समदर्शी बन जय पाई है।
मैं भी ऐसी समता पाऊँ यह मेरे हृदय समाई है।।१६।।
अपने समान ही तुम सब का जीवन विशाल कर देते हो।
तुम हो ''तिखाल वाले'' बाबा जग को निहाल कर देते हो।।२०।।

तुम हो त्रिकाल दर्शी तुमने तीर्थंकर का पद पाया है।
तुम हो महान अतिशय धारी तुम में आनन्द समाया है।।२१।।
चिन्मूरति आप अनंत गुणी रागादि न तुमको छू पाये।
इस पर भी हर शरणागत पर मनमाने सुख साधन आये।।२२।।
तुम रागद्वेष से दूर दूर इनसे न तुम्हारा नाता है।
स्वयमेव वृक्ष के नीचे जग शीतल छाया पा जाता है।।२३।।
अपनी सुगन्ध क्या फूल कहीं घर घर आकर बिखराते हैं।
सूरज की किरणों को छूकर सुमन स्वयम् खिल जाते हैं।।२४।।
भौतिक पारस मणि तो केवल लोहे को स्वर्ण बनाती है।
हे पार्श्वप्रभो ! तुमको छूकर आत्मा कुन्दन बन जाती है।।२५।।
तुम सर्व शक्ति धारी हो प्रभु, ऐसा बल मैं भी पाऊँगा।
यदि यह बल मुझको भी दे दो फिर कुछ न मांगने आऊँगा।।२६।।
कह रहा भक्ति के वशीभूत हे दया सिन्धु ! स्वीकारो तुम।
जैसे तुम जग से पार हुये मुझको भी पार उतारो तुम।।२७।।
जिसने भी शरण तुम्हारी ली वह खाली हाथ न आया है।
अपनी अपनी आशाओं का सबंने वांछित फल पाया है।।२८।।
बहूमूल्य सम्पदायें सारी ध्याने वालों ने पाई हैं।
पारस के भक्तों पर निधियाँ स्वयमेव सिमट कर आई हैं।।२६।।
जो मन से पूजा करते हैं पूजा उनको फल देती है।
प्रभू-पूजा भक्त पुजारी के, सारे संकट हर लेती है।।३०।।
जो पथ तुमने अपनाया है वह सीधा शिव को जाता है।
जो इस पथ का अनुयायी है वह परम मोक्ष को पाता है।।३१।।

ओं ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ भगवान को जो पूजे धर ध्यांन ।
उसे लोक परलोक के मिलें सकल वरदान।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री सम्मेदशिखर पूजा

दोहा छन्द

सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उत्कृष्ट सुथान।
शिखरसम्मेद सदा नमों, होय पाप की हान।।
अगणित मुनि जँहते गए, लोकशिखर के तीर।
तिनके पदपंकज नमूं, नाशे भव की पीर।।

अडिल्ल छन्द

है उज्ज्वल यह क्षेत्र सु अति निरमल-सही ।
परम पुनीत सुठौर महागुण की मही।।
सकल - सिद्धि - दातार रमणीक - है ।
बन्दौं निजसुखहेत अचलपद देत है ।।

सोरठा

शिखरसमेद महान, जग में तीर्थ प्रधान है।
महिमा अद्‌भुत जान, अल्पमती मैं किमि कहों।।

सुन्दरी छन्द

सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है, अति सु उज्ज्वल तीर्थ महान है।
करहिं भक्ति सु जे गुण गायकें, वरहिं सुर शिवके सुख जायकें।।

अडिल्ल

सुर हरि नर इन आदि और वंदन करैं।
भवसागर तें तिरे, नहीं भव में परैं।।
सफल होय तिन जन्म शिखर दर्शन करैं।
जन्म जन्म के पाप सकल छिन में टरैं।।

श्री तीर्थंकर जिनवर जु बीस, अरु मुनि असंख्य सब गुणन ईश।
पहुँचे जँहते कैवल्य-धाम, तिनको अब मेरा है प्रणाम।

गीतिका

सम्मेदगढ़ है तीर्थ भारी, सबहिं को उज्ज्वल करै।
चिरकाल के जे कर्म्म लागे, दर्श तें छिन में टरैं।।
है परमपावन पुण्यदायक, अतुल महिमा जानिये।
है अनूप सुरूप गिरिवर, तासु पूजन ठानिये।।

दोहा

श्री सम्मेदशिखर सदा, पूजों मन वच काय।
हरत चतुर्गति दुःख कों , मनवांछित फलदाय।।

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (सन्निधिकरणम्)

अथाष्टक

अडिल्ल छन्द

क्षीरोदधि सम नीर सु निरमल लीजिये।
कनक कलश में भरकैं धारा दीजिये।।
पूजों शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरैं, अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

पयसों घसि मलयागिरि चन्दन लाइये।
केसर आदि कपूर सुगन्ध मिलाइये।।
पूजों शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरें अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्त श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल धवल सुवासित उज्ज्वल धोयके।
हेमरतन के थार भरों शुचि होयकै।।
पूजों शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरैं अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरु के सम पुष्प अनुपम लीजिये।
कामदाहदुखहरण चरण प्रभु दीजिये।।
पूजों शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरैं अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

कनकथार नैवेद्य सु षटरसतैं भरे।
देखत क्षुधा पलाय सु जिन आगे धरे।।
पूजों शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरैं अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लेकर मणिमय दीप सुज्योति प्रकाश है।
पूजत होत सुज्ञान मोहतम नाश है।।
पूजौं शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरैं अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशविध धूप अनूप अगनि में खेवहुँ।
अष्टकर्म्म को नाश होत सुख लेवहुं।।
पूजौं शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरैं अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

एला लौंग सुपारी श्रीफल लाइये।
फल चढ़ाय मनवांछित शिवफल पाइये।।
पूजौं शिखरसम्मेद सु मन वचकाय जी।
नरकादिक दुख टरैं अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्धाक्षत पुष्प सु नेवज लीजिये।
दीप धूप फल लेकर अर्घ सु लीजिये।।
पूजों शिखरसम्मेद सु मन वच काय जी।
नरकादिक दुख टरें अचल पद पाय जी।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीविंशति तीर्थंकर जिनेन्द्र, अरु असंख्यात जँहते मुनीन्द्र।
तिनको कर जोरि करों प्रणाम, जिनकों पूजों तजि सकल काम।।

ओं ह्रीं विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तश्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्मेद शिखर टोंकों के अर्घ्य

२४ तीर्थंकरों के गणधरों के कूट

चौबीसों जिनराज के, गण नायक हैं ज़ेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं श्री गौतमादिगणधरदेवेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानधर कूट

कुन्थुनाथ जिनराज का, कूट ज्ञानधर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं ज्ञानधरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीकुन्थुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मित्रधर कूट

नमिनाथ जिनराज का, कूट मित्रधर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं मित्रधरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नाटक कूट

अरनाथ जिनराज का, नाटक कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं नाटककूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संवल कूट

मल्लिनाथ जिनराज का, संवल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं संवलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संकुल कूट

श्रेयांसनाथ जिनराज का, संकुल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं संकुलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुप्रभ कूट

पुष्पदंत जिनराज का, सुप्रभ कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं सुप्रभकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितपुष्पदन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहन कूट

पदमप्रभ जिनराज का, मोहन कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं मोहनकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्जर कूट

मुनिसुव्रत जिनराज का, निरजर कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं निर्जरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ललित कूट

चन्द्रप्रभ जिनराज का, ललित कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं ललितकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीआदिनाथ भगवान की टोंक

ऋषभदेव जिन सिद्ध भए, गिरि कैलाश से जोय।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं कैलाशपर्वतात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विद्युतवर कूट

शीतलनाथ जिनराज का, कूट विद्युतवर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं विद्युतवरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितशीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वयंभू कूट

अनन्तनाथ जिनराज का, कूट स्वयंभु वर जेह।
मन वच तन कर पूज, हूँ शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं स्वयंभूकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितअनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धवल कूट

सम्भवनाथ जिनराज का, धवल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं धवलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितसंभवनाथनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीवासुपूज्य भगवान की टोंक

वासुपूज्य जिन सिद्ध भए, चम्पापुर से जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं चम्पापुरीक्षेत्रात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आनन्द कूट

अभिनन्दन जिनराज का, आनन्द कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं आनन्दकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितअभिनन्दनजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुदत्तवर कूट

धर्मनाथ जिनराज का, कूट सुदत्तवर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं सुदत्तकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविचल कूट

सुमतिनाथ जिनराज के, अविचल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं अविचलकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्दप्रभ कूट (शांतिनाथ कूट)

शांतिनाथ जिनराज का, कुन्दप्रभ कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं कुन्दप्रभकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितशांतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री महावीर भगवान की टोंक

महावीर जिन सिद्ध भए, पावापुर से जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं पावापुरीसरोवरात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहित-श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभास कूट

सुपार्श्वनाथ जिनराज का, प्रभास कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं प्रभासकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुवीर कूट (संकुल कूट)

विमलनाथ जिनराज का, कूट सुवीर है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं सुवीरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्धवर कूट

अजितनाथ जिनराज का, सिद्धवर कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं सिद्धवरकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीनेमिनाथ भगवान की टोंक

नेमिनाथ जिन सिद्ध भए, सिद्ध क्षेत्र गिरिनार।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं ऊर्जयन्तगिरिक्षेत्रात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुवर्णभद्र कूट

पार्श्वनाथ जिनराज का, सुवर्णभद्र है कूट।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ओं ह्रीं सुवर्णभद्रकूटात् सिद्धपदप्राप्तसर्वमुनिसहितश्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जे नर परम सुभावन तैं पूजा करैं।
हरि हलि चक्री होय राज छह खंड करैं।।
फेरि होंय धरणेंद्र इंद्र पदवी धरैं ।
नाना विध सुख भोगि बहुरि शिव तिय वरैं।।

चौपाई

मनमोहन तीरथ शुभ जानो, पावन परम सुक्षेत्र प्रमानो।
उन्नत शिखर अनूपम सोहै, देखत ताहि सुरासुर मोहै।।

दोहा

तीरथ परम सुहावनो, शिखर सम्मेद विशाल।
कहत अल्पबुधि उक्ति सो, सुखदायक जयमाल।।

चौपाई

सिद्ध क्षेत्र तीरथ सुखदाई, वन्दत पाप दूर हो जाई।
शिखर शीस पर कूट मनोज्ञ, कहे बीस अतिशोभा योग्य।।
प्रथम सिद्ध शुभ कूट सुनाम, अजितनाथ की मुक्ति सुधाम।
कूट तनो दर्शनफल कहो, कोड़ि बत्तीस उपवासफल लहो।।
दूजो धवल कूट है नाम, सम्भव प्रभु जहँ ते निर्वाण।
कूट दरश फल प्रोषध मानो, लाख बयालिस कहै बखानो।।
आनन्द कूट महा सुखदाई, जहँ तें अभिनन्दन शिव जाई।
कूट तनौ वन्दन इम जानौ, लाख उपवास तनौ फल मानौ।।
अविचल कूट महासुख वेश, मुक्ति गये जहँ सुमति जिनेश।
कूट भाव धर पूजे कोई, एक क्रोड़ प्रोषध फल होई।।
मोहन कूट मनोहर जान, पद्म प्रभू जहँ सुमति जिनेश।
कूट पुण्य फल लहै सुजान, क्रोड़ उपवास कहें भगवान।।
मन मोहन शुभ कूट प्रभास, मुक्ति गये जहँ नाथ सुपार्श्व।
पूजैं कूट महाफल सोई, कोड़ि बत्तीस उपवास फल होई।।
चन्द्र प्रभु को मुक्ति सुधामा, परम विशाल ललितकूट नामा।
दर्शन कूट तनो इम जानो, प्रोषध सोला लाख बखानो।।
सुप्रभ कूट महा सुखदाई, प्रोषध जहँ तै पुष्पदन्त शिव जाई।
सो विद्युतवर कूट महान, मोक्ष गये शीतल धर ध्यान।।
पूजैं त्रिविध योग कर कोई, कोड़ि उपवास तनौ फल होई।
पूजैं कूट महाफल होय, कोड़ि उपवास कहो जिन सोय।।
संकुल कूट महा शुभ जान, श्री श्रेयांस गये शिव थान।
कूट तनौ अब दर्शन सुनौ, कोड़ि उपवास जिनेश्वर भनौ।।

संकुल कूट परम सुखदाई, विमल जिनेश जहाँ शिव जाई।
मन वच दर्श करे जो कोई, कोड़ि उपवास तनो फल होई।।
कूट स्वयंभू सुभग सुठाम, गये अनन्त अमरपुर धाम।
यही कूट को दर्शन करै, कोड़ि उपवास तनो फल धरै।।
है सुदत्तवर कूट मान, जहँ तैं धर्मनाथ निर्वाण।
परम विशाल कूट है सोई, कोड़ि उपवास दर्शन फल होई।।
परम ज्ञानधर है शुभ कूट, शिवपुर कुन्थु गये अघ छूट।
इनको पूजे जो कर जोड़ि, फल उपवास कहो इक कोड़ि।।
नाटक कूटं महाशुभ जान, जहँ तें अरह मोक्ष भगवान।
दर्शन करे कूट को जोई, छियानवै कोड़ि उपवास फल होई।।
संवल कूट मल्लि जिनराय, जहँ ते मोक्ष गये निज काय।
कूट दर्श फल कहो जिनेश, कोड़ि एक प्रोषध फल वेष।।
निर्जर कूट महा सुखदाई, मुनिसुव्रत जहँ तें शिव जाई।
कूट तनो दर्शन है सोई, एक कोड़ि प्रोषध फल होई।।
कूट मित्रधर तें नमि मोक्ष, पूजत आय सुरासुर जक्ष।
कूट तनो फल है सुखदाई, कोड़ि उपवास कहे जिन राई।।
श्री प्रभु पार्श्वनाथ जिनराज, दुरगति तें धूरें महाराज।
सुवर्णभद्र कूट को नाम, जहँ तें मोक्ष गये जिनधाम।।
तीन लोक हित करत अनूप, वन्दत ताहि सुरासुर भूप।
चिंतामणि सुर वृक्ष समान, ऋद्धि सिद्धि मंगल सुखदान।।
नवनिधि चित्रा बेलि समान, जातें सुक्ख अनूपम जान।
पार्श्व और काम सुर धेनू , नाना विध आनन्द को देन।।
व्याधिविकार जाहिं सब भाज, मन चिन्तै पूरे सब काज।
भवदधि रोग विनाशक होई, जो पद जग में और न कोई।।
निर्मल परम धाम उत्कृष्ट, वन्दत पाप भजे और दुष्ट।
जो नर ध्यावत पुण्य कमाय, जस गावत सब कर्म नशाय।।
कटें अनादि कर्म के पाप, भजे सकल छिन में सन्ताप।
सुरनर इन्द्र फणिन्द्र जु सबै, और खगेन्द्र मृगेन्द्र गु नसैं।।

नित देवांगना करें उच्चार, नाचत गावत विविध प्रकार।
बहुविधिभक्ति करें मन लाय, विविध प्रकार वादित्र बजाय।।
द्रम द्रम द्रमता बाजें मृदगं, घन घन घण्टा बाजें अभंग।
झन झन झनियां करें उच्चार, सर सर सारंगी धुन उच्चार।।
मुरली बीन बजे घन मिष्ट, पटहा तूर सुरान्वित पुष्ट।
नित सुरगण थुति गावत सार, सुरगन नाचत बहुत प्रकार।।
झननन झननन नूपुर तान, तननन तननन तौरन तान।
ता थेईथेईथेईथेईथेई चाल, सुर नाचत निज नावत सुभाल।।
गावत नाचत नाना रंग, लेत जहाँ शुभ आनन्द संग।
नित प्रति सुर जहँ वन्दे जाय, नानाविध मंगल को गाय।।
आनन्द धुनि सुन मोर जु सोय, प्रापति वृष की अति ही होय।
तातें हमको दे सुख सोई, गिर वंदन कर धर शुभ दोई।।
मारुत मन्द सुगन्ध चलेय, गन्धोदक तहाँ नित वरसेय।
जिय की जाति विरोध न होई, गिरिवर वंदे कर धर दोई।।
ज्ञान चरित तप साधन सोई, निज अनुभव को ध्यान सु होई।
शिव मन्दिर को धारैं सोई, गिरिवर बन्दे कर धर दोई।।
जो भवि बन्दे एक जु बार, नरक निगोद पशू गति टार।
सुर शिवपदकूं पावे सोय, गिरवर बन्दे कर धर दोइ।।
ताकी महिमा अगम अपार, गणधर कबहुँ न पावें पार।
तुव अद्भुत मैं शक्ति कर-हीन, कहीं भक्ति बस केवल लीन।।
श्रीसिद्ध खेतं अतिसुख देतं, त्वरित भवदधि पारकरा।
अरु कर्म विनाशै सुख पयासे, केवल भासे सुखकरा।।

ओं ह्रीं श्री सम्मेदशिखरसिद्धपदप्राप्ताय सिद्धक्षेत्रेभ्यो महार्घ्यं निर्व० स्वाहा।

दोहा

शिखर सम्मेद पूजैं सदा, मन वच तन नर नारि।
सुर शिव के जे फल लहै, कहते दास जवाहरि।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

सप्तर्षि-पूजा

स्थापना

प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर।
तृतिय मुनि श्रीनिचय सर्वसुन्दर चौथो वर।।
पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जयमित्राख्य सर्व चारित्र-धाम गनि।।
ये सातों चारण-ऋद्धि-धर, करूँ तास पद थापना।
मैं पूजूँ मन वचन काय करि, जो सुख चाहूँ आपना।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिचारणऋद्धिधरसप्तऋषीश्वराः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिचारणऋद्धिधरसप्तऋषीश्वराः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिचारणऋद्धिधरसप्तऋषीश्वराः ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

शुभ-तीर्थ-उद्भव-जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकैं।
भव-तृषा-कंद-निकंद-कारण, शुद्ध-घट भरवायकैं।।
मन्वादि चारण-ऋद्धि-धारक, मुनिन की पूजा करूँ।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनंद विस्तरूं।।

ओं ह्रीं श्रीचारण-ऋद्धिधरश्रीमन्व-स्वरमन्व-निचय-सर्वसुन्दर-जयवान-विनयलालस-जयमित्रऋषिभ्यो जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखंड कदलीनंद केशर, मंद मंद घिसायकैं।
तसु गंध प्रसरित दिग-दिगंतर, भर कटोरी लायकैं।। मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अति धवल अक्षत खंड-वर्जित, मिष्ट राजन भोग के।
कलधौत-थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभ उपयोग के।।मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु-वर्ण सुवरण-सुमन आछे, अमल कमल गुलाब के।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निज-कर चाव के।। मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नाना भांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरट के थारा लये।। मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलधौत-दीपक जड़ित नाना, भरित गोघृत-सारसों।
अति ज्वलित जगमग-ज्योति जाकी, तिमिर नाशन हारसों।।मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दिक्-चक्र गंधित होत जाकर, धूप दश-अंगी कही।
सो लाय मन-वच-कायशुद्ध, लगायकर खेऊं सही।।मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायकै।
द्रावड़ी दाड़िम चारु पुंगी, थाल भर भर लायकै।। मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य-मिश्रित, अर्घ कीजे पावना।।मन्वादि०।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

घत्ता

वंदू ऋषिराजा धर्म-जहाजा निज-पर-काजा करत भले।
करुणा के धारी गगन-विहारी दुख-अपहारी भरम दले।।

काटत जम फंदा भवि-जन-वृंदा करत अनंदा चरणन में।
जो पूजैं ध्यावैं मंगल गावैं फेर न आवैं भव-वन में।।

छन्द-पद्धरी

जय श्रीमनु मुनिराजा महंत, त्रय-थावर की रक्षा करंत।
जय मिथ्या-तम-नाशक पतंग, करुणा-रस-पूरित अंग अंग।।
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप, पद-सेव करत नित अमर भूप।
जय पंच अक्ष जीते महान, तप तपत देह कंचन-समान।।
जय निचय सप्त तत्त्वार्थ भास, तप-रमातनों तन में प्रकाश।
जय विषय-रोध संबोध भान, पर परणति-नाशन अचल ध्यान।।
जय जयहिं सर्वसुन्दर दयाल, लखि इंद्रजालवत जगत-जाल।
जय तृष्णाहारी, रमण राम, निज परणतिमें पायो विराम।।
जय आनंदघन कल्याणरूप, कल्याण करत सबको अनूप।
जय मद-नाशन जयवान देव, निरमद विचरत सब करतसेव।।
जय जयहिं विनयलालस अमान, सब शत्रु मित्र जानत समान।
जय कृशित-काय तप के प्रभाव, छबि-छटा उड़ति आनंद-दाय।।
जयमित्र सकल जग के सुमित्र, अनगिनत अधम कीने पवित्र।
जय चन्द्र-वदन राजीव-नैन, कबहूँ विकथा बोलत न बैन।।
जय सातों मुनिवर एक संग, नित गगन-गमन करते अभंग।
जय आये मथुरा पुर मँझार, तहँ मरी रोग को अति प्रचार।।
जय जय तिन चरणनि के प्रसाद, सब मरी देवकृत भई वाद।
जय लोक करे निर्भय समस्त, हम नमत सदा निज जोड़ हस्त।।
जय ग्रीष्म-ऋतु पर्वत मँझार, नित करत अतापन योग सार।
जय तृषा-परीषह करत जेर, कहुं रंच चलत नहि मन-सुमेर।।
जय मूल अठाइस गुणन धार, तप उग्र तपत आनंदकार।
जय वर्षा-ऋतु में वृक्ष-तीर, तहँ अतिशीलत झेलत समीर।।

जय शीत-काल चौपट मँझार, कै नदी-सरोवर-तट विचार।
जय निवसत ध्यानारूढ़ होय, रंचक नहिं मटकत रोम कोय।।
जय मृतकासन वज्रासनीय, गोदूहन इत्यादिक गनीय।
जय आसन नानाभाँति धार, उपसर्ग सहत ममता निवार।।
जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय।
जय भरे लक्ष अतिशय भंडार, दारिद्रतनो दुःख होय छार।।
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच, अरु ईति भीति सब-नसत साँच।
जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नमत पद देत धोक।।

छन्द रोला

ये सातों मुनिराज, महातप लक्ष्मी धारी।
परम पूज्य पद धरैं सकल जगके हितकारी।।
जो मन वच तन शुद्ध, होय सेवै औ ध्यावै।
सो जन "मनरंगलाल", अष्ट ऋद्धिनकौं पावै।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

नमन करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज।
पंच परावर्तनितैं, निरवारो ऋषिराज।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

गुरु के प्रसाद से ही ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त होता है, जिसके द्वारा समस्त विश्वगत पदार्थ हस्तरेखा के समान ज्ञान के विषय बनते हैं अतः गृहस्थों को भक्ति पूर्वक गुरुजनों (मुनियों) की वैय्यावृत्य और वन्दना आदि करना चाहिए। जो ऋषियों (गुरुओं) का सम्मान नहीं करते हैं और न उनकी उपासना ही करते हैं; सूर्य के उदय होने पर भी उनके हृदय में अज्ञानरूपी अन्धकार बना ही रहता है।

तत्त्वार्थसूत्र पूजा

स्थापना

षट् द्रव्य को जामें कह्यो, जिनराज-वाक्य प्रमाण सों।
किय तत्त्व सातों का कथन, जिन-आप्त-आगम मान सों।।
तत्वार्थ-सूत्रहिं शास्त्र सो, पूजों भविक मन धारि के।
लहि ज्ञान तत्त्व विचार, भवि शिव जा भवोदधि पार के।।

दोहा

जामें षट् द्रव्यहिं कह्यो, कह्यो तत्त्व पुनि सात।
सो दश सूत्रहिं थापि के, जजैं कर्म कटि जात।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

सुरसरी का नीर सु लाय के, करि सु प्रासुक कुम्भ भराय के।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयदारु पवित्र मंगायके, घसि कर्पूरवरेण मिलायके।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुनव शालि सुगंधित लायके, खंड विवर्जित थाल भरायके।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सु तत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन वेल चमेलहिं केवरा, जिन सुगंध दशोंदिश विस्तरा।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

वर सुहाल सुफेनहिं मोदका, रसगुल्ला रसपूरित मोदका।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृत कपूर मणीकर दीवरा, करि उद्योत हरौ तम हीयरा।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु संग घृत धूप दशांगहिं, धरि हुताशन धूम उठावहिं।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रमुक दाख बदाम अनार ला, नारंग नीबूहिं आमहिं श्रीफला।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतायश्रीतत्त्वार्थसूत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलसुचंदन आदिक द्रव्य ले, अरघ के भरि थालहिं ले भले।
जजन सूत्रहिं शास्त्रहिं को करो, लहि सुतत्त्व-ज्ञानहिं शिववरो।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सवैया

विमल विमल वाणी, श्री जिनवर बखानी।
सुन भये तत्त्वज्ञानी ध्यान-आत्म पाया है।।
सुरपति मनमानी, सुरगण सुखदानी।
सुभव्य उर आना, मिथ्यात्व हटाया है।।
समझहिं सब नीके, जीव समवशरण के।
निज-निज भाषा मांहि, अतिशय दिखानी है।।
निरअक्षर अक्षर के, अक्षरन सों शब्द के।
शब्द सों पद बने, जिन जु बखानी है।।

छन्द पादाकुलक

संसार मोह में मोह तरा, प्रगटी जिनवाणी मोह हरा।
उद्धरत हो तम नाश करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
अति मानसरोवर झील खरा, करुणारस पूरित नीर भरा।
दश-धर्म बहे शुभ हंस तरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
कल्पद्रुम के सम जानतरा, रत्नत्रय के शुभ पुष्ट वरा।
गुण तत्त्व पदार्थन पात्र करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
वसुकर्म महारिपु दुष्ट खरा, तसु उपजी फैली बेली वरा।
तसु नाशन वाहि कुठार करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
मद माया लोभअरू क्रोध धरा, ए कषाय महादुःखदाय तरा।
तिन नाशि भवोदधि पार करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
वर षोड़श कारण भाव धरा, षट् कायन रक्षण नियम करा।
मद आठहुं मेटि के धर्म करा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।

जिनवाणी न जाने त्रिजगत फिरा, जड़ चेतन भाव न भिन्न धरा।
नहिं पायो आतम बोध वरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
शुभ-कर्म उद्योत कियो हियरा, जिनवाणिहिं ज्ञान जग्यो जियरा।
भवभर मणहर शिव मार्ग धरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।
सुत कन्हैयालाल परणाम करा, भगवानदास जिहि नाम धरा।
जिनवाणी बसो नित तिहि हियरा, प्रणमामि सूत्र जिनवाणी वरा।।

घत्ता

जिनवाणी माता सब सुख दाता, भवभ्रमहर मुक्तिकरा।
शुभ सूत्रहिं शास्त्रहिं, बारहिदास जोरिकर नमन करा।।

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवद्वादशांगसारभूतश्रीतत्त्वार्थसूत्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे पूजै ध्यावें भक्ति बढ़ावैं जिनवाणी सेती।
ते पावहिं धन धान्य सम्पदा पुत्र पौत्र जेती।।
निरोग शरीर लहैं कीरति जग हरै भ्रमण फेरी।
अनुक्रम सेती लहैं मोक्षथल तँह के होय बसेरी।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

तत्त्वार्थसूत्रं कर्त्तारं गृद्धापिच्छोपलक्षितम् ।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामीमुनीश्वरम्।।
दशाध्यायपरिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति ।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ।।

अर्थ- तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता गृद्धपिच्छ उपाधि सहित मुनिसमूह में श्रेष्ठ उमास्वामी मुनीश्वर को नमस्कार करता हूँ।

मुनिपुंगवों ने दश अध्याय तत्त्वार्थसूत्र के पूर्ण रूप से पढ़ने पर उपवास का फल कहा है।

श्री भक्तामरस्तोत्र पूजा

स्थापना

चतुर्ज्ञानावरणादि, घातिकर्म प्रघातिनं,
महाधर्मप्रकर्त्तारं, वन्देऽहमादिनायकम्।।
भक्तामरमहास्तोत्रं, मन्त्रपूजां करोम्यहं,
सर्वजीवहितागारं, आदिदेवं नमाम्यहम्।।

ओं ह्रीं श्री आदिदेव ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री आदिदेव ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री आदिदेव ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

सुरसुरीनदसंभृतजीवनैः सकलतापहरैः सुखकारणैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

मलयचन्दनमिश्रितकुंकुमैः सुरभितागत षट्पदनंदनैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

विमलजातिसमुद्भवतन्दुलैः, परमपावनपुञ्जसुपुंजकैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जलजचंपकजातिसुमालती, वकुलपाटलकुंदसुपुष्पकैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

वटकखज्जकमड्डुकपायसैः, विविध मोदकव्यञ्जनसद्रसैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रविकरद्युतिसन्निभदीपकैः प्रवलमोहघनांधनिवारकैः ।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वगरुधूपभरैर्घटनिष्ठितैः, प्रतिदिशं मिलितालिसमूहकैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सरसनिंबुकलांगलिदाड़िमैः, कदलिपुंगकपित्थशुभैः फलैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सलिलगंधशुभाक्षतपुष्पकैश्चरु सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
वृषभनाथवृषांकसमन्वितं, शिवकरं प्रयजे हतकिल्विषम्।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भक्तामरस्तोत्र श्लोक पूजा

वसन्ततिलका

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगंयुगादा-
वालंबनं भवजले पततां जनानाम्।।१।।

ओं ह्रीं प्रणतदेवसमूहमुकुटाग्रमणिमहापापान्धकारविनाशकाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

ओं ह्रीं गणधरचारणसमस्त ऋषीन्द्रचन्द्रादित्यसुरेन्द्रव्यन्तरेन्द्र-नागेन्द्र-चतुर्विध-मुनीन्द्रचरणारविन्दाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बुद्धया विनापि विबुधार्चितपादपीठ-
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्।
बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंब,
मन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुम्।।३।।

ओं ह्रीं विगतबुद्धिगर्वापहारसहितश्रीमानतुंगाचार्यभक्तिसहित-श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वक्तुं गुणानं् गुणसमुद्रशशांककांतान्,
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्धयां।
कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।४।।

ओं ह्रीं त्रिभुवनगुणसमुद्रचन्द्रकान्तमणितेजशरीरसमस्तसुरनाथस्तवितश्री-आदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश,
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्।।५।।

ओं ह्रीं समस्तगणधरादिमुनीश्वरप्रतिपालकमृगबालवत् श्रीआदिनाथपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतुः।।६।।

ओं ह्रीं श्रीजिनेन्द्रचन्द्रभक्तिसर्वसौख्यतुच्छभक्तिकार्यबहुसुखदायकाय श्रीआदिनाथ परमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमंधकारम्।।७।।

ओं ह्रीं अनन्तभवपातकसर्वविघ्नविनाशकाय, स्तुतिसौख्यदायकाय श्रीआदिनाथ परमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदविंदुः।।८।।

ओं ह्रीं श्रीजिनेन्द्रस्तवनसत्पुरुषचितचमत्कराय श्री आदिनाथपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरतानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि।।६।।

ओं ह्रीं जिनपूजनस्तवनकथाश्रवणेनसमस्तपापविनाशकाय जगत्त्रयभव्यजीव भवविघ्ननाशसमर्थाय च श्रीआदिनाथपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नात्यद्भुतं भुवनभूषण-भूतनाथ !
भूतैर्गुणैर्भुविभवंतमभीष्टुवंतः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति।।१०।।

ओं ह्रीं त्रैलोक्यगुणमण्डितसमस्तोपमासहिताय श्रीआदिनाथपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दृष्ट्वाभवन्तमनिमेषविलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत्।।११।।

ओं ह्रीं श्रीजिनेन्द्रदर्शनेननन्तभवसंचिताघसमूहविनाशकाय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत !
तावंत एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति।।१२।।

ओं ह्रीं त्रिभुवनशान्तस्वरूपाय त्रिभुवनतिलकमानाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य।
यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पम्।।१३।।

ओं ह्रीं त्रैलोक्यविजयरूपातिशयानन्तचन्द्रतेजजितसदातेजपूजमानाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संपूर्णमंडलशशांककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्।।१४।।

ओं ह्रीं शुभगुणातिशयरूपत्रिभुवनजितजिनेन्द्रगुणविराजमानाय श्रीआदिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम्।
कल्पांतकालमरुता चलिताचलेन
किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्।।१५।।

ओं ह्रीं मेरुचन्द्र-अचलशील-शिरोमणि-व्रतोद्यराजमण्डित-चतुर्विध-वनिता- विरहित शीलसमुद्राय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः।।१६।।

ओं ह्रीं धूम्रस्नेहवतादिविघ्नरहिताय त्रैलोक्यपरमकेवलदीपकाय श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर निरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके।।१७।।

ओं ह्रीं राहु-चन्द्र-पूजित-कर्म-प्रकृति-क्षय-तिमिर-निवारणज्योतिरूप लोकद्वया-वलोकिसदोदयादिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं,
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति,
विद्योतयज्जगदपूर्वशशांकबिम्बम्।।१८।।

ओं ह्रीं नित्योदयादिरूपराहुना-अग्रसिताय त्रिभुवनसर्वकलासहितविराजमानाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमःसु नाथ !
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः।।१६।।

ओं ह्रीं चन्द्रसूर्योदयास्तरजनीदिवसरहितपरमकेवलोदयसदादीप्ति विराजमानाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि।।२०।।

ओं ह्रीं हरिहरादिज्ञानरहिताय सर्वज्ञपरमज्योतिकेवलज्ञानसहिताय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
कि वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवांतरेऽपि।।२१।।

ओं ह्रीं त्रिभुवनमनमोहनजिनेन्द्ररूपाय दृष्टान्तरहितपरमबोधमण्डिताय श्रीआदिनाथपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्।।२२।।

ओं ह्रीं त्रिभुवनवनितोपमारहित श्रीजिनवरमाताजनितजिनेन्द्रपूर्वदिग्भास्कर-केवलज्ञानभास्कराय श्रीआदिनाथाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवःशिवपदस्य मुनीन्द्र ! पंथाः।।२३।।

ओं ह्रीं त्रैलोक्यपावनादित्यवर्णपरमाष्ठोत्तरशतलक्षणनवशतव्यञ्जनसमुदायैक सहस्राष्टमण्डिताय श्रीआदिजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः।।२४।।

ओं ह्रीं ब्रह्मा-विष्णु-श्रीकण्ठ-गणपति-देव-सेविताय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित बुद्धिबोधा-
त्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्ग विधेर्विधानात्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि।।२५।।

ओं ह्रीं बुद्धिदर्शकशेषधरब्रह्मादिसमस्तानन्तनामसहिताय श्रीआदिजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय।।२६।।

ओं ह्रीं अधोमध्योर्द्ध-लोकत्रय-कृताहोरात्रिनमस्कार-समस्तार्त्तरौद्रविनाशक-त्रिभुवनेश्वरभवोदधितरण-तारण समर्थाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिद-पीक्षितोऽसि।।२७।।

ओं ह्रीं परमगुणाश्रितैकाद्यवगुणरहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितांतम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमो वितानं
विम्बं रवेरिवपयोधरपार्श्ववर्ति।।२८।।

ओं ह्रीं अशोकवृक्षप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
विम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं,
तुंगोदयाद्रिशिरसीव सहस्त्ररश्मेः।।२६।।

ओं ह्रीं सिंहासनप्रातिहार्यसहिताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकांतम्।
उद्यच्छशांकशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्।।३०।।

ओं ह्रीं चतुःषष्टिचामरप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छत्रत्रयं तव विभाति शशांककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्।।३१।।

ओं ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यसहिताय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गंभीरताररवपूरितदिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी।।३२।।

ओं ह्रीं अष्टादशकोटिवादित्रप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिनाथजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंदारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा।
गंधोदविंदुशुभमन्दमरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा।।३३।।

ओं ह्रीं समस्तपुष्पजातिवृष्टिप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते,
लोकत्रयेद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ति।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम्।।३४।।

ओं ह्रीं कोटिभास्करप्रभामण्डितभामण्डलप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदिनाथजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः,
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्यः।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः।।३५।।

ओं ह्रीं सलिलजलधरपटलगर्जितध्वनियोजनप्रमाणप्रातिहार्यसहिताय श्रीआदि परमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांतिः,
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति।।३६।।

ओं ह्रीं हेमकमलोपरिगमनदेवकृतातिशयसहिताय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा,
तादृक्कृतो ग्रहगणस्य विकासनोऽपि।।३७।।

ओं ह्रीं धर्मोपदेशसमयेसमवशरणविभूतिमण्डिताय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्।
ऐरावताभमिभंमुद्धतमापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्।।३८।।

ओं ह्रीं मस्तकगलितरणसुरगजेन्द्रमहादुर्द्धरभयविनाशकाय श्रीआदिजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते।।३९।।

ओं ह्रीं आदिदेव नाम प्रसादान्महासिंहभयविनाशकाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगम्।
विश्वं जिघित्सुमिव संमुखमापतन्तं,
त्वन्नामकीर्त्तनजलं शमयत्यशेषम्।।४०।।

ओं ह्रीं महावह्निविश्वभक्षणसमर्थविनाशकाय श्रीआदिब्रह्मणे अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रक्तेक्षणं समदकोकिलकंठनीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रमयुगेण निरस्तशंक-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः।।४१।।

ओं ह्रीं रक्तनयनसर्पगतसमस्तभयविनाशकायश्रीआदिनाथपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं,
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति।।४२।।

ओं ह्रीं महासंग्रामभयविनाशकाय सर्वांगरक्षणकराय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभन्ते।।४३।।

ओं ह्रीं महारिपुयुद्धजयदायकाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाड़वाग्नौ।
रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् ब्रजन्ति।।४४।।

ओं ह्रीं महासमुद्रचलितबातमहादुर्जयभयविनाशकाय श्रीआदिनाथपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः।।४५।।

ओं ह्रीं दशप्रकारतापजलधराष्टादशकुष्ठसन्निपातमहद्रोगविनाशकाय परमकामदेवरूपप्रकटाय श्रीआदिनाथाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आपादकंठमुरुशृंखलवेष्ठितांगाः,
गाढ़ं वृहन्निगड़कोटिनिघृष्टजंघाः।
त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवन्ति।।४६।।

ओं ह्रीं महाबन्धन-आपादकण्ठपर्यन्तवैरिकृतोपद्रवभवविनाशकाय श्रीआदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते।।४७।।

ओं ह्रीं सिंह-गजेन्द्र-राक्षस-भूत-पिशाच-शाकिनी-रिपु-परमोपद्रव-भय-विनाशकाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्तोत्रस्त्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां-
भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्त्रं,
तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः।।४८।।

ओं ह्रीं पठक-पाठक-श्रोता वा श्रद्धावान् मानतुंगाचार्यादि समस्तजीव-कल्याणदायकाय श्री आदिपरमेश्वराय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वनसुगंध-सुतंदुलपुष्पकैः प्रवर-मोदकदीपकधूपकैः।
फलवरैः परमात्मपदप्रदं, प्रवियजे श्रीआदिजिनेश्वरम्।।

ओं ह्रीं अष्टचत्वारिंशत्कमलेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

प्रमाणद्वयकर्त्तारं स्यादस्ति वादवेदकम्।
द्रव्यतत्त्वनयागारमादिदेवं नमाम्यहम् ।।

आदि जिनेश्वर भोगागारं, सर्व-जीववर-दया-सुधारं।
परमानन्द-रमा-सुख-कन्दं, भव्य-जीव-हित-करणममन्दं।।
परम-पवित्र-वंशवर-मण्डन, दुःख-दारिद्र-काम-बल-खण्डन।
वेद-कर्म-दुर्जय-बल-दण्डन, उज्ज्वल ध्यान प्रतिशुभमण्डन।।
चतुः अस्सीलक्ष पूर्व जीवित पर, धनुष पञ्चशत मानस जिनवर।
हेमवर्ण रूपौघ विमल कर, नगर अयोध्या स्थान व्रत धर।।
नाभिराज परमात्म सु वेत्ता, माता मरुदेवी गुण नेता।
सोल स्वप्न पर भेद विख्याता, त्रिभुवननायक पुत्र विधाता।।
गर्भकल्याणक सुरपति कीधा, जन्मकल्याणक मेरु शिर सीधा।
स्वयं स्वयंभू दीक्षा धारी, केवलबोध सु त्रिभुवन प्यारी।।
अष्ट गुणाकर सिद्ध दिवाकर, परम धर्म विस्तारण जय भर।
शीतताप रहित भव हारी, सर्व सौख्य निरुपम गुणधारी।।

घत्ता

जय आदि सु ब्रह्मा, त्रिभुवन ब्रह्मा, ब्रह्मास्वात्म स्वरूपपरं।
जय बोध सु ब्रह्मा, पञ्च सु ब्रह्मा, ब्रह्मसुमति जलधिनिकरं।।

ओं ह्रीं श्री आदिपरमदेवाय जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शार्दूलविक्रीड़ित

देवोऽनेकभवार्जितोगतमहापापः प्रदीपानलः।
देवः सिद्धवधू-विशाल-हृदयालंकार-हारोपमः।।
देवाष्टादश-दोष-सिन्दूर-घटा दुर्भेदपञ्चाननो।
भव्यानां विदधातु वांछितफलं श्री आदिनाथो जिनः।।
लक्ष्मीश्चन्द्रगुरुर्जीतो मूलसंघविदाग्रणी।
पट्टाभयचन्द्रो देवो दयानन्दि विदांवरः।।
रत्नकीर्ति कुमुदेन्दु सुमतिः सागरोदितः।
भक्तामरमहास्तोत्रपूजा चक्री गुणाधिका।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

नवग्रह अरिष्टनिवारक पूजा

स्थापना

प्रणम्याद्यन्ततीर्थेशं, धर्मतीर्थप्रवर्तकं,
भव्यविघ्नोपशान्त्यर्थं, ग्रहार्चा वर्ण्यते मया।
मार्तण्डेन्दुकुंजसोम्यं सूरसूर्यकृतांतकाः,
राहुश्च केतुसंयुक्तो, ग्रहाः शांतिकरा नव।।

दोहा

आदि अन्त जिनवर नमों, धर्म प्रकाशनहार।
भव्य विघ्न उपशांति को, ग्रहपूजा चित धार।।
काल दोष परभावसों, विकलप छूटे नांहि।
जिन-पूजा में ग्रहनकी पूजा मिथ्या नांहि।।
इस ही जम्बूद्वीप में, रवि-शशि मिथुन प्रमान।
ग्रह नक्षत्र तारा सहित, ज्योतिष चक्र प्रमान।।
तिनही के अनुसार सों, कर्म-चक्र की चाल।
सुख दुख जानैं जीवको, जिन-वच नेत्रविशाल।।
ज्ञान प्रश्न-व्याकरण में, प्रश्न-अंग है आठ।
भद्रबाहु मुख जनित जो, सुनत कियो मुख पाठ।।
अवधि धार मुनिराज जी कहे पूर्वकृत कर्म।
उनके वच अनुसार सौं, हरे हृदय का भर्म।।

दोहा

अर्क चन्द्र कुज सौम्य गुरु, शुक्र शनिश्चर राहु।
केतु ग्रहारिष्ट नाशने, श्री जिन-पूज रचाहु।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकाः श्री चतुर्विंशतिजिनाः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकाः श्री चतुर्विंशतिजिनाः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकाः श्री चतुर्विंशतिजिनाः ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

गीता छन्द

क्षीर सिंधु समान उज्ज्वल, नीर निर्मल लीजिये।
चौबीस श्री जिनराज आगे, धार त्रय शुभ दीजिये।।
रवि सोम भूमिज सौम्य गुरु कवि, शनितमो पूतकेतवे।
पूजिये चौबीस जिन, ग्रहारिष्ट-नाशन हेतवे।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्ट-निवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यः पंचकल्याणकप्राप्तेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीखण्ड कुमकुम हिम सुमिश्रित, घिसौं मनकरि चावसौं।
चौबीस श्री जिनराज अघहर, चरण चरचों भावसौं।।रवि०।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्ट-निवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्यः पंचकल्याणकप्राप्तेभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत अखण्डित सालि तंदुल, पुंज मुक्ताफल समं।
चौबीस श्रीजिनचरण पूजत, नाश ह्वै नवग्रह भ्रमं।।रवि०।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणकप्राप्तेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कुंद कमल गुलाब केतकि, मालती जाही जुही।
कामबाण विनाश कारण, पूजि जिनमाला गुहि।।रवि०।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणकप्राप्तेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फेनि सुआली पुवा पापर, लेय मोदक घेवरं।
शतछिद्रआदिक विविध व्यंजन, क्षुधाहर बहु सुखकरं।।रवि०।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणक-प्राप्तेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणिमय जगमग ज्योति तमहर प्रभू आगे लाइये।
अज्ञाननाशक जिनप्रकाशक, मोहतिमिर नशाइये।।
रवि सोम भूमिज सौम्य गुरू कवि, शनितमो पूतकेतवे।
पूजिये चौबीस जिन, ग्रहरिष्ट नाशन हेतवे।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणक-प्राप्तेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णा अगर घनसार मिश्रित, लौंग चन्दन लेइये।
ग्रहारिष्ट नाशन हेत भविजन, धूप जिनपद खेइये।।रवि०।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणक-प्राप्तेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम पिस्ता सेव श्रीफल, मोच नींबू सदफलं।
चौबीस श्रीजिनराज पूजत, मनोवांछित शुभ फलं।।रवि०।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणक-प्राप्तेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध सुमन अखण्ड तन्दुल, चरु सुदीप सुधूपकं।
फल द्रव्य दूध दही सुमिश्रित, अर्घ देय अनूपकं।।रवि०।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशति-तीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणक-प्राप्तेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

प्रत्येक अर्घ

अडिल्ल

सलिल गंध ले फूल सुगन्धित लीजिए।
तन्दुल ले चरु दीपक धूप खेवीजिये।।

फल ले अर्घ बनाय प्रभु पद पूजिये।
रवि अरिष्ट को दोष तुरत तहे धूजिये।।

ओं ह्रीं रविग्रहारिष्टनिवारकश्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन बहु फूल सु तन्दुल लीजिये।
दुग्ध शर्करा राशि हित सुव्यंजन कीजिये।।
दीप धूप फल अर्घं बनाय धरीजिये।
शीस जिनेन्द्र को नवाय अरिष्ट हरीजिये।

ओं ह्रीं चन्द्रारिष्टनिवारकचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरभित जल श्रीखण्ड कुसुम तन्दुल भले।
व्यंजन दीपक धूप सदा फल सो रले।।
वासुपूज्य जिनराय अर्घ शुभ दीजिये।
मंगल ग्रह को रिष्ट नाश कर लीजिये।।

ओं ह्रीं भौमारिष्टनिवारकवासुपूज्यजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ सलिल चन्दन सुमन अक्षत क्षुधाहर चरु लीजिये।
मणिमय धूप सुफल सहित बसु दरब अर्घ जु दीजिये।।
विमलनाथ अनन्तनाथ सु धर्मनाथ जु शांतये।
कुन्थु अरह जु नमि जिन महावीर आठ जिनं यजे।।

ओं ह्रीं सोमग्रहारिष्टनिवारकाष्टजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन फूल तन्दुल मूलं चरु दीपकं ले धूप फलं।
वसु विधि से अर्चे वसुविधि चर्चे कीजे अविचल मुक्ति धरं।।
ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन सुमति सुपार्श्वनाथ वरं।
शीतलनाथ श्रेयांस जिनेश्वर पूजत सुर गुरु दोष हरं।।

ओं ह्रीं सुर-गुरु-दोष-निवारक-वसु-जिनवरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन ले पुष्प और अक्षत घने।
चरु दीपक बहु धूप सु फल अति सोहने।।

गीत नृत्य गुण गाय अर्घ पूरन करें।
पुष्पदन्त जिन पूज शुक्र दूषण हरैं।।

ओं ह्रीं शुक्रग्रहारिष्टनिवारकपुष्पदन्तजिनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी नीरादिक बसु द्रव्य ले। मन वच काय लगाय।।
प्राणी अष्ट कर्म को नाश है एजी अष्ट महा गुण पाय हो।
प्राणी मुनिसुव्रत जिन पूजिये।।

ओं ह्रीं शनिग्रहारिष्ट-निवारक-मुनिसुव्रत जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अक्षत पुष्प सुरभित चरु मनोहर लीजिए।
दीप धूप फलौघ सुन्दर अर्घ जिन पद दीजिए।।
जब राहु गोचर रासि में दुख देय दुष्ट सुभावसों।।
तब नेमि जिनके भाव सेति चरण पूजैं चावसों।

ओं ह्रीं राहुग्रहारिष्टनाशकनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन तन्दुल सुमन सु लाय अघहारी।
चरु दीप धूप फल लेय अर्घ करों भारी।।
मैं पूजों मल्लि जिनेश पारस सुखकारी।
ग्रह केतु अरिष्ट निवार मन सुख हितकारी।।

ओं ह्रीं केतुग्रहारिष्ट निवारकमल्लिपार्श्वजिनाभ्याम् अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रवि शशि मंगल सौम गुरु शुक्र शनि राहु सुकेतु।
इनको रिष्ट निवार करे अर्चे जिन सुख हेतु।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारकचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्रीजिनवर पूजा किये, ग्रह अरिष्ट मिट जाय।
पंच ज्योतिषी देव सब, मिल सेवें प्रभु पांय।।

पद्धरी छन्द

जय जय जिन आदिमहन्त देव, जयअजित जिनेश्वर करहुं सेव।
जय जय संभव भवभय निवार, जय जय अभिनन्दन जगततार।।
जय सुमति सुमति दायक विशेष, जय पद्मप्रभ लख पदम लेष।
जय जय सुपार्श्व हर कर्मपास, जय जय चंद्रप्रभ सुख निवास।।
जय पुष्पदन्त कर कर्म अंत, जय शीतल जिन शीतल करन्त।
जय श्रेय करन श्रेयान्स देव, जय वासुपूज्य पूजत सुमेव।।
जय विमल विमल कर जगतजीव, जय जय अनंत सुखअतिसजीव।
जय धर्मधुरन्धर धर्मनाथ, जय शान्ति जिनेश्वर मुक्ति साथ।।
जय कुंथुनाथ शिव-सुख निधान, जय अरह जिनेश्वर मुक्ति खान।
जय मल्लिनाथ पद पद्म भास, जय मुनिसुव्रत सुव्रत प्रकाश।।
जय जय नमिदेव दयाल सन्त, जय नेमिनाथ प्रभु गुण अनन्त।
जय पारसप्रभु संकट निवार, जय वर्द्धमान आनन्दकार।।
नवग्रह अरिष्ट जब होय आय, तब पूजैं श्रीजिनदेव पाय।
मन वच तन सब सुखसिंधु होय, ग्रहशांत रीति यह कही जोय।।

ओं ह्रीं सर्वग्रहारिष्टनिवारक-श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरजिनेन्द्रेभ्यः पंचकल्याणक-प्राप्तेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चौबीसों जिनदेव प्रभु, ग्रह सम्बन्ध विचार।
जो पूजे प्रत्येक को, वे पावें सुख सार।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपामि)

विनायक-सिद्ध-यंत्र-पूजा

अरिघात शुद्धातम प्रगट किया, अरहंत परम पद पाया है,
अविनाशी शाश्वत सुखसागर, निजधाम चिदानंद पाया है।
आचार्योपाध्याय साधु महा, मंगल लोकोत्तम शरण कहे,
प्रभु आप विराजो मन अंदर, आतम दर्शन अरुबोध लहे।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनाः ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनाः ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनाः ! अत्र मम सन्निहितो भवत भवत वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक (चाल छंद)

भव भव की प्यास बुझाने, लाया जल चरण चढ़ाने।
मंगलोत्तम शरण सहाई, नमूं पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो जलं निर्व० स्वाहा।

भव की आताप मिटाने, चन्दन सम शीतल पाने।
मंगलोत्तम शरणसहाई, नमूं पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूत जिनेन्द्रेभ्यः चन्दनं निर्व० स्वाहा।

अक्षय पद शाश्वत पाने, चरणों में लाया चढ़ाने।
मंगलोत्तम शरण सहाई, नमूं पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मन्मथ की पीड़ा हरने, शुद्धातम अनुभव करने।
मंगलोत्तमशरण सहाई, नमूं पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो पुष्पं निर्व० स्वाहा।

भव भव दुठ क्षुधा मिटाऊं, तब आतम अमृत पाऊं।
मंगलोत्तमशरण सहाई, नमू पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

मिथ्यातम सकल हटाऊं, निज आतम ज्योति जलाऊं।
मंगलोत्तमशरण सहाई, नमू पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो दीपं निर्व० स्वाहा।

कर्मों की धूप जलाऊं, शुद्धात्म दशा प्रगटाऊं।
मंगलोत्तमशरण सहाई- नमूं पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो धूपं निर्व० स्वाहा।

फल लाया चरण चढ़ाने-आतम अनुभव फल पाने।
मंगलोत्तमशरण सहाई, नमूं पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो फलं निर्व० स्वाहा।

जल फल शुचि द्रव्य मिलाये-पूजत आतम सुख पाये।
मंगलोत्तमशरण सहाई, नमूं पंच परम सुखदाई।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतिजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

अर्घ्यावली (चाल छंद)

जिन घाती कर्मनशाया-अरिहंत परम पद पाया।
मैं पूजों मन वच काया, जिन पद पा आतम ध्याया।।

ओं ह्रीं अर्हं अर्हत्परमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन अष्ट कर्म विनशाये, समकित स्वातम गुण पाये।
ऐसे सिद्ध प्रभु सिद्ध कहाये, हम चरणन शीश नमाये।।

ओं ह्रीं अर्हं सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ पंचाचार सम्हाला, छत्तीस मूल गुण पाला।
दीक्षा शिक्षा हितकारी, आचारज है सुखकारी।।

ओं ह्रीं अर्हं आचार्यपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

एकादश अंग सुहाये, चौदह पूरब श्रुत पाये।
शिष्यों को बोध दिलाये, पाठक पूजों शिरनाये।।

ओं ह्रीं अर्हं उपाध्यायपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टाविंशति गुणधारी, गुरुसाधत आतम न्यारी।
अरि मित्र समान विचारें, समता सागर सुख धारें।।

ओं ह्रीं अर्हं साधुपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा-मंगलीक अरहंत हैं, नमत पाप गल जाय।
आतम मंगलरूप है, पूजत सब सुख पाय।।

ओं ह्रीं अर्हं अर्हन्मंगलाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध चक्र मंगल महा, सर्वविघन नशि जाय।
पूजत पद निज पाइये, मंगलमय सुखदाय।।

ओं ह्रीं अर्हं सिद्धमंगलाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समता धर संयम धरें, साधत आतम काज।
राग द्वेष मदलेश नहिं, मंगलमय मुनिराज।।

ओं ह्रीं अर्हं साधुमंगलाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंगलमय जिनधर्म हैं, भवदुख नाशन हार।
धारत भवजन भाव सों, स्वर्ग मोक्ष सुख द्वार।।

ओं ह्रीं अर्हं केवलिप्रज्ञप्तधर्ममंगलाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रोटक

लोकोत्तम श्री अरहंत महा, जिनका सर्वोदय तीर्थ कहा।
दर्शनपूजन से पाप कटें, संसार विषम भव बंध कटें।।

ओं ह्रीं अर्हं अर्हल्लोकोत्तमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मोदय जब जिय का आता, तब भवसागर में भटकाता।
आतम संबल पा कर्म नशा, शुद्धातम वन शिवलोक बसा।।

ओं ह्रीं अर्हं सिद्धलोकोत्तमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संयम धर चलते शिवमग में, तीरथ फिरते जग में।
जग में हैं उत्तम साधु महा, पूजन करते धन भाग्य यहाँ।।

ओं ह्रीं अर्हं साधुलोकोत्तमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नंत्रय उत्तम धर्म कहा, भवदुःख मिटें शिवपाय महा।
भव सागर से भवि तारत हैं, निज श्रद्धा से जब धारत हैं।।

ओं ह्रीं अर्हं केवलिप्रज्ञप्तधर्मलोकोत्तमाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चाल

अरहंत शरण जिन लीना, तिन जनम मरण भय छीना।
इन्द्रादिक नित गुण गाते, हम चरणन शीश नवाते।।

ओं ह्रीं अर्हं अर्हच्छरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हैं करम जगत दुखदाई, भव भव में भ्रमण कराई।
तिन नाश सिद्ध पद पाया, पूजन हित शरण में आया।।

ओं ह्रीं अर्हं सिद्धशरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिन मुद्रा आतम धारी, मद राग द्वेष परिहारी।
निज आतम अनुभव पाया, नमूं साधु शरण में आया।।

ओं ह्रीं अर्हं साधुशरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनधर्मशरण सुखकारी, पाते निज अनुभव धारी।
मिथ्यामद मोह मिटाते, अक्षय अनंत सुख पाते।।

ओं ह्रीं अर्हं केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरणाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृत कृत्य विमल वैरागी, निज आतम सत्ताधारी।
मंगलोत्तम शरण महाना, पूजों पद श्री भगवाना।।

ओं ह्रीं अर्ह अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्व० स्वाहा।

जयमाला

दोहा

जय मंगल उत्तम शरण, पंच परम गुरुजान।
गाऊं नित गुणमालिका, होय करम की हान।।१।।

पद्धड़ी

जय वीतराग सर्वज्ञदेव, तुम घाते घातिक कर्मभेव।
सदनंद चतुष्टय राजमान, नव केवललब्धि विराजमान।।२।।
भये अजर अमर हे मुक्तिवंत, चारों अघातियाकर्म हन्त।
हो नित्य निरंजन निर्विकार, चैतन्य सुधारस भोगसार।।३।।
रत्नत्रय मंडित गुण अनंत, छत्तीय मूलगुण शोभवंत।
जय पंचाचार आचरण धीर, दीक्षाशिक्षाहित गुण गंभीर।।४।।
एकादशांग चौदह सुपूर्व, धारें जिन पच्चिसगुण अपूर्व।
जय पाठक मुनि करुणा निधान, देते शिक्षा शिवपथ महान।।५।।
जय बीस आठ गुण धरत आप, शमदम विराग सह मुक्ति धाय।
बाह्याभ्यन्तर परिग्रह नशाय, निज आतम साधत मुक्ति पाय।।६।।
जय मंगल उत्तम शरणरूप, त्रैकालिक सुख पावत अनूप।
हम शरण गही मन वचन काय, परमेष्ठी पद लहि मुक्ति पाय।।७।।

दोहा

विघ्न विनाशक मंत्र शुभ, महिमामयी अनूप।
पूजत मंगल होत नित, मिले 'पुष्प' निज रूप।।८।।

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा मंगलोत्तमशरणभूतजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

दोहा

आतम का अनुभव मिले, बाढ़े धरम प्रभाव।
रत्नत्रय निधि मिलत है, भक्ति भावना भाव।।६।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

निर्वाणक्षेत्र पूजा

परम पूज्य चौबीस, जिंह जिंह थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निश-दीस, मन-वच-तन पूजा करों।।

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत-भवत वषट् (सन्निधिकरणम्)

गीता

शुचि क्षीर-दधि-सम नीर निरमल, कनक-झारी मैं भरौं।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलासकों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों।।

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर सुगन्ध चन्दन, सलिल शीतल विस्तरौं।
भव-तापकौ सन्ताप मेटो, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०।।

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोती-समान अखण्ड तन्दुल, अमल आनन्द धरि तरौं।
औगुन-हरौ गुन करौ हमको; जोर कर विनती करौं।।सम्मेद०

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ फूल-रास सुवास-वासित, खेद सब मन की हरौं।
दुःख धाम काम विनाश मेरो, जोरकर विनती करौं।। सम्मेद०

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणेक्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।

नेवज अनेक प्रकार जोग मनोग धरि भय परिहरौं।
मम भूख-दूखन टार प्रभुजी, जोर कर विनती करौं।। सम्मेद०

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक-प्रकाश उजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरों।
संशय-विमोह-विभ्रम-तम-हर, जोर कर विनती करों।। सं०।।

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ-धूप परम-अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करम-पुंज जलाय दीज्यौ, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद०

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चार गतिसों निरवरों।
निहचै मुकति-फल देहु मोको, जोर कर विनती करों।।सम्मेद०

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अच्छत फ़ूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
"द्यानत" करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं।।सम्मेद०

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

जयमाला

श्री चौबीस जिनेश, गिरि कैलासादिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश महापुरुष निरवाणतें।।

चौपाई

नमों ऋषभ कैलास पहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चम्पापुर वन्दों, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं।।
वन्दों अजित अजित-पद-दाता,वन्दों सम्भव भव-दुःख घाता।
वन्दों अभिनन्दन गुण-नायक,वन्दों सुमति सुमति के दायक।।
वन्दों पद्म मुकति-पदमाकर, वन्दों सुपास आश-पासाहर।

वन्दों चन्द्रप्रभ प्रभु चन्दा, वन्दों सुविधि सुविधि-निधि-कन्दा।।
वन्दों शीतल अघ-तप-शीतल, वन्दों श्रेयांस श्रेयांस महीतल।
वन्दों विमल विमल उपयोगी, वन्दों अनन्त-अनन्त सुखभोगी।
वन्दों धर्म-धर्म विस्तारा, वन्दों शान्ति, शान्ति मनधारा।
वन्दों कुन्थु, कुन्थु रखवालं, वन्दों अर अरि हर गुणमालं।।
वन्दों मल्लि काम मल चूरन, वन्दों मुनिसुव्रत व्रत पूरन।
वन्दों नमि जिन नमित सुरासुर, वन्दों पास-पास भ्रम जगहर।।
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर सम्मेद महागिरि भूपर।
भावसहित वन्दे जो कोई, ताहि नरक पशुगति नहिं होई।।
नरपति नृप सुर शक्र कहावै, तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावै।
विघन विनाशन मंगलकारी, गुण-विलास वन्दों भवतारी।

दोहा

जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै, भगति करै।
ताको जस कहिये, संपति, लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरै।।

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं निर्व०स्वाहा।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

मंदिर विश्व के वैभव हैं और हैं ह्रदय के प्रतिबिम्ब। मंदिरों की प्राचीनता और उनकी हार्दिक अस्मिता को चुनौती नहीं दी जा सकती। मंदिर जनमानस का वह आयाम है, जिसे उसने हर उतार चढ़ाव के बावजूद सदा अपनाये रखा। भयंकर अकाल पड़ा पर मन्दिर की ज्योति कभी बुझ नहीं पायी। खाने की रोटी न रही, मगर मन्दिरों में पूजा होती रही। परमात्मा को स्मरण के लिए, जीवन में नैतिकता को बहाल करने के लिए मन्दिरों को रोजमर्रा की जिन्दगी से जोड़ा जाना चाहिए।

(आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी)

सरस्वती पूजा

स्थापना (दोहा)

जनम जरा मृतु, क्षय करैं, हरै कुनय जड़ रीति।
भव-सागर सों ले तिरै, पूजै जिन वच प्रीति।।

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वति वाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वति वाग्वादिनि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वति वाग्वादिनि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

क्षीरोदधि गंगा विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
भरि कंचनझारी धार निकारी, तृषा निवारी हित चंगा।।
तीर्थंकर की धुनि गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी शिवसुखदानी, त्रिभुवन-मानी पूज्य भई।।

ओं ह्रीं श्री जिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्पूर मंगाया चंदन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारद पद वंदों मन अभिनन्दों पाप निकंदो दाह हरी।।तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्री जिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं।
बहु भक्ति बढ़ाई कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं।।तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्री जिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनंद रासं लाय धरे।
मम काम मिटायो, शील बढ़ायो, सुख उपजायो दोष हरे।।तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्री जिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया बहुघृत लाया, सब विध भाया मिष्ठ महा।
पूजूँ थुति गाऊं प्रीति बढ़ाऊं, क्षुधा नशाऊं हर्ष लहा।।
तीर्थंकर की धुनि गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी शिवसुखदानी, त्रिभुवन-मानी पूज्य भई।।

ओं ह्रीं श्रीजिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कर दीपक-जोतं तमक्षय होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक भरम-विनाशक, हम घट भासक, ज्ञानबढ़ै।। तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्रीजिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभगंध दशोंकर पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावे पुण्य कमावे, दास कहावे सेवत हैं।।तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्रीजिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम छुहारी लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं।
मन वांछित दाता मेंट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं।। तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्रीजिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नयनन सुखकारी मृदु गुनधारी, उज्ज्वल भारी, मोलधरैं।
शुभगंध सम्हारा वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं।।तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्रीजिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत फूल चरु, अरु दीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुखपावै।। तीर्थंकर०।।

ओं ह्रीं श्रीजिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सोरठा

ओंकार ध्वनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै।।
पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरु भाषं।।

तीजो ठाना अंग सुजानं, सहस बयालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहारं, चौंसठ सहस लाख इक धारं।।
पंचम व्याख्याप्रज्ञप्ति दरसं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातृकथा विसतारं, पांच लाख छप्पन हज्जारं।।
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अंतःकृत दस ईसं, सहस अठाइस लाख तेईसं।।
नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवे सोल हजारं।।
ग्यारम सूत्र विपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरुशाखं।।
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन है, सहित पंचपद मिथ्या हन है।।
इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने।।
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साढ़े इकीस श्लोक बताये, एक एक पद के ये गाये।।

सोरठा

जा बानी के ज्ञान तें, सूझै लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हूँ धोक।।

ओं ह्रीं श्रीजिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

हम जानते हैं, रोज देखते भी हैं कि घर तो पशु–पक्षी सभी बना लेते हैं, लेकिन मंदिर मनुष्य ही बना पाता है। मंदिर के विज्ञान से जो लोग परिचित हैं और जो मंदिर की कला को जानते हैं, हम उनसे पूछें तो मालूम पड़ेगा कि मंदिर की हर चीज फिर चाहे वह मंदिर का गुम्बज हो, चाहे मंदिर के छोटे छोटे कलात्मक खिड़की दरवाजे हों, चाहे मंदिर के प्रवेश द्वार पर लगे हुए विशाल घण्टे हों या कि भगवान् के सम्मुख समर्पित किए जाने वाले दीप, धूप और अष्ट द्रव्य में सबका सम्बन्ध कलात्मकता और गहरी वैज्ञानिक सूझबूझ से है।

दीपावली- पूजा

दीपमालिका के दिन प्रातः काल उठकर सामायिक, स्तुति पाठ कर शौच स्नानादि से निवृत्त हो श्री जिनमंदिर में पूजन करनी चाहिए और निर्वाण पूजा, निर्वाणकांड, महावीराष्टक बोल कर निर्वाण लाडू चढ़ाना चाहिये।

नई बही मुहूर्त की सामग्री

धुले हुए अष्ट द्रव्य, धूपदान, दीपक, लाल कपड़ा, सरसों, थाली, श्रीफल, जल भरा हुआ लोटा, नाला (धागा) शास्त्र, धूप, पाटे, चौकी २, कुंकुम, केशर घिसी हुई, कोरे पान, दवात, कलम, सिंदूर घी में मिलाकर (श्री महावीराय नमः और लाभ–शुभ दुकान की दीवाल पर स्वस्तिक लिखने के लिए) फूलमालायें नई बहियां आदि।

नई बहियों के मुहूर्त की विधि

सायंकाल को उत्तम गोधूलिक लग्न में अपनी दुकान के पवित्र स्थान में नई बहियों का नवीन संवत् से शुभमुहूर्त करें। उसके लिये ऊँची चौकी पर थाली में केशर से 'श्री महावीराय नमः' लिखकर दूसरी चौकी पर शास्त्र जी विराजमान करें और एक थाली में स्वस्तिक मांड़कर सामग्री चढ़ाने के लिये रखें। अष्टद्रव्य–जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल, अर्घ्य बनावें। बहियां, दबात, कलम आदि पास में रख लें। दाहिनी ओर घी का दीपक, बांई ओर धूपदान रखना चाहिये। दीपक में घृत इस प्रमाण से डाला जाय कि रात्रि भर वह दीपक जलता रहे। इस प्रकार पूजा आरम्भ करें। पूजा करने के लिये कुटुम्बियों को पूर्व या उत्तर में बैठना चाहिए। पूजा गृहस्थाचार्य द्वारा या स्वयं करनी चाहिए। सबसे प्रथम पूजन में बैठे हुए सर्व सज्जनों को तिलक लगाना चाहिये। उस समय यह श्लोक पढ़ें:–

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।

पश्चात् मंगलाष्टक, देवशास्त्र गुरु पूजा अर्घ्य, महावीर जिनपूजा, सरस्वती पूजा पढ़ना चाहिए।

गौतम स्वामी जी का अर्घ्य

गौतमादिक सर्वे एक दश गणधरा।
वीर जिन के मुनि सहस चौदह वरा।।
नीर गंधाक्षतं पुष्प चरु दीपकं।
धूप फल अर्घ्य ले हम जजें महर्षिकं।

ओं ह्रीं श्री महावीर–जिनस्य गौतमाद्येकादश–गणधर–चतुर्दशसहस्त्र मुनिवरेभ्योऽर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

इस प्रकार अर्घ्य चढ़ाकर लाभ आदि में विघ्न करने वाले अन्तराय कर्म को दूर करने के लिये नीचे लिखा हुआ अर्घ्य चढ़ावें:–

अन्तराय-नाशार्थ अर्घ्य

लाभ की अंतराय के वश जीव सुख ना लहै ।
जो करे कष्ट उत्पात सगरे कर्मवश विरथा रहे।।
नहिं जोर वाको चले इक छिन दीनसो जगमें फिरे।
अरहंत सिद्ध सु अधर धरि के लाभ यों कर्म को हरे।।

ओं ह्रीं लाभांतराय–कर्म–रहित अर्हंत–सिद्ध–परमेष्ठिभ्यां अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

अंतराय है कर्म प्रबल जो दान लाभ का घातक है ।
वीर्य भोग उपभोग सभी में, विघ्न अनेक प्रदायक है।।
इसी कर्म के नाश हेतु श्री, वीर जिनेन्द्र और गणनाथ।
सदा सहायक हों हम सब के, विनंती करें जोड़कर हाथ।।

(यहां पर पुष्प क्षेपणकर हाथ जोड़ें)

इसके बाद हर एक बही में केशर से स्वस्तिक मांड़कर एक एक कोरा पान रखें और निम्न प्रकार लिखें:–

लाभ 卐 शुभ

श्री ऋषभदेवाय नमः । श्री महावीराय नमः।।
श्री गौतम-गणधराय नमः। श्री केवलज्ञान-लक्ष्म्यै नमः।।
श्री जिन-सरस्वत्यै नमः।।

श्री शुभ मिती कार्तिक कृष्णा अमावस्या वीर नि० संवत् २५...... विक्रम सं० ...... दिनांक............ मास ...... सन् ...... ई० ...... वार को श्री .... की .... दुकान की .... बही का शुभ मुहूर्त किया।

यह हो जाने के बाद विधि कराने वाले, दुकान के प्रमुख सज्जन को बही हाथ में देवें और पुष्प क्षेपें।

इसके बाद नीचे लिखा हुआ पद्य व मन्त्र पढ़कर शुभकामना करें और घर प्रमुख महाशय को फूलमाला पहिनाकर पुष्प क्षेपण करें :–

आरोग्य बुद्धि धन धान्य समृद्धि पावें।
भय रोग शोक परिताप सुदूर जावें।।
सद्धर्म शास्त्र गुरु भक्ति सुशांति होवे।
व्यापार लाभ कुल वृद्धि सुकीर्ति होवे।।१।।
श्री वर्द्धमान भगवान् सुबुद्धि देवें ।
सम्मान सत्यगुण संयम शील देवें।।
नव वर्ष हो यह सदा सुख शांतिदाई।
कल्याण हो शुभ तथा अति लाभ होवे।।२।।

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अर्हत्–सिद्धाचार्योपाध्याय–साधवः शांतिं पुष्टिं च कुरुत कुरुत स्वाहा।

इसके बाद दीप जलावैं तथा उन्हें अपने मकान के प्रत्येक कमरें में रखें। परिवार और इष्ट मित्रों में मिष्ठान्न वितरित कर उत्सव मनावें।

अर्घ्यावली

देव शास्त्र गुरु

जल परम उज्ज्वल गन्ध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं।
वर धूप निरमल फल विविध, बहु जनम के पातक हरूं।।
इह भांति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूँ।
अरिहन्त श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ।।
वसु विधि अर्घ सँजोय के, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजौं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन।।

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विद्यमान बीस तीर्थंकर

जल फल आठों द्रव्य, अरघ कर प्रीति धरी है,
गणधर इन्द्रनिहूतैं, थुति पूरी न करी है।
द्यानत सेवक जानके (हो) जगतैं लेहु निकार,
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेह मंझार।
श्री जिनराज हो, भव तारण तरण जहाज।।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध परमेष्ठी

जल फल वसुवृंदा अरघ अमंदा, जजत अनंदा के कंदा।
मेटो भवफंदा सब दुखदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा।।
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवन नामी, अंतरयामी अभिरामी।
शिवपुर विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी शिरनामी।।

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तीस चौबीसी

द्रव्य आठों जु लीना है, अर्घ कर में नवीना है।
पूजतां पाप छीना है, भानुमल जोर कीना है।।
दीप अढ़ाई सरस राजै, क्षेत्र दश ता विषै छांजै।
सात शत बीस जिनराजै, पूजतां पाप सब भाजै।।

ओं ह्रीं पञ्च-भरत-पञ्च-ऐरावत-दसक्षेत्रसम्बन्धिविंशत्यधिकसप्तशत जिनेन्द्रेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय चौबीसी

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों।।
चौबीसों श्रीजिनजंद, आनन्दकंद सही।
पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्ष मही।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभादि-वीरांत-चतुर्विंशति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

श्री आदिनाथ जी

शुचि निर्मल नीरं गंध सुअक्षत, पुष्प चरु ले मन हरषाय।
दीप धूप फल अर्घ सु लेकर, नाचत ताल मृदंग बजाय।।
श्रीआदिनाथ के चरण कमल पर, बलि बलि जाऊँ मनवचकाय।
हो करुणानिधि भव दुःख मेटो, यातैं मैं पूजों प्रभु पाय।।

ओं ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीपद्‌मप्रभ स्वामी

जल चन्दन अक्षत पुष्प, नेवज आदि मिला।
मैं अष्ट द्रव्य से पूज, पाऊँ सिद्ध शिला।।
बाड़ा के पद्‌म जिनेश, मंगलरूप सही।
काटो सब क्लेश महेश, मेरी अर्ज यही।।

ओं ह्रीं श्रीपद्‌मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी

वसुविधि अर्घ बनाय मनोहर श्री जिनमन्दिर जावो।
अष्टकर्म के नाश करन को श्री जिन चरण चढ़ावो।।
चंचल चित को रोकि चतुर्गति चक्रभ्रमण निरवारो।
चारू चरण आचरण चतुर नर चन्द्रप्रभु चित धारो।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीवासुपूज्य स्वामी

करों पूजा चित दै अरघ कर लेके सु जिन जी।
हरो बाधा मेरी अरज यह मानो सु प्रभु जी।।
सुरासुर गुण गावैं, सुगुरु मुनि ध्यावैं चरण को।
सुनो वासुपूज्य, हरो दुख स्वामी मरण को।।

ओं ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्तिनाथ भगवान

वसु द्रव्य सँवारी, तुम ढिग धारी, आनंदकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी करुणाधारी, यातैं धारी शिवनारी।।
श्री शांति जिनेशं, नुत शक्रेशं, वृष चक्रेशं चक्रेशं।।
हनि अरि चक्रेशं हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं।।

ओं ह्रीं श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नेमिनाथ स्वामी

जल फल द्रव्य मिलाय गाय गुण रत्नथार भरिये सुखदान।
अष्ट कर्म के नाशक प्रभु को पूजों निजगुणदायक जान।।
बालब्रह्मचारी जगतारी, नेमीश्वर जिनराज महान।
मैं नित ध्यान धरूँ प्रभु तेरा, मौकूँ दीजो अविचल थान।।

ओं ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ स्वामी

नीर गंध अक्षतान्, पुष्प चरु लीजिए।
दीप धूप श्रीफलादि, अर्घ तैं जजीजिये।।
पार्श्वनाथ देव सेव आपकी करूँ सदा।
दीजिये निवास मोक्ष भूलिये नहीं कदा।

ओं ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर स्वामी

जल फल वसु सजि हिम थार, तन मन मोद धरों।
गुण गाऊँ भवदधितार, पूजत पाप हरों।
श्री वीर महा अतिवीर, सन्मति नायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर, सन्मति दायक हो।

ओं ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पाँच बालयति

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ, अरघ बनानत हैं,
वसुकर्म अनादि संयोग ताहि नशावत हैं।
श्री वासुपूज्य मलि नेम पारस वीर अती,
नमूँ मन वच तन धरि प्रेम पांचों बालयती।।

ओं ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर पंचबालयति तीर्थंकरेभ्यः अनर्घ्य-पद-प्राप्तये-अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाहुबलि स्वामी

वसुविधि के बस वसुधा सबही, परबस अति दुःख पावै।
तिहि दुःख दूर करन को भविजन, अर्घ जिनाग्र चढ़ावै।।
परमपूज्य वीराधिवीर जिन, बाहुबली बलधारी।
तिनके चरण-कमल को नित प्रति, धोक त्रिकाल हमारी।।

ओं ह्रीं श्री बाहुबलीपरमयोगीन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

सोलहकारण

जल फल आठों दरब चढ़ाय 'द्यानत' वरत करों मनलाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।।
दरशविशुद्धि भावना भाय सोलह तीर्थंकर-पद-पाय।
परम गुरु हो जय जय नाथ परम गुरु हो।।

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोड़शकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

पंचमेरु जिनालय

आठ दरबमय अरघ बनाय 'द्यानत' पूजौं श्रीजिनराज।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।
पांचों मेरु असी जिन धाम, सब प्रतिमा को करो प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय।।

ओं ह्रीं सुदर्शन-विजय-अचल-मन्दर-विद्युन्मालि-पंचमेरु-सम्बन्धि- जिनचैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वरद्वीप जिनालय

यह अरघ कियो निज-हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिव-खेत, भूमि समरपतु हो।।
नन्दीश्वर श्रीजिनधाम बावन पुंज करो।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम आनन्द भाव धरो।।
नन्दीश्वर दीप महान चारों दिशि सोहें।
बावन जिनमन्दिर जान, सुरगण मनमोहें।।

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपञ्चाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षणधर्म

आठो दरव संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों।
भव आताप निवार, दस-लच्छन पूजौं सदा।।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तर्षि

जल गंध अक्षत पुष्प चरुवर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठौं द्रव्य-मिश्रित, अर्घ कीजे पावना।।
मन्वादि चारण ऋद्धि-धारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातक हरें सारे, सकल आनन्द विस्तरूं।।

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण क्षेत्र

जल गंध अक्षत फूल चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोर कर विनती करौं।।
सम्मेदगढ़ गिरनार चम्पा, पावापुरि कैलाशकों।
पूजों सदा चौबीस जिन, निर्वाणभूमि-निवासकों।।

ओं ह्रीं श्रीचतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस्वती

जल चंदन अक्षत फूल चरु, अरु दीप धूप अति फल लावै।
पूजा को ठानत जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुखपावै।।
तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन-मानी पूज्य भई।

ओं ह्रीं श्री जिन-मुखोद्भव-सरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्मेदशिखर

जल गन्धाक्षत फूल सु नेवज लीजिये।
दीप धूप फल लेकर अर्घ चढ़ाइये।।
पूजौं शिखर सम्मेद सु मन वच काय जू।
नरकादिक दुख टरै अचलपद पाय जू।।

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ऋषिमण्डल

जल फलादिक द्रव्य लेकर अर्घ सुन्दर कर लिया।
संसार रोग निवार भगवन् वारि तुम पद में दिया।।

जहाँ सुभग ऋषिमंडल विराजैं पूजि मन वच तन सदा।
तिस मनोवांछित मिलत सब सुख स्वप्न में दुख नहिं कदा।।

ओं ह्रीं सर्वोपद्रव-विनाशन-समर्थाय, रोग-शोक-सर्व-संकट हराय, सर्वशान्ति-पुष्टि-कराय, श्रीवृषभादि चौबीस तीर्थंकर, अष्ट वर्ग, अरहंतादि पंचपद, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, चतुर्णिकाय देव, चार प्रकार अवधिधारक श्रमण, अष्ट ऋद्धि संयुक्त ऋषि, बीस चार सूर, तीन ह्रीं, अर्हंतबिम्ब, दशदिग्पाल यन्त्र सम्बन्धिपरमदेवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्यश्री शांतिसागर जी,
श्री वीरसागरजी, श्रीचन्द्रसागर जी महाराज

जल चन्दन अक्षत फूल मनोहर नेवज नयनन मनहारी।
ले दीप धूप फल लेकर अर्घ्य उतारी 'सूरजमल' शिव सुखकारी।।
श्री शांतिसिन्धुजी वीर सिन्धूजी चन्द्रसिन्धु मुनिवर ध्याऊँ।
हो तत्त्व प्रकाशी स्वर्ग निवासी करो कृपा ज्यों शिव पाऊँ।।

ओं ह्रीं समाधिप्राप्ताचार्य श्रीशांतिसागरवीरसागरचन्द्रसागरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री धर्मसागर जी

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर-दीप धूप फलोत्तमम्।
भवि पूजकर तुमरे चरण को पावें पद जो श्रेष्टतम्।।
श्री धर्मसिन्धु महामुनि को जो भविक पूजा करें।
दुख द्वंद फंद नसाय सब ही सकल आनन्द विस्तरें।।

ओं ह्रीं समाधिप्राप्ताचार्य श्री धर्मसागरस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

जल गन्ध अक्षत पुष्प चरुवर-दीप धूप फलोत्तम।
भवि पूजकर तुमरे चरण को पावें पद जो श्रेष्ठतम।।
श्री विद्यासिन्धु महामुनि की जो भविक पूजा करें।
दुख द्वंद फंद नसाय सब ही सकल आनन्द विस्तरें।।

ओं ह्रीं आचार्य श्रीविद्यासागरस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महार्घ्य

प्रभुजी अष्ट द्रव्यजु ल्यायो भावसों,
प्रभुजी थां का हरष गुण गाऊं महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।
प्रभु जी थाँकी तो पूजा भवि जन नित करै,
जाका अशुभ कर्म कट जाय महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।१।।
प्रभु जी थांकी तो पूजा भवि जीव जो करे,
सो तो सुरग मुकतिपद पावे महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।२।।
प्रभुजी इन्द्र धरणेंद्रजी सब मिलि गाय,
प्रभु का गुणां को पार न पाइया।
प्रभुजी थे छो जी अनन्ता जी गुणवान,
थांने तो सुमरयां संकट परिहरै।
प्रभुजी थे छो जी साहब तीनों लोक का,
जिनराय मैं छूं जी निपट अज्ञानी महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।३।।
प्रभुजी थांका तो रुपजी निरखन कारणे,
सुरपति रचिया छै नयन हजार महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।४।।
प्रभुजी नरक निगोद में भव भव मैं रुल्यो,
जिनराय सहिया छै दुःख अपार महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।५।।
प्रभुजी अब तो शरणोजी थारो मैं लियो,

किस विधि कर पार लगावो महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।६।।
प्रभुजी म्हारो तो मनड़ो थाँमेंजी घुल रह्यो,
ज्यों चकरी विच रेशम की डोरी महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।७।।
प्रभुजी तीन लोक में हैं जिन-बिम्ब,
कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय पूजस्याँ महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।८।।
प्रभुजी जल चंदन अक्षत पुष्प नैवेद्य,
दीप धूप फल अर्घ चढ़ाऊं महाराज,
जिन चैत्यालय महाराज, सब चैत्यालय महाराज।
यो मन हरख्यो प्रभू थाँकी पूजा जी रे कारणे।।६।।
प्रभुजी अष्ट दरव जु ल्याओ बनाय,
पूजा रचाऊं श्री भगवान की महाराज।।
यो मन हरख्यो प्रभू थांकी पूजा जी रे कारणे।।१०।।

ओं ह्रीं भावपूजा–भाववंदना–त्रिकालपूजा–त्रिकालवंदनापूर्वकं श्रीअर्हत्–सिद्धाचार्योपाध्याय–सर्वसाधु–पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः। प्रथमानुयोग–करणानुयोग चरणानुयोग–द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः। दर्शनविशुद्ध्यादि–षोड़शकारणेभ्यो नमः। उत्तम क्षमादिदशलाक्षणिकधर्मेभ्यो नमः। सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चारित्रेभ्यो नमः। कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो नमः। विदेहक्षेत्रे विद्यमानविंशति तीर्थंकरेभ्यो नमः। पंचभरत–पंच ऐरावत–सम्बन्धिविंशत्यधिकसप्तशत जिनराजेभ्यो नमः। नंदीश्वरद्वीपसम्बन्धिद्विपंचाशज्जिनचैत्यालयेभ्यो नमः। पंचमेरु सम्बन्धि–अशीतिजिनचैत्यालयेभ्यो नमः। सम्मेदशिखर–कैलाश–चंपापुर–पावापुर–गिरनार–सोनागिर–मथुरादि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः जैनबद्री–मूड़बद्री–देवगढ़–चन्देरी–पपौरा–हस्तिनापुर–अयोध्या–राजगृही–तारंगा–चमत्कारजी–श्रीमहावीरजी–पद्मपुरी तिजारादि अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः। श्री चारण–ऋद्धिधारीसप्तपरमर्षिभ्योनमः।

ओं ह्रीं श्रीमंतं भगवन्तं कृपालुसन्तं श्रीवृषभादिमहावीरपर्यन्तचतुर्विंशति तीर्थंकर–परमदेवं आद्यामाद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे .... नाम्नि नगरे .... वीर निर्वाणाब्दे मासानामुत्तमे .... मासे शुभे .... पक्षे .... तिथौ .... वासरे मुनि–आर्यिका– श्रावकश्राविकानां सकलकर्मक्षयार्थं (जलधारा) अनर्घ्यपदप्राप्तये महार्घ्यं सम्पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्रीपंचमहागुरुभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

यहां पर कायोत्सर्ग पूर्वक नौ बार णमोकार मंत्र जपना चाहिये।

नोटः- शान्ति पाठ एवं विसर्जन भाग एक के पृष्ठ १८७ से १६० तक पढ़ें।

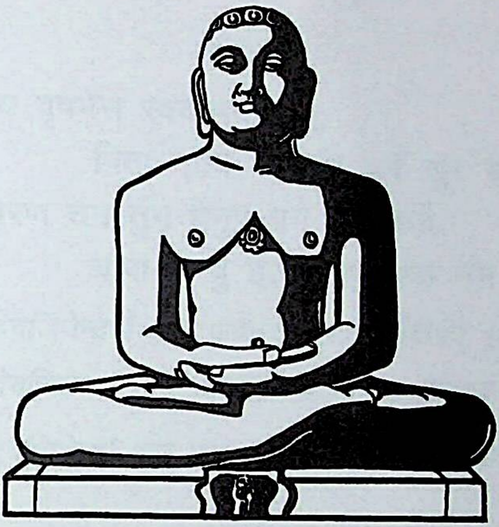

तृतीय भाग

चौबीस तीर्थंकरों की पूजाएं

श्री वृषभदेव जिनपूजा

अडिल्ल

परमपूज्य वृषभेस स्वयम्भूदेव जू,
पिता नाभि मरुदेवि करैं सुर सेव जू।
कनक-वरण तन तुंग धनुष पन-शत तनों,
कृपा-सिन्धु इत आइ तिष्ठ मम दुख हनो।।

ओं ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)

ओं ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अष्टक

छन्द—द्रुतविलम्बित तथा सुन्दरी

हिमवनोद्भव-वारि सु धारिकैं, जजत हों गुन-बोध उचारिकैं।
परम-भाव सुखोदधि दीजिए, जन्म मृत्यु जरा छय कीजिए।।

ओं ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलय-चन्दनं दाह-निकन्दनं, घसि उभै कर में करि वन्दनं।
जजत हों प्रशमाश्रम दीजिए, तपत ताप त्रिधा छय कीजिए।।

ओं ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल तन्दुल खण्ड-विवर्जितं, सित निशेश-हिमामिय-तर्जितं।
जजत हों तसु पुंज धराजयी, अखय सम्पति द्यो जिनरायजी।।

ओं ह्रीं श्री वृषभदेवजिनेन्द्रायाक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कमल चम्पक केतकी लीजिए, मदन-भंजन भेंट धरीजिए।
परम शील महा सुखदाय हैं, समरं-सूल निमूल नशाय हैं।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस मोदन मोदक लीजिए, हरन भूख जिनेश जजीजिए।
सकल आकुल-अन्तक-हेतु हैं, अतुल शान्त-सुधारस देतु हैं।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निविड़ मोह-महातप छाइयो, स्व-पर-भेद न मोहि लखाइयो।
हरन-कारन दीपक तासके, जजत हों पद केवल भासके।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर-चन्दन आदिक लेयकें, परम पावन गन्ध सुखेयकें।
अगनि-संग जरै मिस धूमके, सकल कर्म उड़े यह घूमके।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्रायाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस पक्व मनोहर पावने, विविध लै फल पूज रचावने।
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिए, हमहिं मोक्ष महाफल दीजिए।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल-फलादि समस्त मिलायकैं, जजत हों पद मंगल गायके।
भगत-वत्सल दीन-दयालजी, करहु मोहि सुखी लखि हालजी।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

द्रुतविलम्बित तथा सुन्दरी

असित दोज अषाढ़ सुहावनी, गरभ-मंगलको दिन पावनी।
हरि-सची पितु-मातहिं सेवही, जजत हैं हम श्री जिनदेव ही।।

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णाद्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीवृषभनाथाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चैत सुनौमि सुहाइयो, जनम-मंगल ता दिन पाइयो।
हरि महागिरिपै जजियो तबै, हम जजैं पद-पंकजको अबै।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णानवमीदिने जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीवृषभनाथाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित नौमि सुचैत धरे सही, तप विशुद्ध सबै समता गही।
निज सुधारससों भर लाइयौ, हम जजैं पद अर्घ चढ़ाइयो।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णानवमीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय श्रीवृषभनाथाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित फागुन ग्यारसि सोहनों, परम केवलज्ञान जग्यो भनो।
हरि-समूह जजैं आइकैं, हम जजैं इत मंगल गाइकैं।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानसाम्राज्यमंगलप्राप्ताय श्रीवृषभनाथाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चौदसि माघ विराजई, परम मोक्ष सुमंगल साजई।
हरि-समूह जजे कैलासजी, हम जजैं अति धार हुलासजी।।

ओं ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्री वृषभनाथाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

घत्तानन्द

जय जय जिन-चन्दा आदि जिनन्दा, हनि भव-फन्दा-कन्दा जू।
वासव-शत-वन्दा धरि आनन्दा, ज्ञान अमन्दा नन्दा जू।।

छन्द मोतियदाम

त्रिलोक-हितंकर पूरन पर्म, प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म।
जतीसुर ब्रह्म-विदांवर बुद्ध, वृषंक अशंक क्रियांबुधि शुद्ध।।
जबै गर्भागम-मंगल जान, तबै हरि हर्ष हिये अति आन।
पिता-जननीपद सेव करेय, अनेक प्रकार उमंग भरेय।।
जये जब ही तब ही हरि आय, गिरीन्द्रविषै किय न्हौंन सुजाय।
नियोग समस्त किये तित सार, सुलाय प्रभू पुनि राज-अगार।।
पिता-कर सोंपि कियो तित नाट, अमन्द अनन्द समेत विराट।
सुथान पयान कियो फिर इन्द, इहाँ सुर-सेव करैं जिन-चन्द।।

किये चिरकाल सुखाश्रित राज, प्रजा सब आनन्द को तित साज।
सुलिप्त सुभोगनिमें लख जोग, कियो हरिने यह उत्तम योग।।
निलंजन नाच रच्यो तुम पास, नवों रस-पूरित भाव विलास।
बजै मिरदंग दृमं दृम जोर, चलै पग झारि झनांझन झोर।।
घनाघन घण्ट करै धुनि मिष्ट, बजै मुहचंग सुरान्वित पुष्ट।
खड़ी छिन पास छिनहि आकाश, लघू छिन दीरघ आदि विलास।।
तंतच्छन ताकि विलै अविलोय, भये भवतैं भय-भीत बहोय।
सुभावत भावन बारह भाय, तहाँ दिव-ब्रह्म-ऋषीश्वर आय।।
प्रबोध प्रभू सुगये निज धाम, तबै हरि आय रची शिवकाम।
कियो कचलोंच विराग-अरन्य, चतुर्थम ज्ञान लह्यो जग-धन्य।।
धरौ तब योग छ मास प्रमान, दियो शिरियंस तिन्हें इख दान।
भयो जब केवलज्ञान जिनेन्द्र, समौसृत-ठाठ रच्यो सु धनेन्द्र।।
तहां वृषतत्त्व प्रकाशि अशेष, कियो फिर निर्भय-थान प्रवेश।
अनन्त गुनातम श्रीसुख-राश, तुम्हें नित भव्य नमैं शिव-आश।।

घत्तानन्द

यह अरज हमारी, सुनि त्रिपुरारी, जनम जरा मृति दूर करो।
शिव-सम्पति दीजे, ढील न कीजे, निज लख लीजे कृपा धरो।।

ओं ह्रीं श्रीवृषभदेवजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्या

जो ऋषभेश्वर पूजै, मन-वच तन भाव शुद्ध कर प्रानी।
सो पावै निश्चैसों, भुक्ती औ मुक्ति सार सुख-थानी।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पाजंलिं क्षिपामि)

श्री अजितनाथ जिनपूजा

(छन्द-अशोकपुष्पमंजरी, दंडक, अर्धमंजरी तथा अर्द्धनाराच)

त्याग वैजयन्त सार सार-धर्म के अधार।
जन्मधार धीर नग्र सुष्ठु कौशलापुरी।।
अष्ट दुष्ट नष्टकार मातु वैजयाकुमार।
आयु लक्ष पूर्व दक्ष है बहत्तरै पुरी।।
ते जिनेश श्री महेश शत्रु के निकन्दनेश।
अत्र हेरिये सुदृष्टि भक्त पै कृपा पुरी।।
आय तिष्ठ इष्ट देव मैं करों पदाब्जसेव।
परम शर्मदाय पाय आय शर्म आपुरी।।

ओं ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री अजितनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

गंगाह्रद पानी, निर्मल आनी, सौरभसानी सीतानी।
तसु धारत धारा, तृषा निवारा, शांतागारा सुखदानी।।
श्री अजितजिनेशं, नुतनक्रेशं, चक्रधरेशं खग्गेशं।
मनवांछितदाता त्रिभुवनत्राता, पूजों ख्याता जग्गेशं।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि चंदन बावन, ताप मिटावन, सौरभ पावन घसि ल्यायो।
तुम भव तप भंजन, हो शिवरंजन, पूजन रंजन मैं आयो।। श्री.।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सितखंड विवर्जित, निशिपति तर्जित, पुंज विधर्जित तंदुल को।
भवभावनिखर्जित शिवपदसर्जित, आनंदभर्जित दंदल को।।श्री.।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

मनमथ मदमंथन, धीरजग्रंथन, ग्रंथ निग्रंथन ग्रन्थपति।
तुअ पादकुशेसे, आदिकुशेसे, धारि अशेसे अर्चयति।।श्री.।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आकुलकुलवारन, थिरता कारन, छुध विदारन चरु लायो।
षटरसकर भीने, अन्न नवीने, पूजन कीने सुख पायो।।श्री०।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपकमनिमाला, जोत उजाला, भरि कनथाला ह्राथ लिया।
तुम भ्रमतमहारी, शिवसुखकारी, केवलधारी पूज किया।। श्री०।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगरादिक चूरन, परिमलपूरन, खेवत कूरन कर्म जरैं।
दशहूँ दिशि धावत, हर्ष बढ़ावत, अलिगुण गावत नृत्य करैं।।श्री०।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम नरंगी, श्रीफल पुंगी, आदि अभंगी सौं अरचौं।
सब विघनविनाशै, सुखपरकाशैं, आतम भासै मौ विरचौं।।श्री०।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलफल सब सज्जै, बाजत बज्जै, गुनगनरज्जै मनमज्जै।
तुअ पदजुगमज्जै सज्जन जज्जै, ते भव भज्जै निजकज्जै।।श्री०।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

जेठ असित अमावशि सोहै, गर्भदिना नन्द सो मन मोहै।
इन्द फनिन्द जजे मन लाई, हम पद पूजत अर्घ्य चढ़ाई।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णामावस्यायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ सुदी दशमी दिन जाये, त्रिभुवन में अति हर्ष बढ़ाये।
इन्द फनिन्द जजैं तित आई, हम तित सेवत हैं हुलसाई।।

ओं ह्रीं माघशुक्लदशमीदिने जन्ममंगलमंडिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघसुदी नवमी तप धारा, भव तन भोग अनित्य विचारा।
इन्द फनिन्द जजैं तित आई, हम पद सेवत हैं हुलशाई।।

ओं ह्रीं माघशुक्लनवमीदिने तपोमंगलमंडिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौषसुदि तिथि एकादशी सुहायो, त्रिभुवनभानु सु केवल जायो।
इन्द फनिन्द, जजैं तित आई, हम पद पूजत प्रीत लगाई।।

ओं ह्रीं पौषशुक्लैकादशीदिने ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमि चैतसुदी निरवाना, निजगुनराज लियो भगवाना।
इन्द फनिन्द, जजैं तित आई, हम पद पूजत हैं गुन गाई।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लपंचमीदिने निर्वाणमंगलमंडिताय श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

अष्ट दुष्ट को नष्ट करि, इष्ट मिष्ट निज पाय।
शिष्ट धर्म भाख्यो हमें, पुष्ट करो जिनराय।।

(पद्धरी)

जय अजितदेव तुअ गुन अपार, पै कहूं कछुक लघु बुद्धि धार।
दश जनमत अतिशय बल अनंत, शुभ लच्छन मधुर वचन भनंत।।
संहनन प्रथम मलरहित देह, तन सौरभ शोणित स्वेत जेह।
वपु स्वेद-बिना महरूप धार, समचतुर धरें संठान चार।।
दश केवल, गमन आकाश देव, सुरभिच्छ रहे योजन सतेव।
उपसर्गरहित जिन तन सु होय, सब ज़ीव रहित बाधा सु जोय।।
मुख चारि सरब विद्या अधीश, कवलाहार सुवर्जित गरीश।
छाया बिनु नख कच बढ़ै नाहिं, उन्मेष टमक नहिं भ्रुकुटि माहिं।।
सुरकृत दश चार करों बखान, सब जीव मित्रताभाव जान।
कंटक बिन दर्पणवत् सुभूम, सब धान वृच्छ फल रहे झूम।

षट्रितु के फूल फल निहार, दिशि निर्मल जिय आनंद धार।
जहँ शीतल मन्द सुगन्ध वाय, पद पंकज तल पंकज रचाय।।
मल रहित गगन सुर जय उचार, वरषा गन्धोदक होत सार।
वर धर्मचक्र आगे चलाय, वसु मंगलजुत वह सुर रचाय।।
सिंहासन छत्र चमर सुहात, भामंडल छवि वरनी न जात।
तरु उच्च अशोक रु सुमनवृष्टि, धुनि दिव्य और दुन्दुभि मिष्ट।।
दृग ज्ञान शर्म वीरज अनंत, गुण छियालीस इम तुम लहंत।
इन आदि अनंते सुगुन धार, वरनत गनपति नहिं लहत पार।।
तब समवशरणमहं इन्द्र आय, पद पूजत वसुविधि दरब लाय।
अति भगति सहित नाटक रचाय, ता थेई थेई धुनि रही छाय।।
पग नुपूर झन नन झनन नाय, तननननन तनन तान गाय।
घननन घननन घंटा घनाय, छम छम छम छम घुंघरु बजाय।
दृमदृम दृमदृम दृम मुरजध्वान, संसाग्रदि सरंगीसुर भरत तान।
झट झट झट अटपट नटत नाट, इत्यादि रच्यो अद्भुत सुठाट।।
पुनि वंदि इन्द्र नुति थुति करंत, तुम हो जग में जयवंत संत।
फिर तुम विहार करि धर्मवृष्टि, सब जोग निरोध्यो परम इष्ट।।
सम्मेदथकी लिय मुकतिथान, जय सिद्धशिरोमन गुणनिधान।
'वृन्दावन' वन्दत बार बार, भवसागरतें मों तार तार।।

(घत्तानन्द)

जय अजित कृपाला, गुनमणिमाला, संजमशाला बोधपती।
वर सुजस उजाला, हीरहिमाला, ते अधिकाला स्वच्छ अती।।

ओं ह्रीं श्रीअजितनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जो जन अजित जिनेश जजै है मनवचकाई।
ताकों होय अनन्द ज्ञान सम्पति सुखदाई।।
पुत्र मित्र धन धान्य सुजस त्रिभुवनमहं छावैं।
सकल शत्रु छय जाय अनुक्रम सों शिव पावैं।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री संभवनाथ जिनपूजा

छन्द मदावलिप्तकपोल

जय संभव जिनचन्द सदा हरिगन चकोरनुत।
जयसेना जसु मातु जैति राजा जितारिसुत।।
तजि ग्रीवक लिये जन्मनगर सावत्री आई।
सो भव भंजनहेत भगत पर होहु सहाई।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

छन्द-चौबोला

मुनिमन सम उज्ज्वल जल लेकर कनक कटोरी में धारा।
जनम जरा मृतु नाश करन कों तुम पदतर ढारों धारा।।
संभवजिन के चरन चरचतें, सब आकुलता मिट जावै।
निजनिधिज्ञानदरशसुखवीरज, निराबाध भविजन सुख पावै।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

तपत दाह को कंदन चंदन, मलयागिरि को घसि लायो।
जग वंदन भौफंदनखंदन, समरथ लखि शरनै आयो।। संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

देवजीर सुखदास कमल वासित, सित सुन्दर अनियारे।
पुँज धरों इन चरनन आगे, लहों अखयपदकों प्यारे।। संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी बेल चमेली, चम्पा जूही सुमन वरा।
तासों पूजत श्रीपति तुम पद, मदनबान विध्वंस करा।।संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर बावर मोदन मोदक, खाजा ताजा सरस बना।
तासों पद श्रीपत को पूजत, छुधारोग ततकाल हना।।संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घट पट परकाशक भ्रमतम नाशक, तुम ढिग ऐसो दीप धरों।
केवलजोत उदोत होउ मोहि, यही सदा अरदास करों।।संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर कृषनागर, श्रीखंडादिक चूर हुतासन में।
खेवत हों तुम चरन जलज ढिग, कर्म छार जरि है छन में।।संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल लौंग बदाम छुहारा, एला पिस्ता दाख रमैं।
लैं फल प्रासुक पूजों तुम पद, देहु अखयपद नाथ हमैं।।संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन तन्दुल पुष्प चरु, दीप धूप फल अर्घ्य किया।
तुमको अरपों भाव भगतिधर जै जै जै शिवरमनि पिया।।संभव०।।

ओं ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

(छन्द हंसी मात्रा १५)

माता गर्भविषैं जिन आय, फागुनसित आठैं सुखदाय।
सेयो सुरतिय छप्पन वृन्द, नानाविधि मैं जजों जिनन्द।।

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लाष्टम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक सित पूनम तिथि जान, तीन ज्ञान जुत जनम प्रमान।
धरि गिरिराज जजे सुरराज, तिन्हें जजों मैं निजहित काज।।

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लपूर्णिमायां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मगसिर सित पून्यों तप धार, सकल संग तजि जिन अनगार।
ध्यानादिक बल जीते कर्म, चर्चो चरन देहु शिवशर्म।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षपूर्णिमायां तपोमंगलमंडिताय श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि०स्वाहा।

कार्तिक कलि तिथि चौथ महान, घाति घात लिये केवलज्ञान।
समवशरनमँह तिष्ठे देव, तुरिय चिह्न चर्चो वसुभेव।।

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णचतुर्थ्यां केवलज्ञानमंगलमंडिताय श्री संभवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत शुक्ल तिथि षष्ठी धोख, गिर सम्मेदतैं लीनों मोख।
चार शतक धनु अवगाहना, जजों तासपद थुतिकर घना।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लषष्ठ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री संभवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि०स्वाहा।

जयमाला

श्रीसंभव के गुन अगम, कहि न सकत सुरराज।
मैं वशभक्ति सुधीर ह्वे, विनवों निज हितकाज।।

छन्द मोतीयादाम

जिनेश महेश गुनेश गरिष्ठ, सुरासुर सेवित इष्ट वरिष्ठ।
धरे वृषचक्र करे अघ चूर, अतत्त्वछपातममर्द्दन सूर।।
सुतत्त्व प्रकाशन शासन शुद्ध, विवेक विराग बढ़ावन बुद्ध।
दयातरु-तर्पन मेघ महान, कुनयगिरिगंजन वज्रसमान।।
सुगर्भरु जन्ममहोत्सव माहिं, जगज्जन आनंदकंद लहाहिं।
सुपूरब साठहि लच्छ जु आय, कुमार चतुर्थम अंश रमाय।।
चवालिस लाख सुपूरब एव, निकंटक राज कियो जिनदेव।
तजे कुछ कारन पाय सु राज, धरे व्रत संजम आतमकाज।।
सुरेन्द्र नरेन्द्र दियो पयदान, धर्‍यो वन में निजआतमध्यान।
कियो चवघातिय कर्म विनाश, लियो तब केवलज्ञान प्रकाश।।

भई समवसृत ठाट अपार, खिरै धुनि झेलहिं श्री गनधार।
भने षट् द्रव्य तने बिसतार, चहूँ अनुयोग अनेक प्रकार।।
कहें पुनि त्रेपन भाव विशेष उभै विधि हैं उपशम्य जु भेष।
सुसम्यक्चारित्र भेद स्वरूप, अबै इमि छायक नौ सुअनूप।।
दृगौ बुधि सम्यग्चारित दान, सुलाभरु भोगोपभोग प्रमान।
सुवीरज संजुत ए नव जान, अठार छयोपशम इम प्रमान।।
मति श्रुति औधि उभै विधि जान, मनःपरजैं चखु और प्रमान।
अचक्खु तथा विधि दान रु लाभ, सुभोगोपभोगरुवीरज साभ।।
व्रताव्रत संजम और सु धार, धरे गुन सम्यक्चारित भार।
भये वसु एक समापत येह, इकीश उदीक सुनो अब जेह।।
चहूँ गति चारि कषाय तिवेद, छहलेश्या और अज्ञान विभेद।
असंजम भाव लखो इस माहिं, असिद्धित और अतत्त कहांहिं।।
भये इकबीस सुनो अब और, सुभेद त्रियं पारिनामिक ठौर।
सुजीवित भव्यत और अभब्ब, तरेपन एम भने जिन सब्ब।।
तिन्हों मँह केतक त्यागन जोग, कितनेक गहेतैं मिटै भवरोग।
कह्यो इन आदि लह्यो फिर मोख, अनन्त गुनातम मण्डित चोख।।
जजों तुम पाय जपौं गुनसार, प्रभु हमको भवसागर तार।
गही शरनागत दीन दयाल, विलंब करो मति हे गुनमाल।।

छन्द-घत्तानन्द

जै जै भवभंजन जन मन रंजन, दयाधुरन्धर कुमतिहरा।
"वृन्दावन" वन्दत मन आनन्दित, दीजे आतमज्ञानवरा।।

ओं ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

छन्द अडिल्ल

जो बांचैं यह पाठ सरस संभवतनों।
सो पावै धनधान्य सरिस सम्पत्ति घनों।।
सकल पाप छै जाय सुजस जग में बढ़ै।
पूजत सुरपद होय अनुक्रम शिव चढ़ै।।

इत्याशीर्वादः(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री अभिनन्दननाथ जिनपूजा

छन्द-मदाविलिप्तकपोल

अभिनन्दन आनन्दकन्द, सिद्धारथ नन्दन।
संवर पिता दिनन्द चन्द, जिहिं आवत वन्दन।।
नगर अयोध्या जनम इन्द नागिंद जु ध्यावैं।
तिन्हैं जजन के हेत थापि, हम मंगल गावैं।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

(छन्द गीता, हरिगीता तथा रूपमाला)

पदमद्रहगत गंगचंग, अभंग धार सुधार है।
कनकमणिगनजड़ित झारी, द्वारधार निकार है।।
कलुष ताप निकन्द श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द है।
पद वंद वृन्द जजे प्रभु भवदन्द-फन्द निकन्द है।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतचन्दन कदलिनन्दन, सुजलसंग घसायकैं।
हैं सुगन्ध दशोंदिशामें, भ्रमैं मधुकर आयकैं।।कलुष०।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

हीर हिम शशि फेन मुक्ता, सरिस तन्दुलसेत हैं।
तास को ढिग पुंज धारौं, अखय पद के हेत हैं।।कलुष०।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

समरसुभटनिघटन कारन सुमन सुमन समान हैं।
सुरभितैं जापैं करै झंकार, मधुकर आन हैं।।कलुष०।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस ताजे नव्य गव्य मनोज्ञ, चितहर लेयजी।
क्षुधाछेदन छिमा छितिपति के, चरन चरचेय जी।।
कलुषताप निकन्द श्रीअभिनन्द, अनुपम चन्द है।
पदवन्द वृन्द जजे प्रभु भवदन्द-फन्द निकन्द है।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अतत तम मर्दन किरनवर, बोधभानु विकाश है।
तुम चरनढिग दीपक धरों, मोहि होहु स्वप्रकाश है।।कलुष०।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

भूर अगर कपूर चूर सुगन्ध, अगिनि जराय है।
सब करमाष्ट सुकाष्ठ मैं मिस, धूपधूम उड़ाय है।।कलुष०।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम निम्बु सदा फलादिक, पक्वपावन आनजी।
मोक्षफल के हेत पूजौ, जोरिकै जुगपान जी।।कलुष०।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टद्रव्य संवारि सुन्दर, सुजस गाय रसाल ही।
नचत रचत जजों चरन जुग, नाय नाय सुभाल ही।।कलुष०।।

ओं ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

छंन्द हरिपद

शुकलछट्ट वैशाख विषै तजि, आये श्रीजिनदेव।
सिद्धारथमाता के उर में करै शची शुचि सेव।।
रतनवृष्टि आदिक वर मंगल होत अनेक प्रकार।
ऐसे गुननिधिको मै पूजौं, ध्यावों बारम्बार।।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री अभिनन्दनजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघशुक्ल तिथिद्वादशि के दिन, तीन लोक हितकार।
अभिनन्दन आनन्दकन्द तुम, लीन्हों जग अवतार।।
एक महूरत नरकमांहि हूँ, पायो सब जिन चैन।
कनकवरन कपि चिन्ह धरनपद, जजों तुमैं दिन रैन।।

ओं ह्रीं माघशुक्लद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

साढ़े छत्तिसलाख सुपूरब राजभोग वर भोग।
कछु कारन लखि माघशुक्ल, द्वादशि को धास्यो जोग।।
षष्ठम नेम समाप्त करि लिय, इंद्रदत्त घर छीर।
जयधुनि पुष्परत्नगन्धोदक, वृष्टि सुगन्ध समीर।।

ओं ह्रीं माघशुक्लद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौषशुक्ल चौदशिको घाते घातिकरम दुखदाय।
उपजायो वरबोध जास को केवल नाम कहाय।।
समवसरनलहि बोधिधरम कहि, भव्यजीवसुखकन्द।
मोकों भवसागरतें तारो जय जय जय अभिनन्द।।

ओं ह्रीं पौषशुक्लचतुर्दश्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जोगनिरोध अघातिघाति लहि, गिरसम्मेदतैं मोख।
मास सकल सुखरास कहे वैशाखशुक्ल छठ चोख।।
चतुरनिकाय आय तित कीन्हों भगत भाव उमगाय।
हम पूजैं इत अरघ लेय जिमि विघन सघन मिटजाय।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लषष्ठम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

तुँग सुतन धनु तीन सौ, औ पचास सुखधाम।
कनकवरन अवलोकिकैं, पुनि-पुनि करूँ प्रणाम।।

छन्द-लक्ष्मीधरा

सच्चिदानन्द सद्ज्ञान सद्दर्शनी, सत्स्वरूपा लई सत्सुधासर्सनी।
सर्व आनन्दकन्दा महादेवता, जास पादाब्ज सेवैं सवैं देवता।।
गर्भ और जन्म निःकर्मकल्यान में, सत्त्व को शर्म सवै थान में।
वंशइक्ष्वाकु में आपु ऐसे भये, ज्यों निशाशर्दमें इन्दु स्वेच्छे ठये।।

छन्द लक्ष्मीवती

होत वैराग लौकांतसुर बोधियो, फेरि शिविकासु चढ़ि गहन निजसोधियो।
घाति चौघातिया ज्ञानकेवल भयो, समवसरनादि धनदेव तब निरमयो।।
एक है इन्द्रनीली शिला रत्न की, गोल साढ़े दशे जोजने जत्न की।
चार दिश पैड़िका बीस हज्जार है, रत्न के चूरका कोट निरधार है।।
कोट चहुँओर चहुँद्वार तोरन खंचे, तास आगे चहूँ मानथम्भा रचे।
मान मानी तजैं जास ढिग जायकैं, नम्रता धारत सेवैं तुम्हैं आयकैं।।
बिम्ब सिंहासनों पै जहाँ सोहहीं, इन्द्र नागेन्द्र केते मनै मोहहीं।
वापिका वारिसों जत्र सोहैं भरीं, जासमें न्हात ही पाप जावै टरी।।
तास आगे भरी खातिका वारिसों, हंस सूआदि पंखी रमै प्यारसों।
पुष्प की वाटिका बाग वृच्छें जहाँ, फूल औ श्रीफले सर्वही हैं तहाँ।।
कोट सौवर्ण का तास आगे खड़ा, चार दर्वाज चौ ओर रत्नों जड़ा।
चार उद्यान चारों दिशा में गना, है धुजा पंक्ति औ नाट्यशाला बना।।
तासु आगे त्रिती कोट रूपामयी, तूप नौ जास चारों दिशा में ठयी।
धाम सिद्धान्तधारीन के हैं जहाँ, औ सभा भूमि है भव्य तिष्ठै तहाँ।।
तास आगे रची गन्धकूटी महा, तीन हैं कट्टिनी सारशोभा लहा।
एकपै तौ निधैं ही धरी ख्यात हैं, भव्य प्रानी तहाँ लौं सबैं जात हैं।।

दूसरी पीठ पै चक्रधारी गमै, तीसरे प्रातिहार्ये लसैं भाग में।
तासु पै वेदिका चार थम्भान की, है बनी सर्व कल्यान के खान की।।
तासुपै है सुसिंहासनं भासनं, जासुपै पद्म प्राफुल्ल है आसनं।
तासुपै अन्तरीक्षं विराजै सही, तीन छत्रै फिरैं शीस रत्नै यही।।
वृक्ष शोकापहारी अशोकं लसै, दुन्दुभी नाद औ पुष्प खंते खसै।
देह की ज्योति सों मंडलाकार है, सात भौ भव तामें लखै सार है।।
दिव्यवानी खिरै सर्व शंका हरै, श्री गनाधीश झेलैं सुशक्ति धरै।
धर्मचक्री तुम ही कर्मवक्री हने, सर्वशक्री नमैं मोद धारै घने।।
भव्य को बोधि सम्मेदतैं शिव गये, तत्र इन्द्रादि पूजे सुभक्तीमये।
हे कृपासिंधु मोपैं कृपा धारिये, घोर संसारसों शीघ्र मो तारिये।।

छन्द-घत्तानन्द

जै जै अभिनन्दा आनन्दकन्दा, भवसमुद्र बोर पोत इवा।
भ्रमतमशतखण्डा, भानुप्रचण्डा, तारि तारि जग रैंन दिवा।।

ओं ह्रीं श्री अभिनन्दनजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द-कवित्त

श्री अभिनन्दन पापनिकन्दन, तिन पद जोभवि जजै सुधार।
ताके पुन्नभानु वर उग्गै, दुरित तिमिर फाटै दुखकार।।
पुत्र मित्र धन धान्य कमल यह, विकसै सुखद जगतहित प्यार।
कछुक काल में सो शिव पावै, पढ़ै सुने जिन जजै निहार।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री सुमतिनाथ जिनपूजा

संजमरतन विभूषण भूषित, दूषण वर्जित श्री जिनचन्द।
सुमतिरमारंजन भवभंजन, संजयंत तजि मेरुनरिन्द।।
मातु मंगला सकल मंगला, नगर विनीता जये अमन्द।
सो प्रभु दयासुधारस गर्भित, आय तिष्ठ इत हरि दुखदन्द।।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर-अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्र ! तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम् (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

छन्द-कवित्त तथा कुसुमलता

पंचम उदधितनों सम उज्ज्वल, जल लीनों वरगंध मिलाय।
कनककटोरी माँहिं धारि करि, धार देहुँ सुचि मन वच काय।।
हरिहर वंदित पापनिकंदित, सुमतिनाथ त्रिभुवन के राय।
तुम पदपदम सद्मशिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय।।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागर घनसार घसौं वर, केशर अर करपूर मिलाय।
भवतपहरन चरन पर वारों, जनम जरा मृत ताप पलाय।।हरि०।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शशि सम उज्ज्वल सहित गन्ध तल, दोनों अनी शुद्ध सुखदास।
सो ले अखय सम्पदाकारन, पुंज धरों तुम चरनन पास।। हरि०।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी बेल चमेली, करना अरु गुलाब महकाय।
सो ले समरशूल छयकारन, जजों चरन अति प्रीति लगाय।। हरि०।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नव्य गव्य पकवान बनाऊँ, सुरस देखि दृगमन ललचाय।
सो लैं क्षुधारोग छयकारन, धरो चरन ढिग मन हरषाय।।हरि०।।
हरिहर वन्दित पापनिकन्दित, सुमतिनाथ त्रिभुवन के राय।
तुम पदपद्म सद्मशिवदायक, जजत मुदितमन उदित सुभाय।।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रतनजड़ित अथवा घृतपूरित, वा कपूरमय जोति जगाय।
दीप धरों तुम चरनन आगें, जातैं केवलज्ञान लहाय।।हरि०।।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर कृष्णागर चन्दन, चूरि अगनि में देत जराय।
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम धूम यह तासु उड़ाय।। हरि०।।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल मातुलिंग वर दाड़िम, आम निम्बु फल प्रासुक लाय।
मोक्ष महाफल चाखन कारन, पूजत हों तुमरे जुग पाय।। हरि०।।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन तन्दुल प्रसून चरु, दीप धूप फल सकल मिलाय।
नाचि राचि शिरनाय समरचों, जय जय जय जयजिनराय।। हरि०।।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

रूप चौपाई

संजयंत तजि गरभ पधारे, सावनसेत दुतिय सुखकारे।
रहे अलिप्त मुकुर जिमि छाया, जजों चरन जय जय जिनराया।

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत्र सुकल ग्यारस कँह जानों, जनमे सुमति सहित त्रयज्ञानों।
मानों धर्‍यों धरम अवतारा, जजों चरन जुग अष्टप्रकारा।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत सुकल ग्यारस तिथि भाखा, तादिन तप धरि निज रस चाखा।
पारन पद्मसद्म पय कीनों, जजत चरन हम समता भीनों।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुकल चैत एकादशि हाने, घाति सकल जे जुगपति जाने।
समवसरनमँह कहि वृषसारं, जजहुँ अनन्त चतुष्टयधारं।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत सुकल ग्यारस निरवानं, गिरि समेदतैं त्रिभुवन मानं।
गुनअनन्त निज निरमलधारी, जजों देव सुधि लेहु हमारी।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीसुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सुमति तीनसौ छत्तिसौ, सुमतिभेद दरसाय।
सुमति देहु विनती करों, सुमति विलम्ब कराय।।१।।
दयाबेलि तहँ सगुननिधि, भवि-कमोद-गण-चन्द।
सुमतिसतीपति सुमति कों, ध्यावों धरि आनन्द।।२।।
पंच परावरतन हरन, पंचसुमति सित दैन।
पंच लब्धिदातार के, गुन गाऊँ दिन रैंन।।३।।

छन्द-भुजगंप्रयात

पिता मेघराजा सबै सिद्धकाजा, जपैं नाम जाको सबै दुःख भाजा।
महासूर इक्ष्वाकुवंशी विराजै, गुणग्राम जाकौ सबै ठौर छाजै।४।
तिन्हों के महापुण्यसौं आप जाये, तिहुँलोक में जीव आनन्द पाये।
सुना सीर ताही धारी मेरु धायो, क्रिया जन्म की सर्व कीनी यथा यों।५।
बहुरि ताकों सौंपि संगीत कीनों, नमें हाथ जोरों भली भक्ति भीनों।
बिताई दशैं लाख ही पूर्व वालै, प्रजा लाख उन्तीस ही पूर्व पालैं।६।
कछू हेतु तैं भावना बार भाये, तहाँ ब्रह्म लौकाँत के देव आये।
गये बोधि ताही समै इन्द्र आयो, धरै पालकी में सु उद्यान ल्यायो।७।
नमें सिद्धि को केश लोंचे सबैं ही, धर्‍यो ध्यान शुद्धं जु घाती हने ही।
लह्यो केवलं औ समौसर्न साजं, गणाधीश जु एक सौ सोलराजं।८।
खिरैं शब्द तामैं छहों द्रव्य धारे, गुनौपर्जउत्पादव्यय ध्रौव्य सारे।
तथा कर्म आठों तनी थित्ति गाजं, मिलै जासुकेनाशतें मोक्षराजं।९।
धरैं मोहिनी सत्तरं कोड़कोड़ीं, सरितपतिप्रमाणं तिथि दीर्घ जोड़ी।
अवर्ज्ञानदृग्वेदनी अन्तरायं, धरैं तीस कोड़ाकुड़ी सिंधुकायं।१०।
तथा नाम गोतं कुड़ाकोड़ि बीसं, समुद्रप्रमाणं धरें सत्तईसं।
सु तैंतीस अब्धिं धरें आयु अब्धिं, कहें सर्व कर्मों तनी वृद्धलब्धिं।११।
जघन्य प्रकारै धरें भेद ये ही, मुहूर्त वसू नामगोतं गने ही।
तथाज्ञानदृग्मोह प्रत्यूह आयं, सुअन्तर्मुहूर्तं धरैं थित्ति गायं।१२।
तथा वेदनी बारहे ही मुहूर्तं, धरैं थित्ति ऐसे भन्यो न्याय जुत्तं।
इन्हें आदि तत्त्वार्थ भाख्यो अशेसा, लह्यो फेरि निर्वानमाही प्रवेसा।१३।
अनन्तं महन्तं सुसन्तं सुतन्तं, अमन्दं अफन्दं अनन्दं अभन्तं।
अलक्षं विलक्षं सुलक्षं सुदक्षं, अनक्षं अवक्षं अभक्षं अतक्षं।१४।
अवर्णं सुवर्णं अघर्णं अकर्णं, अभर्णं अतर्णं अशर्णं सुशर्णं।
अनेकं सदेकं चिदेकं विवेकं, अखण्डं सुमण्डं प्रचण्डं तदेकं।१५।

सुपर्मं सुधर्मं सुशर्मं अकर्मं, अनन्तं गुनाराम जैवन्त धर्मं।
नमैं दास "वृन्दावनं" शर्न आई, सबै दुःखतें मोहि लीजैं छुड़ाई।१६।

छन्द-घत्तानन्द

तुम सुगुन अनन्ता, ध्यावत सन्ता, भ्रमतम-भंजनमार्तंडा।
सतमतकरचण्डा, भवि-कज मण्डा, कुमति कुबल भन गन हण्डा।

ओं ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द-रोड़क

सुमति-चरन जो जजैं, भविकजन मनवचकाई।
तासु सकल दुखदन्दफन्द, ततछिन छय जाई।।
पुत्र मित्र धन धान्य, शर्म अद्भुत सो पावैं।
"वृन्दावन" निर्वान लहै, जो निहचैं ध्यावैं।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

जिनेन्द्र पूजा का फल

जो जिनेन्द्र भगवान् का सच्चा भक्त है, वह दुःखी द्ररिद्र कभी नहीं रह सकता। जब जिनबिम्बदर्शन सम्यग्दर्शन का साधन तथा मोक्ष का परम्परा कारण है तब नित्य दर्शन पूजन करने वाला दुःखी कैसे रह सकता है ? सच्चे जिनेन्द्र भक्त संसार की विभूतियों के स्वामी बनकर अन्त में आत्म कल्याण में समर्थ होते है , भक्ति करने वालों को विचारना चाहिए कि हम पूजन भक्ति करते हुए भी दुःखी क्यों ? हमें शान्ति क्यों नहीं मिलती है ? हमारी भक्ति में ही कुछ न कुछ कमी अवश्य है क्योंकि

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्म कोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं, हन्यते जिनदर्शनात्।।

वीतराग भगवान् के दर्शन से जन्म जन्मान्तर के पाप तथा जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोग नष्ट हो जाते हैं। हमारे दुःख अवश्य नष्ट होंगे।

श्री पद्मप्रभजिनपूजा

छंदरोड़क (मदावलिप्तकपोल)

पदम-राग-मनि-वरन-धरन, तनतुंग अढ़ाई।
शतक दंड अघखंड, सकल सुर सेवत आई।।
धरनि तात विख्यात सुसीमाजूके नंदन।
पदमचरन धरि राग सुथापों इत करि वंदन।।१।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

(चाल होली की-ताल जत्त)

पूजों भावसों, श्रीपदमनाथ पद सार, पूजों भावसों।टेक।
गंगाजल अतिप्रासुक लीनों, सौरभ सकल मिलाय।
मनवचतन त्रयधार देत ही, जनम-जरा-मृत जाय।
पूजों भावसों, श्रीपदमनाथपद सार, पूजों भावसों।१।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागर कपूर चंदन घसि, केशररंग मिलाय।
भव-तप-हरन चरन पर वारों, मिथ्याताप मिटाय।।पू०२।।

ओं ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल उज्ज्वल गंधअनीजुत, कनक थार भर लाय।
पुंज धरों तुव चरनन आगैं, मोहि अखयपद दाय।।पू०३।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात मंदार कल्पतरु-जनित, सुमन शुचि लाय।
समशूल निरमूल-करनकों, तुम पद पद्म चढ़ाय।।पू०४।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर बावर आदि मनोहर, सद्य सजे शुचि लाय।
क्षुधारोग के नाशन कारन, जजों हरष उर लाय।।पू० ५।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक जोति जगाय ललित वर, धूम रहित अभिराम।
तिमिरमोह नाशन के कारन, जजों चरन गुनधाम्।।पू०६।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागर मलयागिर चंदन, चूर सुगन्ध बनाय।
अगिनि मँाहिं जारों तुम आगे, अष्टकरम जरि जाय।।पू०७।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस-वरन रसना मनभावन, पावन फल अधिकार।
तासों पूजों जुगम चरन यह, विघन करम निरवार।।पू० ८।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आदि मिलाय गाय गुन, भगतभाव उमगाय।
जजों तुमहिं शिवतियवर जिनवर, आवागमन मिटाय।।पू०९।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

असित माघ सु छट्ठबखानिये। गरभमंगल तादिन मानिये।
उरधग्रीवकसों चय राजजी। जजत इन्द्र जजैं हम आज जी।।१।।

ओं ह्रीं माघकृष्णषष्ठीदिने गर्भावतरण-मंगल -प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१।।

सुकलकार्तिक तेरस को जये। त्रिजगजीव सुआनंद को लये।
नगर स्वर्गसमान कुसंबिका। जजत हैं हरिसंजुत अंबिका।।२।।

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगल प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।२।।

सुकल तेरस कार्तिक भावनी। तप धर्‌यो वन षष्ठम पावनी।
करत आतमध्यान धुरंधरो। जजत हैं हम पाप सबै हरो।।३।।

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लत्रयोदश्यां निःक्रमणकल्याणकप्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।३।।

सुकल-पूनमचैत सुहावनी। परम केवल सो दिन पावनी।।
सुर-सुरेश नरेश जजैं तहाँ। हमजजैं पदपंकज को यहां ।।४।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लपूर्णिमायां केवलज्ञान -प्राप्ताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।४।।

असित फागुनचौथ सुजानियो। सकलकर्म महारिपु हानियो।
गिरिसमेद थकी शिवको गये। हम जजैं पदध्यानविषैं लये।५।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्थीदिने मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।५।।

जयमाला

छंद-घत्तानंद

जय पद्मजिनेशा शिवसद्मेशा, पादपद्म जजि पद्मेशा।
जय भवतप भंजन मुनिमनकंजन,-रंजनको दिव साधेसा।।१।।
जय-जयजिन भविजन हितकारी, जयजय जिन भवसागरतारी
जय जय समवसरन धनधारी। जय जयवीतरागहितकारी।।२।।
जयतुम सात तत्त्व विधिभाख्यौ। जय जय नव पदार्थ लखि आख्यौ
जय षट् द्रव्य पंच जुत काया। जय सब भेद सहित दरशाया।।३।।
जय गुनथान जीव परमानो। जय पहिले अनंत जीव जानो।
जय दूजे सासादन माहीं। तेरह कोड़ि जीवथित मांहीं।।४।।
जय तीजे मिश्रितगुणथाने। जीव सु बावन कोड़ि प्रमाने।
जय चौथे अविरतिगुनजीवा। चारअधिक शतकोड़ि सदीवा।।५।।
जय जिय देशवरत में शेषा। कोड़िसातसौ हैं थिति वेशा।
जय प्रमत्त षटशून्य दोय वसु। पांच तीन नव पाँच जीव लसु।।६।।
जय जय अपरमत्तगुन कोरं। लच्छ छानवै सहस बहोरं।
निन्यानवे एकशत तीना। ऐते मुनि तित रहहिं प्रवीना।।७।।

जय जय अष्टम में दुइ धारा। आठशतक सत्तानों सारा।
उपशममें दुइसो निन्यानों। छपकमाहिं तसु दूने जानौं।।८।।
जय इतने इतने हितकारी। नवें दशें जुगश्रेणी धारी।
जय ग्यारें उपशम मगगामी। दुइसै निन्यानों अधगामी।।६।।
जय जय छीनमोहगुनथानों। मुनि शत पांच अधिक अट्ठानो।
जय जय तेरह मेंअरहंता। जुग नभपन वसु नव वसुतंता।।१०।।
एते राजतु हैं चतुरानन। हम वन्दे पद थुतिकरि आनन।
हैं अजोग गुनमें जे देवा। पनसो ठानों करों सुसेवा।।११।।
तितितिथि अइउऋलृ भासत। करिथिति फिर शिवआनंद चाखत
ये उत्कृष्ट सकल गुणथानी। तथा जघन मध्यम जे प्रानी।।१२।।
तीनों लोक सदन के वासी। निज गुनपरज भेदमय राशी।
तथा और द्रव्यन के जेते। गुन परजाय भेद हैं तेते।।१३।।
तीनों काल तने जु अनंता। सो तुम जानत जुगपत संता।
सोई दिव्य वचन के द्वारे। दै उपदेश भविक उद्धारे।।१४।।
फेरि अचल थल बासा कीनों। गुन अनंत निजआनंद भीनों।
चरमदेहतें किंचित् ऊनो। नरआकृति तितहैं नित गूनो।।१५।।
जय जय सिद्धदेव हितकारी। बार बार यह अरज हमारी।
मोकों दुखसागर से काढ़ो। वृन्दावन जाँचतु है ठाढ़ो।।१६।।

छंद घत्ता

जय जय जिनचंदा पद्मानंदा, परम सुमति पद्माधारी।
जय जनहितकारी दयाविचारी, जय जय जिनवर अधिकारी।।

ओं ह्रीं श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छंद रोड़क

जजत पद्म पदपद्म सद्म ताके सुपद्म अत।
होत वृद्धि सुतमित्र सकल आनंदकंद शत।।
लहत स्वर्गपदराज, तहाँतें चय इत आई।
चक्रीको सुख भोगि, अंत शिवराज कराई।।८।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पाजंलिं क्षिपामि)

श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा

हरिगीता तथा गीता

जय जय जिनिन्द गनिन्द इन्द, नरिंद गुन चिंतन करैं।
तन हरिहर मनसम हरत मन, लखत उर आनन्द भरैं।।
नृत सु परतिष्ठ वरिष्ठ इष्ट, महिष्ट शिष्ट पृथी प्रिया।
तिन नन्द के पद वंद वृन्द, अमन्द थापत जुतक्रिया।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र ममसन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

तुम पद पूजो मनवचकाय, देव सुपारस शिवपुरराय।
दयानिधि हो जय जगबन्धु दयानिधि हो ।।टेक।।
उज्ज्वल जल शुचि गन्ध मिलाय, कंचनझारी भर कर लाय।
दयानिधि हो जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

मलयागरचन्दन घसि कर सार, लीनो भवतपभंजनहार।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।।तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

देवजीर सुखदास अखण्ड, उज्ज्वल जलछालित सित मण्ड।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रासुक सुमन सुगन्धितसार, गुंजत अलि मकरध्वजहार।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

छुधाहरन नेवज वर लाय, हरों वेदनी तुम्हें चढ़ाय।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्वलित दीप भरकरि नवनीत, तुम ढिग धारतु हों जगमीत।
दयानिधि हो जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

दशविधि गन्ध हुताशनमाहिं, खेवत क्रूर करम जरिजाहिं।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल केला आदि अनूप, लै तुम अग्र धरो शिवभूप।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दरव सजि गुनगाय, नाचत राचत भगति बढ़ाय।
दयानिधि हो, जय जगबन्धु दयानिधि हो।। तुम०।।

ओं ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

सुकुल भादव छट्ठ सुजानिये, गरभमंगल तादिन मानिये।
करत सेव सची रचि मात की, अर्घ्य लेय जजों वसुभांति की।।

ओं ह्रीं भाद्रपदशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुकुल जेठ दुवादशि जन्मये, सकल जीव सु आनन्द तन्मये।
त्रिदशराज जजैं गिरिराजजी, हम जजैं पद मंगल साज जी।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनम के तिथि श्रीधर ने धरी, तप समस्त प्रमादन को हरी।
नृप महेन्द्र दियो पय़ भावसों, हम जजैं इत श्रीपद चावसों।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां तपोमंगलमण्डितायश्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भ्रमर फागुन छट्ठ सुहावनो, परम केवलज्ञान लहावनो।
समवसर्न विषैं वृष भाखियो, हम जजैं पद आनंद चाखियो।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णषष्ठ्यां केवलज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असितफागुन साँतय पावनो, सकल कर्म कियो छय भावनो।
गिरिसमेदथकी शिव जातु हैं, जजत ही सब विघ्न विलात हैं।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीसुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

तुंग अंग धनु दोयसौ, शोभा सागरचंद।
मिथ्यातपहर सुगुनकर, जय सुपास सुखकंद।।१।।

छन्द कामनीमोहन

जैति जिनराज शिवराज हितहेत हो,
परम वैराग आनंद भरि देत हो।
गर्भ के पूर्व षट्मास धनदेव ने,
नगर निरमापि वाराणसी सेवने।।२।।
गगनसो रतन की धार बहु वरषहीं,
कोड़ि त्रैअर्द्ध त्रैवार सब हरषहीं।
तातके सदन गुन वदन रचना रची,
मातु की सर्वविधि करत सेवा सची।।३।।

भयो जब जनम तब इन्द्र आसन चल्यो,
होय चकित तुरित अवधितैं लखि भल्यो।
सप्त पग जाय शिर नाय वन्दन करी,
चलन उमग्यो तबैं मानि धनिधनि धरी।।४।।
सात विधि सैन गज वृषभ रथ बाज लै,
गन्धरब नृत्यकारी सबै साज लै।
गलितमदगंड ऐरावती साजियो,
लक्ष जोजन सुतन वदन सत राजियो।।५।।
वदन वसुदंत प्रतिदंत सरवर भरे,
तासु मधि शतकपनबीस कमलिनि खरे।
कमलनो मध्य पनबीस फूले कमल,
कमलप्रति कमलमँह एकसौ आठदल।।६।।
सर्वदल कोड़शतबीस परमान जू,
तासुपर अपसरा नचहिं जुतमान जू।
ततता ततता वितता ताथई,
धृगता धृगता धृगता में लई।।७।।
धरत पग सनन नन झनन नन गगन में,
नूपुरें झनन नन झनन नन पग में।
नचत इत्यादि कई भाँतिसो मगन में,
केइ तित बजत बाजे मधुर गगन में।।८।।
केइ दृम दृम सुदृम दृम मृदंगनि धुनैं,
केइ झल्लरि झनन झंझनन झंझनै।
केइ संसागृदि संसागृदि सारंगि सुर,
केइ बीनापटह बंसि बाजैं मधुर।।६।।
केइ तननननन तननननन तानैं पुरैं,
शुद्ध उच्चारी सुर केइ पाठैं फुरै।

केइ झुकि झुकि फिरैं चक्रसी भामनी,
धृगततॉं धृगततॉं परमशोभा बनी।।१०।।
केइ छिन निकट छिन दूर छिन थूल लघु,
धरत वैक्रियकपरभावसों तन सुभगु।
केइ करताल करताल तल में धुनैं,
तत वित घन सुषारि जात बाजैं मुनैं।।११।।
इन्द्र आदिक सकल साज संग धारिकैं,
आय पुर तीन फेरी करी प्यारकैं।
सचिय तब जाय परसूतथल मोदमें,
मातु करि नींद लीनों तुम्हें गोद में।।१२।।
आन गिरवान नाथहिं दियो हाथ में,
छत्र अर चमर वर हरि करत माथ में।
चढ़े गजराज जिनराज गुन जापियो,
जाय गिरिराज पाँडुकशिला थापियो।।१३।।
लेय पंचम उदधि उदक कर कर सुरनि,
सुरन कलशनि भरे सहित चर्चित पुरनि।
सहस अरु आठ शिर कलश ढारे जबैं,
अघघ घघ घघघ घघ भभभ भभ भौ तबैं।।१४।।
धधध धध धधध धध धुनि मधुर होत है,
भव्यजन हंस के हरष उद्योत है।
भयै इमि न्हौन तब सकल गुन रंग में,
पोंछि शृंगार कीनों सची अंग में।।१५।।
आनि पितुसदन शिशु सौंपि हरि थल गयो,
बालवय तरुन लहि राजसुख भोगियो।
भोग तज जोग गहि चार अरिको हने,
धारि केवल परम धरम दुइविधि भने।।१६।।

नाशि अरि शेष शिवथानवासी भये,
ज्ञान-दृग-शर्म-वीरज अनन्ते लये।
सो जगतंराज यह अरज उर धारियो,
धरम के नन्द को भवउदधि तारियो।।१७।।

छन्द-घत्तानन्द

जय करुनाधारी शिवहितकारी
तारन तरन जिहाजा हो ।
सेवक नित वंदै मन आनन्दै
भव भय मेटनकाजा हो ।।१८।।

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सुपार्श्वपदजुगल जो, जजै पढ़ै यह पाठ।
अनुमोदे सो चतुर नर, पावै आनन्द ठाठ।।१६।।

इत्याशीर्वादः *(पुष्पांजलिं क्षिपामि)*

मूलाचार में कहा है कि जिनेन्द्रदेव की भक्ति करने से पूर्व संचित सब कर्मों का क्षय होता है। आचार्य के प्रसाद से विद्या और मंत्र सिद्ध होते हैं। ये संसार से तारने के लिए नौका के समान है। अरिहंत, वीतराग धर्म, द्वादशांग वाणी, आचार्य, उपाध्याय और साधु इनमें जो अनुराग करते हैं उनका वह अनुराग प्रशस्त होता है। इनके अभिमुख होकर विनय और भक्ति करने से सब अर्थों की सिद्धि होती है।

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजा (देहरा)

।। स्थापना।।

शुभ पुण्य उदय से ही प्रभुवर, दर्शन तेरा कर पाते हैं।
केवल दर्शन से ही प्रभु, सारे पाप मेरे कट जाते हैं।।
देहरे के. चन्द्रप्रभु स्वामी, आह्वानन करने आया हूँ।
मम ह्वदय कमल में आ तिष्ठो तेरे चरणों में आया हूँ।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र । अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

।। अथाष्टक।।

भोगों में फँसकर हे प्रभुवर, जीवन को वृथा गँवाया है।
इस जन्म-मरण से मुझे नहीं, छुटकारा मिलने पाया है।।
मन में कुछ भाव उठे मेरे, जल झारी में भर लाया हूँ।
मन के मिथ्या मल धोने को, चरणों में तेरे आया हूँ।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अन्तर शीतल करने को, चन्दन घिसकर ले आया हूँ।
मन शान्त हुआ ना इससे भी, तेरे चरणों में आया हूँ।
क्रोधादि कषायों के कारण, संतप्त ह्वदय प्रभु मेरा है।
शीतलता मुझको मिल जाये, हे नाथ सहारा तेरा है।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा में ध्यान लगाने को, अक्षत धोकर ले आया हूँ।
चरणों में पुंज चढ़ाकरके, अक्षयपद पाने आया हूँ।
निर्मल आत्मा होवे मेरी, सार्थक पूजा तब तेरी है।
निज शाश्वत अक्षयपद पाऊँ, ऐसी प्रभु विनती मेरी है।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पर गंध मिटाने को प्रभुवर, वह पुष्प सुगंधी लाया हूँ।
तेरे चरणों में अर्पित कर, तुमसा ही होने आया हूँ।
श्री चन्द्रप्रभु यह अरज मेरी भवसागर पार लगा देना।
यह काम अग्नि का रोग बढ़ा, छुटकारा नाथ दिला देना।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

दुख देती है तृष्णा मुझको, कैसे छुटकारा पाऊँ मैं।
हे नाथ ! बता दो, आज मुझे, चरणों में शीश झुकाऊँ मैं।।
यह क्षुधा मिटाने को प्रभुवर, नैवेद्य बनाकर लाया हूँ।
हे नाथ ! मिटादो क्षुधा मेरी, भव भव में फिरता आया हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

यह दीपक की ज्योति प्यारी, अँधियारा दूर भगाती है।
पर यह भी नश्वर है प्रभुवर, झंझा इसको धमकाती है।।
हे चन्द्रप्रभु ! दे दो ऐसा दीपक अज्ञान मिटा डाले।
मोहान्धकार हो नष्ट मेरा यह, ज्योति नई मन है बाले।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ धूप दशांग बना करके, पावक में खेऊँ हे प्रभुवर !
क्षय कर्मों का प्रभु हो जावे, जग का झंझट सारा नश्वर।
हे चन्द्रप्रभु ! अन्तर्यामी, कैसे छुटकारा अब पाऊँ।
हे नाथ ! बता दो मार्ग मुझे, चरणों पर बलिहारी जाऊँ।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बादाम लवंगादिक, भर थाली प्रभु मैं लाया हूँ।
चरणों में नाथ चढ़ा करके, अमृत रस पीने आया हूँ।
करुणा के सागर दया करो, अमृत रस पीने आया हूँ।
देदो वरदान प्रभु ऐसा शिवपुर को हे प्रभुवर ! जाऊँ।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प चरु, दीपक घृत से भर लाया हूँ।
दस गंध धूप फल मिला अर्घ ले, स्वामी अति हरषाया हूँ।।
हे नाथ ! अनर्घ पद पाने को, तेरे चरणों में आया हूँ।
भव भव के बंध कटें प्रभुवर, यह अरज सुनाने आया हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यंपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। पंचकल्याणक ।।

जब गर्भ में प्रभुजी आये थे, इन्द्रों ने नगर सजाया था।
छः मास प्रथम ही आकर के, रत्नों का मेह बरसाया था।।
तिथि चैत्र वदी पंचम प्यारी, जब गर्भ में प्रभुजी आये थे।
लक्ष्मणा माता को पहले ही, सोलह सपने दिखलाये थे।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णपंचमीदिवसे गर्भमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ बेला में प्रभु जन्म हुआ, वदि पौष एकादशि थी प्यारी।
श्री महासेन नृप के घर में हुई, जय जयकार बड़ी भारी।।
पांडुकशिल पर अभिषेक कियौ, सब देव मिले थे चतुरनिकाय।
सो जिनचन्द्र जयो जग मांहीं, विघ्नहरण और मंगलदाय।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैएकादश्यां जन्म-मंगल-मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जग के झंझट से मन ऊबा तप की ली श्रीजिनने ठहराय।
पौष बदी ग्यारस को इन्द्र ने, तप कल्याण कियो हरषाय।।
सर्वर्तुक वन में जाय विराजे केशलोंच जिन कियो हरषाय।
देहरे के श्री चन्द्रप्रभु को अर्घ चढ़ाऊँ नित्य बनाय।।

ओं ह्रीं पौष-कृष्णैएकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुनबदी सप्तमी के दिन चार घातिया घात महान।
समवशरण रचना हरि कीनी, ता दिन पायो केवलज्ञान।।
साढ़े आठ योजन परिमत था, समवशरण श्रीजिन भगवान।
ऐसे श्री जिन चन्द्रप्रभु को, अर्घचढ़ाय करूँ नित ध्यान।।

ओं ह्रीं फाल्गुन-कृष्ण-सप्तम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुक्ला फाल्गुन सप्तमिके दिन, ललितकूट शुभ उत्तम थान।
श्रीजिन चन्द्रप्रभु जगनामी, पायो आतम शिव कल्याण।।
वसु कर्म जिनचन्द्र ने जीते पहुँचे स्वामी मोक्ष मंझार।
निर्वाण महोत्सव कियो इन्द्र ने देव करें सब जय जय कार।।

ओं ह्रीं फाल्गुन-शुक्ला-सप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण सुदी सप्तमी को प्रभु जी प्रकट भये देहरे में आन।
संवत तेरह दो सहस्त्र ऊपर शुभ बृहस्पतिवार ता दिन जान।।
जय जयकार हुई देहरे में प्रकट हुए जब श्री भगवान।
चरणों में आ अर्घ चढ़ाऊँ प्रभु के दर्शन सुख की खान।।

ओं ह्रीं श्रावण-शुक्ला-दशम्यां देहरा-स्थाने प्रकटरूपायँ श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

।। जयमाला ।।

हे चन्द्रप्रभ ! तुम जगतपिता, जगदीश्वर तुम परमात्मा हो।
तुम ही हो नाथ अनाथों के, जग को निज आनंद दाता हो।।
इन्द्रियों को जीत लिया तुमने जितेन्द्रनाथ कहाये हो।
तुम ही हो परम हितैषी प्रभु , गुरु तुम ही नाथ कहाये हो।।
इस नगर तिजारा में स्वामी, देहरा स्थान निराला है।
दुख दुखियों का हरने वाला, श्रीचन्द्र नाम अति प्यारा है।।

जो भाव सहित पूजा करते, मनवांछित फल पा जाते हैं।
दर्शन से रोग नसें सारे, गुन गान तेरा सब गाते हैं।।
मैं भी हूँ नाथ शरण आया कर्मों ने मुझको रोंदा है।
यह कर्म बहुत दुख देते हैं प्रभु एक सहारा तेरा है।।
कभी जन्म हुआ कभी मरण हुआ हे नाथ ! बहुत दुख पाया है।
कभी नरक गया कभी स्वर्ग गया भ्रमता ही आया है।।
तिर्यञ्च गति के दुःख सहे ये जीवन बहुत अकुलाया है।
पशुगति में मार सही भारी, बोझा रख खूब भगाया है।।
अंजन से चोर अधम तारे भव सिन्धु से पार लगाया है।
सोमा की सुन कर टेर प्रभु नाग को हार बनाया है।।
मुनि समन्तभद्र को हे स्वामी ! आ चमत्कार दिखलाया है।
कर चमत्कार को नमस्कार चरणों में शीश झुकाया है।।
इस पंचमकाल में हे स्वामी ! क्या अद्‌भुत महिमा दिखलाई।
दुख दुखियों का हरने वाली देहरे में प्रतिमा प्रकटाई।।
शुभ पुण्य उदय से हे स्वामी ! दर्शन तेरा करने आया हूँ।
इस मोह जाल से हे स्वामी ! छुटकारा पाने आया हूँ।
श्री चन्द्रप्रभु मोरी अर्ज सुनो मैं चरणों में तेरे आया हूँ।
भवसागर पार करो स्वामी यह अर्ज सुनाने आया हूँ।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

देहरे के श्रीचन्द्र को भाव सहित जो ध्याय।
"मुंशी" पावे सम्पदा मनवांछित फल पाय।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री पुष्पदन्तनाथ जिनपूजा

छन्द-मदावलिप्तकपोल, रोड़क

पुष्पदन्त भगवन्त सन्त सुजपंत तन्त गुन,
महिमावन्त महंत कन्त शिवतिय रमन्त मुन।
काकन्दीपुर जनम पिता सुग्रीव रमासुत,
स्वेतवरन मनहरन तुम्हैं थापों त्रिवारनुत।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

चाल-होली

मेरी अरज सुनीजे, पुष्पदन्त जिनराय ।।टेक।।
हिमवन गिरिगत गंगाजल भर, कंचनभृंग भराय।
करम कलंक निवारनकारन, जजों तुम्हारे पाय।।मेरी०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

बावन चन्दन कदलीनन्दन, कुंकुम संग घसाय।
चरचों चरन हरन मिथ्यातप, वीतराग गुणगाय।।मेरी०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।

शालि अखण्डित सौरभमण्डित, शशिसम द्युति दमकाय।
ताको पुंज धरों चरनन ढिग, देहु अखय पद राय।।मेरी०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन सुमनसम परिमलमंडित, गुंजत अलिगनआय।
ब्रह्मपुत्रमदभंजन कारन, जजों तुम्हारे पाय।। मेरी०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर बावर फेनी गोझा, मोदन मोदक लाय।
छुधावेदनी रोग हरन को, भेंट धरो गुण गाय।। मेरी०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वाति कपूर दीप कंचनमय, उज्ज्वल ज्योति जगाय।
तिमिरमोह नाशक तुमको लखि, धरों निकट उमगाय।।मेरी ०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशवर गन्ध धनंजय के संग, खेवत हौं गुन गाय।
अष्टकर्म ये दुष्ट जरैं सो, धूम धूम सु उड़ाय।। मेरी ०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल पूंगी और शुचिर भट, दाड़िम आम मंगाय।
तासों तुम पदपद्म जजत हों, विघनसघन मिट जाय।।मेरी०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल सकल मिलाय मनोहर मनवचतन हुलसाय।
तुम पदपूजौं प्रीति लायकै जय जय त्रिभुवनराय।।मेरी०।।

ओं ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

छन्द स्वयम्भू

नवमी तिथिकारी फागुन धारी, गरभ मांहि थिति देवा जी।
तजि आरण थानं कृपानिधानं, करत सची तित सेवाजी।।
रतनन की धारा परम उदारा, परी व्योम तै सारा जी।
मैं पूजौं ध्यावौं भगति बढ़ावौं, करो मोहि भव पारा जी।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णनवम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मगसिर सितपच्छं परिवा स्वच्छं, जनमे तीरथनाथा जी।
तब हो चवभेवा निरजर येवा, आय नये निज माथा जी।।

सुरगिर नहवाये मंगल गाये, पूजै प्रीति लगाई जी।
मैं पूजों ध्यावौं भगति बढ़ावों, निजनिधिहेतु सहाई जी।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लप्रतिपदि जन्ममंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित मगसिर मासा तिथि सुखरासा, एकम के दिन धारा जी।
तप आतमज्ञानी आकुलहानी, मौन सहित अविकाराजी।।
सुरमित्र सुदानी के घर आनी, गो-पय पारन कीना है।
तिनको मैं वन्दौं पापनिकन्दौं, जो समतारन भीना है।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लप्रतिपदि तपोमंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित कार्तिक गाए दोइज धाये घाति करम परचण्डा जी।
केवल परकाशे भ्रम तम नाशे, सकलसार सुखमण्डाजी।।
गनराज अठासी आनन्दभासी, समवसरण वृषदाताजी।
हरि पूजन आयो शीस नमायो, हम पूजैं जगत्राताजी।

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लद्वितीयायां केवलज्ञानमंगलमण्डिताय श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भादव सित सारा आठैं धारा, गिरिसम्मेद निरवाना जी।
गुन अष्ट प्रकारा अनुपमधारा, जै जै कृपानिधाना जी।।
तित इन्द्र सु आयो पूज रचायो, चिन्ह तहाँ कर दीना जी।
मैं पूजत हों गुन धरत महीसों, तुमरे रस में भीना जी।।

ओं ह्रीं भाद्रपदशुक्लाष्टम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

लच्छन मकर सुश्वेत तन, तुंग धनुष शतएक।
सुर नर वन्दित मुकतिपति, नमों तुम्हें शिर टेक।।

पुहुप रदन गुनवदन जिम, सागर तोय समान।
क्योंकर कर अंजुलिनकर, करिये तासु प्रमान।।
पुष्पदन्त जयवंत नमस्ते, पुण्य तीर्थंकर संत नमस्ते।
ज्ञान ध्यान अमलान नमस्ते, चिद्विलास सुख ज्ञान नमस्ते।।
भवभय भंजन देव नमस्ते, मुनिगन कृत पदसेव नमस्ते।
मिथ्या निशिदिन इन्द्र नमस्ते, ज्ञानपयोदधिचन्द्र नमस्ते।।
भव-दुख-तरु-निःकन्द नमस्ते, रागदोष-मद-दहन नमस्ते।
विश्वेश्वर गुनभूर नमस्ते, धर्म सुधारसपूर नमस्ते।।
केवल ब्रह्मप्रकाश नमस्ते, सकल चराचर भास नमस्ते।
विघ्नमहीधर विज्जु नमस्ते, जय ऊरधगति रिज्जु नमस्ते।।
जय मकराकृतपाद नमस्ते, मकरध्वजमदवाद नमस्ते।
कर्म-भर्म परिहार नमस्ते, जंय जय अधम अधार नमस्ते।।
दयाधुरन्धर धीर नमस्ते, जय जय गुनगम्भीर नमस्ते।
मुक्तिरमणिपति वीर नमस्ते, हरता भवभयपीर नमस्ते।।
व्यय उतपति थितिधार नमस्ते, निज आधार अविकार नमस्ते।
भव्य भवोदधितार नमस्ते, 'वृन्दावन' निस्तार नमस्ते।।

छन्द घत्तानन्द

जय जय जिनदेवं हरिकृतसेवं, परम धरमधन धारी जी।
मैं पूजौं ध्यावौं गुनगन गावौं, मेटो विथा हमारी जी।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंतजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द-महावलिप्तकपोल

पुहुपदंत पद सन्त जजै जो मनवचकाई।
नाचैं गावैं भगति करैं, शुभ परनति लाई।।
सौ पावै सुख सर्व इन्द्र अहमिन्द्र तनो वर।
अनुक्रमतैं निरवान लहै निहचैं प्रमोद धर।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री शीतलनाथ जिनपूजा

(छंद मत्तमातंग)

शीतलनाथ नमो धरि हाथ, सुमाथ जिन्हों भवगाथ मिटाये।
अच्युततैं च्युत मात सुनन्द के, नन्द भये पुरभद्दल आये।।
वंश इक्ष्वाकु कियो जिन भूषित, भव्यन को भव पार लगाये।
ऐसे कृपानिधि के पदपंकज, थापतु हौं हिय हर्ष बढ़ाये।।१।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अष्टक

(छंद वसंततिलका)

देवपगा सु वरवारि विशुद्ध लायौ,
भृंगार हेम भरि भक्ति हिये बढ़ायौ।
रागादिदोष मल मर्दन हेतु येवा,
चर्चो पदाब्ज तव शीतलनाथ देवा।।१।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

श्रीखंडसार वर कुंकुम गारि लीनों।
कं संग स्वच्छ घसि भक्ति हिये धरीनों।।रा०।।२।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्व० स्वाहा।

मुक्ता-समान सित तंदुल सार राजैं।
धारंत पुंज कलिकुंज समस्त भाजैं।।रा०।।३।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्व० स्वाहा।

श्रीकेतकी प्रमुख पुष्प अदोष लायो।
नौरंग जंगकरि भृंग सुरंग पायो।।रा०।।४।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।

नैवेद्य सार चरु चारु संवारि लायो।
जांबूनद-प्रभृति भाजन शीस नायो।।रा० ५।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

स्नेह प्रपूरित सुदीपक जोति राजै।
स्नेह प्रपूरित हिये जजतेऽघ भाजै।।रा०।।६।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

कृष्णागरु प्रमुखगंध हुताश माहीं।
खेवों तवाग्र वसुकर्म जरंत जाहीं।।रा०।।७।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

निम्बाम्र कर्कटि सु दाड़िम आदि धारा।
सौवर्ण गंध फल सार सुपक्व प्यारा।।रा०।।८।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

कंश्रीफलादि वसु प्रासुक द्रव्य साजे।
नाचे रचे मचत बज्जत सज्ज बाजे।।रा०।।६।।

ओं ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं *निर्व० स्वाहा।*

पंचकल्याणक

(छंद इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा)

आठैं वदी चैत सुगर्भ माहीं,
आये प्रभू मंगलरूप थाहीं।
सवै सची मातु अनेक भेवा,
चर्चो सदा शीतलनाथ देवा।।१।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णाष्टम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री माघ की द्वादशि श्याम जायो,
भूलोक में मंगल सार आयो।
शैलेन्द्र पै इन्द्र फनिन्द्र जज्जै,
मैं ध्यान धारों भवदुःख भज्जै।।२।।

ओं ह्रीं श्री माघकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री माघ की द्वादशि श्याम जानों,
वैराग्य पायो भवभाव हानों।
ध्यायो चिदानन्द निवार मोहा,
चर्चों सदा चर्न निवारि कोहा।।३।।

ओं ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्दशी पौषवदी सुहायो,
ताहि दिना केवललब्धि पायो।
शोभै समोसृत्य बखानि धर्म,
चर्चों सदा शीतल पर्म शर्म।।४।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां केवलज्ञानमण्डिताय श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कुवांर की आठैं शुद्ध बुद्धा,
भये महामोक्षसरूप शुद्धा।
सम्मेद्रतैं शीतलनाथ स्वामी,
गुनांकरं तासु पदं नमामी।।५।।

ओं ह्रीं आश्विनशुक्लाष्टम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(छंद लोलतरंग)

आप अनंत गुनाकर राजैं, वस्तुविकाशन भानु समाजैं।
मैं यह जानि गही शरना है, मोहमहारिपु को हरना है।।१।।

(दोहा)

हेम वरन तन तुंग धनु, नव्वै अति अभिराम।
सुरतरु अंक निहारि पद, पुन पुन करों प्रणाम।।२।।

(छंद तोटक)

जय शीतलनाथ जिनन्द वरं, भवदाघ दवानल मेघझरं।
दुख-भूभृत-भंजन वज्रसमं, भवसागर नागर-पोत-पमं।।३।।
कुह-मान-मया-गद-लोभ-हरं,अरि विघ्न गयंद मृगिंद वरं।
वृष-वारिदवृष्टन सृष्टिहितू, परदृष्टि विनाशन सुष्टु पितू।।४।।
समवसृत संजुत राजतु हो, उपमा अभिराम विराजतु हो।
वर बारह भेद सभा थितको, तित धर्मबखानि कियौ हितको।।५।।
पहले महि श्रीगणराज रजैं, दुतिये महि कल्पसुरी जु सजैं।
त्रितिये गणनी गुन भूरि धरैं, चवथे तिय जोतिष जोति भरैं।।६।।
तिय-विंतरनी पनमें गनिये, छहमें भुवनेसुर ती भनिये।
भुवनेश दशों थित सत्तम हैं, वसुमें वसु-विंतर उत्तम हैं।।७।।
नव में नभजोतिष पंच भरे, दशमें दितिदेव समस्त खरे।
नरवृन्द इकादश में निवसैं, अरु बारह में पशु सर्व लसैं।।८।।
तजि वैर, प्रमोद धरैं सब ही, समतारस मग्न लसैं तब ही।
धुनि दिव्य सुनैं तजि मोहमलं, वनराज असी धरि ज्ञानबलं।।६।।
सबके हित तत्त्व बखान करैं, करुना-मन-रंजित शर्म भरैं।
वरने षटद्रव्य तनें जितने, वर भेद विराजतु हैं तितने।।१०।।

पुनि ध्यान उभै शिवहेत मुना, इक धर्म दुती सुकलं अधुना।
तित धर्म सुध्यान तणो गुनियो, दशभेद लखे भ्रमको हनियो।।११।।
पहलो अरि नाश अपाय सही, दुतियो जिनवैन उपाय गही।
त्रिति जीवविचै निज ध्यावन है, चवथो सु अजीव रमावन है।।१२।।
पनमों सु उदै बल टारन है, छहमों अरि-राग-निवारन है।
भव त्यागन चिंतन सप्तम है,वसुमों जितलोभ न आतम है।।१३।।
नवमों जिनकी थुति सीस धरै,दशमो जिनभाषित हेत करै।
इति धर्म तणों दश भेद भन्यो,पुनि शुक्लतणो चदु येम गन्यो।।१४।।
सुपृथकत्व वितर्क-विचार सही,सुएकत्व-वितर्क-विचार गही।
पुनि सूक्ष्मक्रिया-प्रतिपात कही, विपरीत-क्रिया-निरवृत्त लही।।१५।।
इन आदिक सर्व प्रकाश कियो, भवि जीवनको शिव स्वर्ग दियो।
पुनि मोच्छविहार कियो जिनजी, सुखसागर मग्न चिरं गुनजी।।१६।।
अब मैं शरना पकरी तुमरी, सुधि लेहु दयानिधिजी हमरी।
भव व्याधि निवार करो अब ही, मति ढील करो सुख द्यो सब ही ।।१७।।

छंद घत्तानंद

शीतल जिन ध्याऊं भगति बढ़ाऊं, ज्यों रतनत्रयनिधि पाऊं।
भवदंद नशाऊं शिवथल जाऊं, फेर न भौवनमें आऊं।।१८।।

ओं ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं नि० स्वाहा।

छंद मालनी

दिढ़रथ सुत श्रीमान्, पंचकल्याण धारी,
तिनपद जुगपद्मं, जो जजै भक्तिधारी।
सहसुख धनधान्यं, दीर्घ सौभाग्य पावै,
अनुक्रम अरिदाहै, मोक्ष को सो सिधावै।।१६।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजा

(छन्द रूपमाला)

विमलनृप विमलासुअन, श्रेयांसनाथ जिनन्द,
सिंहपुर जनमे सकल हरि, पूजि धरी आनन्द।
भव बंध ध्वंसनहेत लखि मैं, शरन आयो येव,
थापौं चरन जुग उरकमल में, जजन कारन देव।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

छन्द गीता तथा हरिगीता

कल धोतवरन उतंग हिमगिरि पदमद्रह तैं आवई।
सुरसरितप्रासुक उदकसों भरी भृंग धार चढ़ावई।।
श्रेयांसनाथ जिनन्द त्रिभुवन वन्द आनन्दकन्द हैं।
दुखदन्दफन्दनिकन्द पूरन चन्द जोति अमन्द हैं।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

गोशीर वर करपूर कुंकुम नीर संग घसों सही।
भवतापभंजन हेत भवदधिसेत चरन जजों सही।। श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सितशालि शशिदुत शुक्तिसुन्दर मुक्तिकी उनहार है।
भरि थार पुंज धरन्त पदतर अखय पद करतार हैं।।श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सद सुमन सुमन समान पावन, मलयतैं अलि झंकरैं।
पदकमलतर धरतैं तुरित सो मदनको मद खंकरैं।।श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय काम-बाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

यह परम मोदक आदि सुरस संवारि सुन्दर चरु लियो।
तुम वेदनी मद हरन लखि चरचों चरन शुचिकर हियौ।। श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

संशय-विमोह-विभरम तम भंजन दिनन्द समान हो।
तातैं चरनढिग दीप जोऊँ देहु अविचल ज्ञान हो।। श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर अगर तगर कपूर चूर सुगन्ध भूर बनाइया।
दहि अमर जिह्वविषैं चरनढिग करम भरम जराइया।। श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरलोक अरु नरलोक के फल पक्व मधुर सुहावने।
लै भगति सहित जजों चरन शिव परम पावन पावने।। श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल मलय तंदुल सुमन चरु अरु दीप धूप फलावली।
करि अर्घ्य चरचों चरनजुग प्रभु मोहि तार उतावली।। श्रेयांसनाथ०।।

ओं ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याण

छन्द आर्या

पुष्पोत्तर तजि आये, विमला उर जेठकृष्ण षष्ठीकों।
सुरनर मंगल गाये, मैं पूजों नासि कर्म काठैं कों।।

ओं ह्रीं जेष्ठकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनमें फागुनकारी, एकादशि तीन ज्ञान दृगधारी।
इक्ष्वाकुवंशतारी, मैं पूजो घोर विघ्न दुखटारी।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भवतनभोग असारा, लख त्यागो धीर शुद्ध तपधारा।
फागुनवदि इग्यारा, मैं पूजों पाद अष्ट परकारा।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

केवलज्ञान सुजानन, माघबदी पूर्णतिथिको देवा।
चतुरानन भवभानन, वन्दौं ध्यावौं करौं सुपद सेवा।।

ओं ह्रीं माघकृष्णामावस्यां केवलज्ञानमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनांथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गिरिसमेदतैं पायो, शिवथल तिथि पूर्णमासि सावनको।
कुलशायुध गुनगायो, मैं पूजों आप निकट आवन को।।

ओं ह्रीं श्रावणपूर्णिमायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीश्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

शोभित तुंग शरीर सुजानो, चाप असी शुभलक्षण मानो।
कंचन वर्ण अनूपम सोहै, देखत रूप सुरासुर मोहै।।

छन्द-पद्धरि

जै जै श्रेयांस जिन गुनगरिष्ठ, तुम पदजुग दायक-इष्टमिष्ट।
जै शिष्ट शिरोमनी जगतपाल, जै भवसरोजगन प्रातःकाल।।
जै पंच महाव्रत गज सवार, लै त्याग भाव दल बल सु लार।
जै धीरज कों दलपति बनाय, सत्ता छितिमंह रनको मचाय।
जै रतन तीन तिहुँ शक्ति हाथ, दश धरम कवच तप टोप, माथ।
जै शुकलध्यान कर खड़्ग धार, ललकारे आठों अरि प्रचार।।
तामैं सबको पति मोह चंड, ताकों ततछिन करि सहस खण्ड।
फिर ज्ञान दरश प्रत्यूह हान, निजगुनगण लीनों अचल थान।।
शुचि ज्ञान दरस सुख वीर्य सार, हुवे समवसरण रचना अपार।
तित भाषैं तत्त्व अनेक धार, जाको सुनि भव्य हिये विचार।।

निज रूप लह्यौ आनन्दकार, भ्रम दूर करनको अति उदार।
पुनि नय-प्रमान-निच्छेप सार, दरसायो करि संशय प्रहार।।
तामैं प्रमान जुगभेद एव, परतच्छ परोछ रजैं सुमेव।
तामैं प्रतच्छ के भेद दोय, पहिलो है संविवहार सोय।।
ताके जुग भेद विराजमान, मतिश्रुति सौहैं सुन्दर महान।
है परमारथ दुतियो प्रतच्छ, है भेद जुगम तामाहिं दच्छ।।
इक एकदेश इक सर्वदेश, इकदेश उभैविधिसहित वेश।
वर अवधि सु मनपरजै विचार, है सकलदेश केवल अपार।।
चर अचर लखत जुगपत प्रतच्छ, निरद्वन्द्व रहित परपंच पच्छ।
पुनि है परोच्छमंह पंच भेद, स्मृति अरु प्रत्यभिज्ञान वेद।।
पुनि तरक और अनुमान मान, आगमजुत पन, अब नय बखान।
नैगम, संग्रह, व्यौहार गूढ़, रिजुसूत्र, शब्द अरु समभिरूढ़।।
पुनि एवंभूत सु सप्त एम, नय कहे जिनेसुर गुन जु तेम।
पुनि दरव क्षेत्र अर काल भाव, निच्छेप चार विधि इमि जनाव।।
इनको समस्त भाष्यौ विशेष, जा समुझत भ्रमन रहत लेश।
निज ज्ञानहेत ये मूलमन्त्र, तुम भाषे श्रीजिनवर सु तन्त्र।।
इत्यादि तत्त्व उपदेश देय, हनि शेष करम निरवान लेय।
निरवान जजत वसु दरव ईश, 'वृन्दावन' निज प्रति नमत शीश।।

छन्द-घत्तानन्द

श्रेयांस महेशा सुगुन जिनेशा, वज्र धरेशा ध्यावतु हैं।
हम निशदिन वन्दैं पापनिकंदैं, ज्यौं सहजानन्द पावतु हैं।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

जो पूजै मन लाय, श्रेयनाथ पद पद्‌म को।
पावै इष्ट अघाय, अनुक्रमसौं शिवतिय वरैं।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री वासुपूज्य जिनपूजा

(छंद रूपकवित्त)

श्रीमतवासुपूज्य जिनवरपद, पूजन हेत हिये उमगाय।
थापों मनवचतन शुचि करकै, जिनकी पाटलदेव्या माय।।
महिष चिन्ह पद लसै मनोहर, लाल बरन तन समतादाय।
सो करुनानिधि कृपादृष्टिकरि, तिष्ठहु सुपरितिष्ठ यहँ आय।।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

अष्टक

(छंद जोगीरासा। आंचलीबंध "जिनपदपूजों लवलाई ")

गंगाजल भरि कनककुंभ में, प्रासुक गंध मिलाई।
करम कलंक विनाशन कारन, धार देत हरषाई।।
वासुपूज्य वसुपूज्य-तनुज-पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

कृष्णागरु मलयागिर चंदन, केशरसंग घसाई।
भवआताप विनाशन-कारन, पूजों पद चितलाई।वासु० २।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्व० स्वाहा।

देवजीर सुखदास शुद्धवर, सुवरन थार भराई।
पुंजधरत तुम चरनन आगै, तुरित अखय पद पाई।वासु० ३।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्व० स्वाहा।

पारिजात संतान कल्पतरु-जनित सुमन बहु लाई।
मीन केतु मद भंजनकारन, तुम पदपद्म चढ़ाई।

वासुपूज्य वसुपूज्य-तनुज-पद, वासव सेवत आई।
बालब्रह्मचारी लखि जिनको, शिवतिय सनमुख धाई।४।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व० स्वाहा।

नव्यगव्यआदिक-रसपूरित, नेवज तुरत उपाई।
छुधारोग निरवारन कारन, तुम्हें जजों शिरनाई।वासु० ५।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा।

दीपक जोत उदोत होत वर, दश दिश में छबि छाई।
तिमिरमोहनाशक तुमको लखि, जजों चरन हरषाई।वासु० ६।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्व० स्वाहा।

दशविध गंध मनोहर लेकर, वातहोत्र में ढाई।
अष्ट करम ये दुष्ट जरतु हैं, धूम सु धूम उड़ाई।वासु० ७।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्व० स्वाहा।

सुरस सुपक्व सुपावन फल लै, कंचन थार भराई।
मोक्ष महाफलदायक लखि प्रभु, भेंट धरों गुनगाई।वासु० ८।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व० स्वाहा।

जलफल दरब मिलाय गाय गुन, आठों अंग नमाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीपति ! निकट धरों यह लाई।वासु० ९।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व० स्वाहा।

पंचकल्याणक

छंद पाईता (मात्रा १४)

कलि छट्ट असाढ़ सुहायौ। गरभागम मंगल पायौ।
दशमें दिवितें इत आये। शतइन्द्र जजे सिर नाये।१।

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कलि चौदस फागुन जानों। जनमें जगदीश महानों।
हरि मेरु जजे तब जाई। हम पूजत हैं चितलाई।२।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तिथि चौदस फागुन श्यामा। धरियो तप श्री अभिरामा।
नृप सुन्दर के पय पायो। हम पूजत अति सुख थायो।३।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगल-प्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वदि भादव दोइज सोहै। लहि केवल आतम जो है।
अनअंत गुनाकर स्वामी। नित वंदों त्रिभुवन नामी।४।

ओं ह्रीं भाद्रकृष्णद्वितीयायां केवलज्ञानमण्डिताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित भादव चौदस लीनों। निरवान सुथान प्रवीनों।
पुर चंपाथानक सेती। हम पूजत निज हित हेती।५।

ओं ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगल-प्राप्ताय श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

चंपापुर में पंचवर, कल्याणक तुम पाय।
सत्तर धनु तन शोभनो, जै जै जै जिनराय।१।

छंद-मोतियदाम

महासुखसागर आगर ज्ञान। अनंत सुखामृतमुक्त महान।
महाबलमंडित खंडितकाम। रमा शिवसंग सदा बिसराम।२।
सुरिंद फनिंद खगिंद नरिंद। मुनिंद जजैं नित पादारविंद।
प्रभू तव अंतरभाव विराग। सुबालहितें व्रतशील सों राग ।३।
कियो नहिं राज उदास सरूप। सुभावन भावत आतम रूप।
अनित्य शरीर प्रपंच समस्त। चिदातम नित्य सुखाश्रित वस्त।४।

अशर्न नहीं कोउ शर्न सहाय। जहां जिय भोगत कर्मविपाय।
निजातम कै परमेसुर शर्न। नहीं इनके बिन आपद हर्न।५।
जगत् जथा जलबुदबुद येव। सदा जिय एक लहै फलमेव।
अनेक प्रकार धरी यह देह। भ्रमें भव कानन आन न नेह।६।
अपावन सात कुधात भरीय। चिदातम शुद्ध सुभाव धरीय।
धरैं इनसों जब नेह तबेव। सुआवत कर्म तबै वसुभेव।७।
जबै तन-भोग-जगत्त-उदास। धरै तब संवर निर्जरआस।
करै जब कर्म कलंक विनाश। लहै तब मोक्षमहासुखराश।८।
तथा यह लोक नराकृत नित्त। विलोकियते षट् द्रव्यविचित्त
सुआतमजानन बोध विहीन। धरै किन तत्त्व प्रतीत प्रवीन।६।
जिनागमज्ञानरु संजमभाव। सबै निजज्ञान बिना विरसाव।
सुदुर्लभ द्रव्य सुक्षेत्र सुकाल। सुभाव सबै जिहतें शिवहाल।१०।
लयो सब जोग सुपुण्य वशाय। कहो किमि दीजिय ताहि गँवाय।
विचारत यों लौकान्तिक आय। नमें पदपंकज पुष्पचढ़ाय।११।
कह्यो प्रभु धन्य कियो सुविचार। प्रबोधि सुयेम कियो जुविहार
तबै सौधर्म तनों हरि आय। रच्यौ शिविका चढ़िआए जिनाय।१२।।
धरे तप पाय सुकेवलबोध। दियो उपदेश सुभव्य संबोध।
लियो फिर मोक्ष महासुखराश। नमैं नित भक्त सोई सुख आश।१३।

घत्तानंद

नित वासव वंदत, पाप निकंदत, वासुपूज्य व्रत ब्रह्मपती।
भवसंकलखंडित, आनंदमंडित, जै जै जै जैवंत जती।१४।

ओं ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।१४।।

सोरठा छंद

वासुपूज्यपद सार, जजौं दरबविधि भावसों।
सो पावै सुखसार, भुक्ति मुक्ति को जो परम।।१५।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री विमलनाथ जिनपूजा

(छन्द-मदावलिप्तकपोल)

सहस्त्रार दिवि त्यागि, नगर कम्पिला जनम लिय,
कृतधर्मानृपनन्द, मातु जयसेन धर्मप्रिय।
तीन लोक वरनन्द, विमल जिन जिन विमल विमलकर,
थापों चरन सरोज, जजनके हेत भाव धर।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

छन्द सोरठा

कंचन झारी धारि, पदमद्रह नीर ले।
तृषा रोग निरवारि, विमल विमलगुन पूजिये।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागर करपूर, देववल्लभा संग घसि।
हरि मिथ्यातमभूर, विमल विमल गुन जजतु हों।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

वासमती सुखदास, श्वेत निशापति को हँसैं।
पूरै वाँछित आस, विमल विमल गुन जजत ही।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजात मन्दार, संतानक सुरतरु जनित।
जजों सुमन भरि थार, विमल विमल सुन मदनहर।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नव्य गव्य रसपूर, सुवरन थार भरायकैं।
छुधावेदनी चूर, जजों विमल पद विमल गुन।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मानिक दीप अखण्ड, गो छाई वरगो दशो।
हरा मोहतम चण्ड, विमल विमलमति के धनी।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनायं दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर घनसार, देवदारु कर चूर वर।
खेवों वसु अरि जार, विमल विमल पदपद्मढिग।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल सेव अनार, मधुर रसीले पावने।
जजों विमलपद सार, विघ्न हरैं शिवफल करैं।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दरब सँवार, मनसुखदायक पावने।
जजों अर्घ्य भरथार, विमल विमल शिवतिय रमन।।

ओं ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

छन्द-द्रुतविलम्बित तथा सुन्दरी

गरभ जेठ वदी दशमी भनों, परम पावनसो दिन शोभनो।
करत सेव सची जननीतणी, हम जजैं पदपद्म शिरोमणी।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णादशम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

शुकलमाघ तुरी तिथि जानिये, जनममंगल तादिन मानिये।
हरि तबै गिरिराज विषैं जजे, हम समर्चत आनन्द को सजे।।

ओं ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप धरे सितमाघ तुरी भली, निजसुधातम ध्यावत हैं रली।
हरि फनेश नरेश जजे तहाँ, हम जजैं नित आनन्दसों इहाँ।।

ओं ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विमल माघरसी हनि घातिया, विमलबोध लयो सब भासिया।
विमल अर्घ्य चढ़ाय जजों अबै, विमल आनन्द देहु हमैं सबै।।

ओं ह्रीं माघशुक्लषष्ठ्यां केवलज्ञानमंगलमंडिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भ्रमरसाढ़रसी अति पावनो, विमल सिद्ध भये मन भावनो।
गिरसमेद हरी तित पूजिया, हम जजैं इत हर्ष धर हिया।।

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

मगन चहत उड़न गगन, छिति थितिके छंह जेम।
तिमि गुन वरनन वरनन, मांहि होय तब केम।।
साठ धनुष तन तुंग है, हेमवरन अभिराम।
वर बराह पद अंकलखि, पुनि पुनि करों प्रनाम।।

छन्द-त्रोटक

जय केवल ब्रह्म अनंतगुनी, तुम ध्यावत शेष महेश मुनी।
परमातम पूरन पाप हनी, चितचिन्ततदायक इष्ट धनी।।
भव आतप ध्वंसन इन्दुकरं, वर साररसायन शर्मभरं।
सब जन्म जरामृतदाघहरं, शरनागत पालन नाथ वरं।।
नित संत तुमें इन नामनितैं, चितचिन्तत हैं गुनमाननितैं।
अमलं अचलं अटलं अतुलं, अरलं अछलं अथलं अकुलं।।
अजरं अमरं अहरं अडरं, अपरं अभरं अशरं अनरं।
अमलीन अछीन अरीन हने, अमतं अगतं अरतं अघने।।
अछुधा अतृषा अभयातम हो, अमदा अगदा अवदातम हो।
अविरुद्ध अक्रुद्ध अमान घना, अतलं अशलं अनन्त गुना।।

अरसं सरसं अकलं सकलं, अयचं सवचं अमनं सबलं।
इन आदि अनेक प्रकार सही, तुमको जिन संत जपैं नित ही।।
अब मैं तुमरी शरना पकरी, दुख दूर करो प्रभुजी हमरी।।
हम कष्ट सहे भव कानन में, कुनिगोद तथा थल आनन में।।
तित जामन मरन सहे जितने, कहि केम सकैं तुमसों तितने।
सुमुहूरत अन्तरमांहि धरे, छह त्रैत्रय छह छह काय खरे।।
छिति वाहिम वयारिक साधरनं, लघु थूल विभेदनिसों भरनं।
प्रत्येक वनस्पति ग्यार भये, छ हजार दुवादश भेद लये।।
सब द्वै त्रय भू षट छहसु भया, इक इन्द्रियकी परजाय लया।
जुगइन्द्रिय काय असी गहियो, तियइन्द्रिय साठनिमें रहियो।।
चतुरिंदिय चालिस देह धरा, पनइन्द्रिय के चवबीस वरा।
सब ये तनधार तहाँ सहियो, दुख घोर चितारित जात हियो।।
अब मो अरदास हिये धरिये, दुखदंद सबै अब ही हरिये।
मन वांछितकारज सिद्धि करो, सुखसार सबैं घर रिद्ध भरो।।

छन्द घत्तानन्द

जय विमल जिनेशा, नुतनाकेशा, नागेशा नरईश सदा।
भवताप अशेषा हरन निशेशा, दाता चिन्तित शर्म सदा।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

श्रीमत विमल जिनेश पद, जो पूजौ मन लाय।
पूजैं वाँछित आश तसु, मैं पूजौं गुनगाय।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री अनन्तनाथ जिनपूजा

छन्द कवित्त

पुष्पोत्तर तजि नगर अजुध्या जनम लियो सूर्याउर आय,
सिंघसेन नृप के नन्दन, आनन्द अशेष भरे जगराय।
गुन अनंत भगवंत धरे, भवदंद हरे तुम हे जिनराय,
थापतु हों त्रय बार उचरिकैं, कृपासिन्धु तिष्ठहु इत आय।।१।।

ओं ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर, संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

छन्द गीता तथा हरिगीता

शुचि नीर निरमल गंग को लै, कनकभृंग भराइया,
मल करम धोवन हेत, मन वचकाय धार ढराइया।
जगपूज परमपुनीत मीत, अनंत संत सुहावनों।
शिवकंतवंत महंत ध्यावों, भ्रंतवंत नशावनों।।१।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय जन्मज़रामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

हरिचन्द कदलीनंद कुंकुम, दंदताप निकंद है।
सब पापरुजसंतापभंजन, आपको लखि चंद है।।जग०।।२।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

कनशाल दुति, उजियाल हीर, हिमालगुलकनितें घनी।
तसु पुंज तुम पदतर धरत, पद लहत स्वच्छ सुहावनी।।जग०।।३।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्कर अमरतर जनित वर, अथवा अवर कर लाइया।
तुम चरनपुष्करतर धरत, सरशूल सकल नशाइया।।जग०।।४।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान नैना घ्रानरसना-को प्रमोद सुदाय हैं।
सो ल्याय चरन चढ़ाय रोग, छुधाय नाश कराय हैं।।जग०।।५।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तममोह भानन जानि आनन्द, आनि सरन गही अबै।
वर दीप धारों बारि तुमढिग, सुपरज्ञान जु द्यो सबै।।जग०।।६।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

यह गंध चूरि दशांग सुन्दर, धूम्र ध्वज में खेय हों।
वसुकर्म भर्म जराय तुम ढिग, निज सुधातम बेय हों।।जग०।।७।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रस थक्व पक्व सुभक्व चक्व, सुहावनें मृदु पावनें।
फलसार वृन्द अमंद ऐसो, ल्याय पूज रचावनें ।।जग०।।८।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि नीर चन्दन शालिशंदन, सुमन चरु दीवा धरों।
अरु धूप फल जुत मैं अरघ करि,करजोगजुग विनति करों ।।जग०।।६।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

छंद सुन्दरी तथा द्रुतविलंबित

असित कार्तिक एकम भावनों, गरभको दिन सो गिन पावनों।
किय सची तित चर्चन चाव सों, हम जजें इत आनंद भावसों।।१।।

ओं ह्रीं कार्तिककृष्णाप्रतिपदि गर्भमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

जनम जेठवदी तिथि द्वादशी, सकल मंगल लोकविषैं लशी।
हरि जजे गिरिराज समाजतैं, हम जजैं इत आतम काजतैं।।२।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

भवशरीर विनस्वर भाइयो, असित जेठ दुवादशि गाइयो।
सकल इंद्र जजैं तित आइकैं, हम जजैं इत मंगल गाइकैं।।३।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चैत अमावस को सही, परम केवलज्ञान जग्यो कही।
लही समोसृत धर्म धुरंधरो, हम समर्चत विघ्न सबै हरो।।४।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां केवलज्ञानमंगलमंडिताय श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चैत तुरी तिथि गाइयौ, अघतघाति हने शिव पाइयौ।
गिरि समेद जजे हरि आयकैं, हम जजैं पद प्रीति लगाइकैं।।५।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छन्द दोहा

तुम गुण बरनन येम जिभ, खंविहाय करमान।
तथा मेदिनी पदनिकरि, कीनों चहत प्रमान।।१।।
जय अनन्त, रवि भव्यजन, जलज वृन्द बिहसाय।
सुमति कोकतियथोक सुख, वृद्ध कियो जिनराय।।२।।

छंद नयमालनी, चंडी तथा तामरस

जै अनन्त गुनवंत नमस्ते, शुद्ध ध्येय नित सन्त नमस्ते।
लोकालोक विलोक नमस्ते, चिन्मूरत गुनथोक नमस्ते।।३।।
रत्नत्रय धीर नमस्ते, करमशत्रुकरि वीर नमस्ते।
चार अनंत महन्त नमस्ते, जय जय शिवतियकंत नमस्ते।।४।।
पंचाचार विचार नमस्ते, पंच करण मंदार नमस्ते।
पंच परावर्त-चूर नमस्ते, पंचमगति सुखपूर नमस्ते।।५।।

पंचलब्धि-धरनेश नमस्ते, पंच-भाव-सिद्धेश नमस्ते।
छहों दरब गुनजान नमस्ते, छहों काल पहिचान नमस्ते।।६।।
छहों काय रच्छेश नमस्ते, छह सम्यक् उपदेश नमस्ते।
सप्तविशनवनवह्नि नमस्ते, जय केवलअपरह्मि नमस्ते।।७।।
सप्ततत्त्व गुनभनन नमस्ते, सप्त शुभ्रगर्तहनन नमस्ते।
सप्तभंगके ईश नमस्ते, सातों नय कथनीश नमस्ते।।८।।
अष्ट करम मल दल्ल नमस्ते, अष्टजोग निरशल्ल नमस्ते।
अष्टम धराधिराज, नमस्ते, अष्टगुननि सिरताज नमस्ते।।९।।
जय नवकेवल प्राप्त-नमस्ते, नव पदार्थथिति आप्त नमस्ते।
दशों धरम धरतार नमस्ते, दशों बंध परिहार नमस्ते।।१०।।
विघ्न महीधर बिज्जु नमस्ते, जय ऊरधगति रिज्जु नमस्ते।
तन कनकदुति पूर नमस्ते, इख्वाकुवंशज सूंर नमस्ते।।११।।
धनु पचास तन उच्च नमस्ते, कृपासिंधु गुन शुच्च नमस्ते।
सेही अंक निशंक नमस्ते, चितचकोर मृगअंक नमस्ते।।१२।।
राग दोष मदटार नमस्ते, निजविचार दुखहार नमस्ते।
सुर-सुरेश-गन-वृन्द नमस्ते, 'वृन्द' करो सुखकंद नमस्ते।।१३।।

छंद घत्तानंद

जय जय जिनदेवं सुरकृतसेवं, नितकृतचित्तहुल्लासधरं।
आपदउद्धारं समतागारं, वीतराग विज्ञानभरं।।१४।।

ओं ह्रीं श्री अनंतनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द मदावलिप्तकपोल तथा रोड़क

जो जन मनवचकाय लाय, जिन जजै नेह धर,
वा अनुमोदन करै करावै पढ़ै पाठ वर।
ताके नित नव होय, सुमंगल आनन्ददाई,
अनुक्रमतैं निरवान, लहै सामग्री पाई।।१५।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री धर्मनाथ जिनपूजा

छन्द-माधवी तथा किरीट

तजिके सरवारथ सिद्ध विमान, सुभान के आनि आनन्द बढ़ायो।
जगमातसुव्रति के नन्दन होय, भवोदधि डूबत जन्तु कढ़ायो।।
जिनको गुन नामहिं माहिं प्रकाश है, दासिन को शिवस्वर्ग पठायो।
तिनके पद पूजन हेत त्रिवारसु, थापतु हूँ यह फूल चढ़ायो।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

छन्द-जोगीरासा

मुनिमनसम शुचि सरि नीर, अति मलय मेलि भरि झारी।
जनमजरामृत ताप हरन को, चरचों चरन तुम्हारी।।
परमधरम-सुमरन धरम-जिन अशरन शरन निहारी।
पूजूँ पाय गाय गुन सुन्दर, नाचूँ दै दै तारी।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर चन्दन कदली नन्दन, दाह निकन्दन लीनों।
जलसंग घस लसि शशि समशमकर, भव आताप हरीनों।।परम ०।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जलज जीर सुखदास हीर हिम, नीर किरन सम लायो।
पुंज धरत आनन्द भरत भव-दन्द हरत हरषायो।। परम०।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन सुमन सम सुमनथाल भर, सुमनवृन्द विहसाई।
सुमन मथ-मदमंथन के कारन, चरचों चरन चढ़ाई।। परम०।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर बावर अर्द्धचन्द्र सम, छिद्र सहस्त्र विराजै।
सुरस मधुर तासों पद पूजत, रोग असाता भाजै।।
परमधरम-सुमरन धरम-जिन अशरन शरन निहारी।
पूजूँ पांय गाय गुन सुन्दर, नाचूँ दै दै तारी।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दर नेह सहित वर दीपक, तिमिर हरन धरि आगै।
नेह सुहित गाऊँ गुण श्रीधर, ज्यों सुबोध उर जागै।। परम०।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर कृष्णागर तवादिव, हरि चन्दन करपूरं।।
चूर खेय जलजवनमाँहि जिमि, जरें वसु कूरं।। परम०।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

आम्र काम्रक अनार सार फल, भार मिष्ट सुखदाई।
सो लै तुमढिग धरहुँ कृपानिधि, देहु मोच्छ ठकुराई।। परम०।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठों दरब साज शुचि चितहर, हरषि हरषि गुन गाई।
बाजत दृमदृम मृदंगगत, नाचत ता थेई थाई।। परम०।।

ओं ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

आठैं सित बैसाख की हो, गरभ दिवस अधिकार।
जगजन वाँछित पूजों, पूजों हो अबार,।। धरम जिनेसुर पूजों हो।।

ओं ह्रीं बैशाखशुक्लाष्टम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकल माघ तेरसि लयो हो, धरम धरम अवतार।
सुरपति सुरगिर पूज्यो, पूजों हो अबार।। धरम०।।

ओं ह्रीं माघशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

माघ शुकल तेरसि लयो हो, दुद्धर तप अविकार।
सुररिषि सुमन तैं पूज्यो, पूजों हो अबार।। धरम०।।

ओं ह्रीं माघशुक्लत्रयोदश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष शुकल पूनम हने अरि, केवल लहि भवतार।
गनसुर नरपति पूज्यो, पूजों हो अबार।। धरम०।।

ओं ह्रीं पौषशुक्लपूर्णिमायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जेठशुकल तिथि चौथ की हो, शिव समेदतैं पाय।
जगत पूज्य पद पूजों, पूजों हो अबार।। धरम०।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठशुक्लचतुर्थ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

घनाकार करि लोक पट, सकल उदधि मसि तन्त।
लिखैं शारदा कलम गहि, तदपि न तव गुन अन्त।।

छन्द-पद्धरि

जय धरमनाथ जिन गुन महान, तुम पदको मैं नित धरों ध्यान।
जय गरभ जनम तप ज्ञान जुक्त, वर मोच्छ सुमंगल शर्म-भुक्त।।
जय चिदानन्द आनन्दकन्द, गुनवृन्द सुध्यावत मुनि अमन्द।
तुम जीवनि के विनु हेत मित्त, तुम ही हो जगमें जिन पवित्त।।
तुम समवशरण में तत्त्वसार, उपदेश दियो है अति उदार।
ताकों जे भवि निजहेत चित्त, धारैं ते पावै मोच्छवित्त।।
मैं तुम मुख देखत आज पर्म, पायो निज आतमरूप धर्म।
मोकों अब भौभयतैं निकार, निरभय पद दीजे परम सार।।

तुम सम मेरो जग में न कोय, तुम ही तैं सब विधि काज होय।
तुम दयाधुरंधर धीर वीर, मेटो जगजनकी सकल पीर।।
तुम नीतनिपुन बिन रागदोष, शिवमग दरसावतु हो अदोष।
तुमरे ही नामतने प्रभाव, जग जीव लहैं शिव-दिव सुराव।।
तातैं मैं तुमरी शरण आय, यह अरज करतु हों शीश नाय।
भव बाधा मेरी मेट मेट, शिवराधासों करि भेंट भेंट।।
जंजाल जगत को चूर चूर, आनन्द अनूपम पूर पूर।
मति देर करो सुनि अरज एव, हे दीनदयाल जिनेशदेव।।
मोको शरना नहिं और ठौर, यह निहचै जानों सुगुन-मौर।
"वृन्दावन" वंदत प्रीति लाय, सब विघन मेट हे धरम राय।।

छन्द घत्तानन्द

जय श्री जिनधर्म, शिवहितधर्म, श्री जिनधर्म उपदेशा।
तुम दयाधुरंधर विनतपुरन्दर, कर उरमंदर परवेशा।।

ॐ श्रीधर्मनाथजिनेन्द्राय जयमाला महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छंद मदावलिप्तकपोल

जो श्रीपतपद जुगल, उगल मिथ्यात जजै भव।
ताके दुख सब मिटहिं, लहै आनन्द समाज सब।।
सुर-नर-पति पद भोग, अनुक्रमतैं शिव जावैं।
वृन्दावन यह जानि धरम, जिनके गुन ध्यावै।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री शान्तिनाथ जिनपूजा

(छन्द मत्तगयन्द)

या भवकानन में चतुरानन, पाप-पनानन घेरी हमेरी।
आतम-जान न मान न ठान न, वान न होन दई शठ मेरी।।
ता मद भानन आपहि हो यह, छान न आन न आनन टेरी।
आन गही शरनागत को अब, श्रीपतजी पत राखहु मेरी।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

छन्द त्रिभंगी

हिमगिरि गत गंगा, धार अभंगा प्रासुक संगा भरि भृंगा।
जर-जनम मृतंगा, नाशि अघंगा, पूजि पदंगा मृदुहिंगा।।
श्री शान्तिजिनेशं, नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं दयामृतेशं मक्रेशं ।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व० स्वाहा।

वर बावन चंदन, कदली नंदन, घन आनंदन सहित घसों।
भवतापनिकंदन, ऐरानन्दन, वंदि अमंदन चरन वसों।।श्री शान्ति०।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामिति स्वाहा।

हिमकर कर लज्जत, मलय सुसज्जत, अच्छत जज्जतभरि थारी।
दुखदारिदगज्जत, सदपदसज्जत,भवभयभज्जतअतिभारी।।श्री शान्ति०।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामिति स्वाहा।

मन्दार सरोजं, कदली जोजं, पुञ्ज भरोजं मलयभरं।
भरि कंचनथारी, तुम ढिंगधारी, मदनविदारी, धीर धरं।।श्री शान्ति०।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामिति स्वाहा।

पकवान नवीने पावन कीने, षटरस भीने सुखदाई।
मनमोदन हारे छुधा विदारे, आगे धारे गुन गाई।।
श्री शान्तिजिनेशं नुतशक्रेशं, वृषचक्रेशं चक्रेशं।
हनि अरिचक्रेशं हे गुनधेशं, दयामृतेशं मक्रेशं ।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामिति स्वाहा।

तुम ज्ञानप्रकाशे भ्रमतमनाशे, ज्ञेयविकाशे सुखरासे।
दीपक उजियारा यातैं धारा, मोह निवारा, निज भासे।।श्री शान्ति०।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामिति स्वाहा।

चन्दन करपूरं करि वर चूरं, पावक भूरं माँहि जुरं।
तसु धूम उड़ावे नाचत आवै, अलि गुंजावै मधुर स्वरं।।श्री शान्ति०।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निम्बुक भूरं लै आयो।
तासों पद जज्जों, शिवफल सज्जों, निजरस-रज्जों उमगायो।।श्री शान्ति०।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामिति स्वाहा।

वसु द्रव्य संवारी तुम ढिंग धारी, आनन्दकारी दृग प्यारी।
तुम हो भवतारी करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी।।श्री शान्ति०।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

असित सप्तम भादव जानिये, गरभमंगल ता दिन मानिये।
सचि किया जननी पद चर्चनं, हम करैं इत ये पद अर्चनं।।

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जनम जेठ चतुर्दशी श्याम है, सकल इन्द्र सु आगत धाम है।
गजपुरै गज साजि सबै तबै, गिरि जजे इत मैं जजि हों अबै।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भव शरीर सुभोग असार हैं, इमि विचार तबै तप धार हैं।
भ्रमर चौदस जेठ सुहावनी, धरम हेत जजों गुन पावनी।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुकल पौष दशैं सुखराश है, परम केवलज्ञान प्रकाश है।
भवसमुद्र-उधारन देवकी, हम करैं नित मंगल सेवकी।।

ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

असित चौदशि जेठ हने अरी, गिरीसमेदथकी शिवतिय वरी।
सकल इन्द्र जजैं तित आइकैं, हम जजैं इत मस्तक नाइकैं।।

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छन्द रथोद्धता, चंद्रवत्स तथा चंद्रवर्त्म

शान्ति शान्तिगुन मंडिते सदा, जाहि ध्यावत सुपंडिते सदा।
मैं तिन्हें भगत-मंडिते सदा, पूजिहों कलुष-हंडिते सदा।।
मोक्षहेत तुम ही दयाल हो, हे जिनेश गुण रत्नमाल हो।
मैं अबै सुगुन दाम ही धरों, ध्यावतें तुरित मुक्ति-तिय वरों।।

छन्द पद्धरि

जय शान्तिनाथ चिद्रूपराज, भवसागर में अद्‌भुत जहाज।
तुम तजि सरवारथ सिद्धथान, सरवारथ जुत गजपुर महान।
तित जन्म लियौ आनंद धार, हरि तत छिन आयो राजद्वार।
इन्द्रानी जाय प्रसूत-थान, तुमको कर में ले हरष मान।।
हरि गोद देय सो मोद धर, सिर चमर अमर ढारत अपार।
गिरिराज जाय तित शिला खाण्ड, तापै थाप्यो अभिषेक माण्ड।।

तित पञ्चम उदधितनों सु वार, सुरकर कर करि ल्याये उदार।
तब इन्द्र सहसकर करि आनन्द, तुम सिर धारा ढारी सुनन्द।।
अघ घघ घघघघ धुनि होत घोर, भभभभ भभ धध धध कलश शोर।
दृम दृम दृम दृम बाजत मृदंग, झन नन नन नन नन नूपुरंग।।
तन नन नन नन नन तनन तान, घन नन नन घंटा करत ध्वान।
ताथेई थेई थेई थेई थेई सुचाल, जुत नाचत नावत तुमहिं भाल।।
चट चट चट अटपट नटत नाट, झट झट झट हट नट शट विराट।
इमि नाचत राचत भगत रंग, सुर लेत तहाँ आनंद संग।।
इत्यादि अतुल मंगल सुठाठ, तित बन्यो जहाँ सुरगिरि विराट।
पुनि करि नियोग पितुसदन आय, हरि सौंप्यौ तुम तित वृद्ध थाय।।
पुनि राजमाहिं लहि चक्ररत्न, भोग्यौ छहखंड करि धरम जत्न।
पुनि तप धरि केवलऋद्धि पाय, भवि जीवन कों शिवमग बताय।।
शिवपुर पहुँचे तुम हे जिनेश, गुनमण्डित अतुल अनंत भेष।
मैं ध्यावतु हों नित शीश नाय, हमरी भव-बाधा हरि जिनाय।।
सेवक अपनों निज जान जान, करुना करि भौभय भान भान।
यह विघन मूल तरु खण्ड खण्ड, चितचिन्तत आनन्द मंड मंड।।

छन्द घत्तानन्द

श्री शान्ति महंता शिवतियकंता, सुगुन अनन्ता भगवन्ता।
भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनन्ता, दातारं तारन वन्ता।।

ओं ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द रूपक

शान्तिनाथ जिनके पद पंकज, जो भवि पूजै मनवचकाय।
जनम जनम के पातक ताके, ततछिन तजिकैं जाय पलाय।।
मन वाँछित सुख पावौ सौ नर, बाँचे भगतिभाव अतिलाय।
तातैं 'वृन्दावन' नित बन्दै, जातैं शिवपुरराज कराय।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री कुंथुनाथ जिनपूजा

(छंद माधवी तथा किरीट)

अज अंक अजै पद राजै निशंक, हरै भव शंक निशंकित दाता।
मतमत्त मतंग के माथें मँथे, मतवाले तिन्हें हनें ज्यों हरिहाता।।
गजनागपुरै लियो जन्म जिन्हौं, रविप्रभ के नंदन श्रीमतिमाता।
सह कुंथु सुकुंथुनि के प्रतिपालक, थापौं तिन्हें जुत भक्ति विख्याता।।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

(चाल लावनी मरहठी की, लाला मनसुखरायजी कृत)

कुंथु सुन अरज दास केरी। नाथ सुन अरज दासकेरी।
भवसिन्धु पर्‍यो हो नाथ निकारो बांह पकर मेरी।।
प्रभु सुन अरज दासकेरी । नाथ सुन अरज दासकेरी।
जगजाल पर्‍यो हों वेग निकारो बांह पकर मेरी। टेक।।
सुरसरिताकौ उज्ज्वल जल भरि, कननभृंग भेरी।
मिथ्यातृषा निवारन कारन, धरों धार नेरी।। कुंथु० ।१।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

बावन चंदन कदलीनंदन, घसिकर गुन टेरी।
तपत मोह नाशन के कारन, धरों चरन नेरी।। कुंथु० ।२।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशयाय चंदनं नि० स्वाहा।

मुक्ताफलसम उज्ज्वल अच्छत, सहित मलय लेरी।
पुंज धरौं तुम चरनन आगै, अखय सुपद तेरी।। कुंथु० ।३।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

कमल केतकी बेला दौना, सुमन सुमन सेरी।
समरशूल निरमूल हेतु प्रभु, भेंट करों तेरी।। कुंथु० ।४।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

सद नेवज बावर लाडू, आदिक उत्तमता सेरी।
क्षुधारोग नाशन के कारण, पाय धरूँ तेरी।। कुंथु० ।५।।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

कंचन दीपमई वर दीपक, ललित जोति घेरी।
सो लै चरन जजों भ्रमतम रवि, निज सुबोध देरी।। कुंथु० ।६।।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० स्वाहा।

देवदारु हरि अगर तगर करि चूर अगनि खेरी।
अष्ट करम ततकाल जरैं ज्यों, धूम धनंजेरी।। कुंथु० ।७।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि० स्वाहा।

लोंग लायची पिस्ता केला, कमरख शुचि लेरी।
मोक्ष महाफल चाखन कारन, जजों सुकरि ढेरी।।कुंथु० ।८।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्ताय फलं नि० स्वाहा।

जल चंदन तंदुल प्रसून चरु, दीप धूप लेरी।
फलजुत जजन करों मनसुख धरि, हरो जगत फेरी।।
कुंथु सुन अरज दास केरी। नाथ सुन अरज दासकेरी।
भवसिन्धु पर्‌यो हो नाथ निकारो बांह पकर मेरी।।
प्रभु सुन अरज दासकेरी । नाथ सुन अरज दासकेरी।
जगजाल पर्‌यो हों वेग निकारो बांह पकर मेरी।।

ओं ह्रीं श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

पंचकल्याणक

सु सावन की दशमी कलि जान। तज्यो सरवारथ सिद्ध विमान।
भयो गरभागम मंगल सार। जजैं हम श्रीपद अष्ट प्रकार।१।

ओं ह्रीं श्रावणकृष्णदशंम्यां गर्भमंगलप्राप्तायश्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० स्वाहा।

महा बैशाख सु एकम शुद्ध, भयो तव जन्म तिज्ञान समृद्ध।
कियो हरि मंगल मंदिर शीस, जजैं हम अत्र तुम्हें नुतशीस।२।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदि जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथ जिनेन्द्राय अर्ध्यं नि० स्वाहा।

तज्यो षटखंड विभौ जिनचंद। विमोहित चित्त चितार सुछंद।
धरे तप एकम शुद्ध विशाख। सुमग्न भये निज आनंद चाख।३।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदि निःक्रमणमहोत्सवमण्डिताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्ध्यं नि० स्वाहा।

सुदी तिय चैत सु चेतन शक्त। चहूं अरि छैकरि ता दिन व्यक्त।
भई समवसृत भाखि सुधर्म। जजों पद ज्यों पद पाइय पर्म।४।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लतृतीयायां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्ध्यं नि० स्वाहा।

सुदी वैशाख सु एकम नाम। लियौ तिहि द्यौस अभय शिवधाम।
जजे हरि हर्षित मंगल गाय। समर्चतु हौ सु हिया वचकाय।५।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदि मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीकुंथुनाथजिनेन्द्राय अर्ध्यं नि० स्वाहा।

जयमाला

अडिल्ल

षट खंडन के शत्रु राजपदमें हने।
धरि दीक्षा षटखंडन पाप तिन्हें दनें।।
त्यागि सुदरशन चक्र धरम चक्री भये।
करमचक्र चकचूर सिद्ध दिढ़ गढ़ लये।।१।।
ऐसे कुंथु जिनेश तनें पद पद्म को।।
गुन अनंत भंडार महासुख सद्म को।।
पूजों अरघ चढ़ाय पूरणानंद हो।
चिदानंद अभिनंद इन्द्रगन वंद हो।।२।।

पद्धरी

जय जय जय श्रीकुंथुदेव। तुम ही ब्रह्मा हरि त्रिंबुकेव।
जय बुद्धि विदांबर विष्णु ईस। जय रमाकंत शिवलोक शीस।।३।।
जय दयाधुरंधर सृष्टिपाल, जय जय जगबंधु सुगुणमाल।
सरवारथसिद्ध विमान छार, उपजे गजपुर में गुन अपार।।४।।
सुरराजकियो गिरन्हौन जाय, आनंद-सहितजुत-भगत भाय।
पुनि पिता सौंपि कर मुदित अंग, हरि तांडव-निरत कियोअभंग।।५।।
पुनि स्वर्गगयो तुम इत दयाल, वय पाय मनोहर प्रजापाल।
षटखंड विभौ भौग्यो समस्त, फिर त्याग जोग धार्यौ निरस्त।।६।।
तब घाति घात केवल उपाय, उपदेश दियो सब हित जिनाय।
जाके जानत भ्रम-तम विलाय, सम्यक्‌दर्शन निरमल लहाय।।७।।
तुम धन्य देव् किरपा-निधान, अज्ञान-छिमा-तमहरन भान।
जय स्वच्छ गुनाकर शुक्तशुक्त, जय स्वच्छ सुखामृत भुक्तमुक्त।।८।।
जय भौ भय भंजन कृत्यकृत्य। मैं तुमरो हों निज भृत्य-भृत्य।
प्रभु अशरन शरन अधार धार, मम विघ्न तूलगिरि जार जार।।९।।
जय कुनय यामिनी सूर सूर, जय मनवाँछित सुख पूर पूर।
मम करमबंध दिढ़ चूर चूर, निजसम आनंद दै भूर भूर ।।१०।।
अथवा जबलौं शिव लहौं नाहिं, तबलों ये तो नित ही लहाहिं।
भव भवश्रावक-कुल जनमसार, भवभव सतमत सतसंग धार।।११।।
भव भव निज-आतम-तत्त्व ज्ञान, भव भव तप संजमशील दान।
भव भव अनुभव निज चिदानंद, भव भव तुमआगम है जिनंद।।१२।।
भव भव समाधिजुत मरनसार, भवभव व्रतचाहों अनागार।
यह मोकों हे करुणानिधान, सब जोग मिला आगम प्रमान ।।१३।।
जबलों शिव सम्पत्ति लहों नाहिं, तबलों मैं इनको नित लहौंहि।
यह अरज हिये अवधारि नाथ, भवसंकट हरि कीजै सनाथ।।१४।।

(छंद घत्तानंद)

जय दीनदयाला, वरगुनमाला, विरदविशाला सुख आला।।
मैं पूजों ध्यावों शीस नमावों, देहु अचल पदकी चाला।।१५।।

ओं ह्रीं श्री कुंथुनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

छंद रोकड़

कुंथुजिनेश्वरपादपद्म जो प्रानी ध्यावैं।
अलि समकर अनुराग, सहज सो निजनिधि पावैं।।
जो बांचैं सरदहै, करै अनुमोदन पूजा,
वृंदावन तिह पुरुष सदृश, सुखिया नहिं दूजा।।१६।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री अरनाथ जिनपूजा

(छंद छप्पय)

तप तुरंग असवार धार, तारन विवेक कर।
ध्यान शुकल असि धार, शुद्ध सुविचार सुबखतर।
भावन सेना धरम, दशों सेनापति थापे।
रतन तीन धर सकति मंत्रि अनुभो निरमापे।
सत्तातल सोहं सुभट धुनि, त्याग केतु शत अग्र धरि।
इहविध समाज सज राज को अरजिन जीते करम अरि।१।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्। (सन्नि०)

अष्टक

छंद-त्रिभंगी

कनक मनिमय झारी, दृग सुखकारी, सुरसरि तारी नीर भरी।
मुनि मन सम उज्ज्वल, जनम जरा दल, सोलैं पदतल, धारकरी।
प्रभु दीनदयालं, अरिकुल कालं, विरद विशालं, सुकुमालं।
हनि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुनमालं, वरमालं।।१।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव ताप नशावन, विरद सुपावन, सुनि मनभावन, मोदभयो।
तातैं घसि बावन, चंदनपावन, तुमहिं चढ़ावन, उमगि अयो।। प्रभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल अनियारे, श्वेत संवारे, शशिदुति टारे, थार भरे।
पदअखय सुदाता, जग विख्याता, लखि भवताता पुंजधरे।।प्रभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरुके शोभित, सुरन मनोभित, सुमन अछोभित ले आयो।
मनमथ के छेदन, आप अवेदन, लखि निरवेदन गुनगायो।।प्रभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज सज भक्षक प्रासुक अक्षय, पक्षक रक्षक स्वच्छ धरी।
तुम करमनि कक्षक, भस्मक लक्षक, दक्षक पक्षक रक्षकरी।।प्रभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम भ्रमतमभंजन मुनिमनकंजन, रंजन गंजन मोहनिशा।
रविकेवलस्वामी, दीपजगामी, तुमढिंग आमी पुण्यदृशा।।प्रभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशधूप सुरंगी गंधअभंगी वह्नि वरंगी माहिं ह्वै।
बसुकर्म जरावै धूमउड़ावै, तांडव भावै नृत्य पवै।। प्रभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रितुफल अतिपावन, नयनसुहावन, रसनाभावन, कर लीनें।
तुम-विघनविदारक, शिवफलदायक, भवदधि तारक, चरचीनें।। प्रभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सुचि स्वच्छ पटीरं, गंधगहीरं, तंदुलशीरं, पुष्पचरुं।
वर दीपं धूपं, आनंदरूपं, लै फल भूपं, अर्घ करुं।।
प्रभु दीनदयालं, अरिकुलकालं, विरदविशालं, सुकुमालं।
हनि मम जंजालं, हे जगपालं, अरगुनमालं, वरमालं ।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

छंद चौपाई (मात्रा १६)

फागुन सुदी तीज सुखदाई। गरभ सुमंगल ता दिन पाई।
मित्रादेवी उदर सु आये। जजै इन्द्र हम पूजन आये।। १।।

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लतृतीयायां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मगसिर शुक्लचतुर्दशि सोहै। गजपुर जनम भयो जग मोहै।
सुर गुरु जजै मेरुपुर जाई। हम इत पूजैं मनवचकाई।।२।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।२।

मगसिर सित दशमी दिन राजै। तादिन संजम धरे विराजै।
अपराजित घर भोजन पाई। हम पूजैं इत चित हरषाई।।३।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लदशम्यां निःक्रमणमंगलमण्डिताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।३।

कार्तिक सित द्वादसि अरि चूरे। केवलज्ञान भयो गुन पूरे।
समवसरन थिति धरमबखाने। जजतचरन हम पातक भाने।।४।।

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लद्वादश्यां। ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।४।

चैत कृष्ण अमावसी सब कर्म। नाशि वास किये शिव-थलपर्म।
निहचल गुन अनंत भंडारी। जजौं देव सुधि लहु हमारी।।५।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीअरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।५।

जयमाला

बाहर भीतर के जिते, जाहर अर दुखदाय।
ता हर कर अरजिन भये, साहर शिवपुर राय।। १।।
राय सुदंरशन जासु पितु, मित्रादेवी माय।
हेमवरन तन वरष वर, नव्वै सहस सुआय।। २।।

छन्द-तोटक

जय श्रीधर श्रीकर श्रीपति जी। जय श्रीवर श्रीभर श्रीमतिजी।
भवभीमभवोदधि तारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं। ।३।।
गरभादिक मंगल सार धरे। जग जीवन के दुखदंद हरे।
कुरुवंशशिखामणि तारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।४।।

करि राज छ खंड विभूतिमई। तप धारत केवलबोध ठई।
गण तीस जहाँ भ्रमवारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।५।।
भविजीवनिको उपदेश दियौ। शिवहेत सबै जन धारि लियो।
जग के सब संकट टारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।६।।
कहि बीस प्ररूपन सार तहाँ। निजशर्म सुधारस धार जहाँ।
गति चार हृषीपन धारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।७।।
षटकायतिजोग तिवेद मथा। पनवीसकषा वसुज्ञान तथा।
सुर संजमभेद पसारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।८।।
रस दर्शन लेश्यय भव्य जुगं। षट सम्यक् सैनिय भेद युगं।
जुग हार तथा सु अहारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।६।।
गुनथान चतुर्दस मारगना। उपयोग दुवादश भेद भना।
इमि बीस विभेद उचारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।१०।।
इन आदिसमस्त बखान कियौ। भवि जीवन ने उरधार लियौ।
कितने शिववादिन धारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।११।।
फिर आपअघाति विनाश सबै। शिवधामविषैं थितकीन तबै।
कृतकृत्य प्रभू जगतारन हैं। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।१२।।
अब दीनदयाल दया करिये। मम कर्म कलंक सबै हरिये।
तुमरे गुनको कछु पार न है। अरनाथ नमों सुखकारन हैं।।१३।।

छन्द घत्तानन्द

जय श्रीअरदेवं, सुरकृतसेवं, समता मेवं, दातारं।
अरिकर्मविदारन, शिवसुखकारन, जयजिनवर जगत्रातारं।।१४।।

ओं ह्रीं श्रीअरनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

छन्द-आर्या

अरजिनके पदसारं, जो पूजै द्रव्यभावसों प्रानी।
सो पावै भवपारं, अजरामर मोच्छथान सुखखानी।।१५।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्रीमल्लिनाथ जिनपूजा

छन्द रोकड़

अपराजिततें आय नाथ मिथलापुर जाये।
कुंभरायके नन्द, प्रजापति मात बताये।।
कनक वरन तन तुंग, धनुष पच्चीस विराजैं।
सो प्रभु तिष्ठहु आय निकट मम ज्यों भ्रम भाजैं।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

छन्द-जोगीरासा

सुर-सरिता-जल उज्ज्वल लै कर, मनिभृंगार भराई।
जनम जरामृत नाशन कारन, जजहुं चरन जिनराई।।
राग-रोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा।
यातैं शरन गही जगपति जी, वेग हरौ भवपीरा।।१।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

बावन चंदन कदलीनंदन, कुंकुमसंग घसायौ।
लेकर पूजौं चरनकमल प्रभु, भवआताप नसायौ।।राग० २।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुलशशिसम उज्ज्वल लीनें, दीनें पुंज सुहाई।
नाचत राचत भगति करत ही, तुरित अखैपद पाई।।राग ० ३।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पारिजातमंदार सुमन, संतान जनित महकाई।
मार सुभट मदभंजन कारन, जजहुं तुम्हें शिरनाई।।राग ० ४।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फेनी गोझा मोदन मोदक, आदिक सद्य उपाई।
सो लै छुधा निवारन कारन जजहुं चरन लवलाई।।
राग-रोष-मद-मोह हरन को, तुम ही हो वरवीरा।
यातैं शरन गही जगपति जी, वेग हरौ भवपीरा।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

तिमिरमोह उरमंदिर मेरे, छाय रह्यो दुखदाई।
तासु नाश करन को दीपक, अद्भुतजोति जगाई।।राग०६।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अगर तगर कृष्णागर चंदन चूरि सुगंध बनाई।
अष्टकरम जारनको तुमढिंग, खेवत हौं जिनराई।।राग० ७।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल लौंग बादाम छुहारा, एला केला लाई।
मोक्ष महाफलदाय जानिकै, पूजौं मन हरषाई।।राग० ८।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल अरघ मिलाय गाय गुन, पूजों भगति बढ़ाई।
शिवपदराज हेत हे श्रीधर, शरन गहो मैं आई।। राग० ६।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणयक

छन्द लक्ष्मीधरा

चैतकी शुद्ध एकैं भली राजई। गर्भकल्यानको घौससो साजई।
कुंभराजा प्रजापति माता तने। देवदेवी जजे शीश नाये घने।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लप्रतिपदि गर्भागम-मंगल-मण्डिताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्गशीर्षे सुदी ग्यारसीराजई। जन्मकल्यान को द्यौस सो छाजई।
इन्द्र नागेंद्र पूजें गिरिंद जिन्हें। मैं जजौं ध्यायकें शीश-नावों तिन्हें।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्ष-शुक्लैकादश्यां जन्म-मंगल-प्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मार्गशीर्षसुदीग्यारसी के दिना राज को त्याग दीक्षाधरीहै जिना।
दान गोछीर को नंदसेन दयौ। मैं जजों जासुके चर्न चर्चे भयो।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां तपो-मंगल-मण्डिताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष की श्यामदूजी हने घातिया। केवलज्ञान साम्राज्यलक्ष्मी लिया।
धर्मचक्र भये सेव शक्री करैं। मैं जजों चर्न ज्यों कर्मवक्री टरैं।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णद्वितीयायां केवलज्ञान-प्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुनी सेत पांचैं अघाती हते। सिद्ध आलै बसे जाय सम्मेद तें
इन्द्र नागेंद्र कीन्ही क्रिया आयकें। मैं जजों सो मही ध्यायकें गायकें

ओं ह्रीं फाल्गुन-शुक्ल-पंचम्यां मोक्षमंगल-प्राप्ताय श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

छन्द घत्तानन्द

तुअ नमित सुरेशा, नर नागेशा, रजत नगेशा, भगति भरा।
भव भयहरनेशा, सुख भरनेशा, जै जै जै शिव-रमनिवरा।।१।।

पद्धरि

जय शुद्ध चिदातम देव एव। निरदोष सुगुन यह सहज टेव।
जय भ्रमतमभंजन मारतंड। भविभंवदधितारनकों तरंड।।२।।
जय गरभजनममंडित जिनेश। जय छायकसमकितबुद्धभेस।
चौथे किय सातों प्रकृति छीन। चौअनंतानु मिथ्यात तीन।।३।।
सप्तम किय तीनों आयु नाश। फिर नवें अंश नवमें विलास।
तिनमाहिं प्रकृति छत्तीस चूर। या भाँति कियौ तुम ज्ञानपूर ।।४।।
पहिले मँह सोलह कँह प्रजाल। निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचाल।
हनि थान गृद्धिकों सकल कुब्ब। नर तिर्यग्गति गत्यानुपुब्ब।।५।।

इक बे ते चौ इन्द्रीय जात। थावर आतप उद्योत घात।
सूच्छम साधारन एम चूर। पुनि दुतिय अंश वसु कर्यौदूर।।६।।
चौ प्रत्याप्रत्याख्यान चार। तीजे सु नपुंसक वेद टार।
चौथे तियवेद विनाशकीन। पांचैं हास्यादिक छहों छीन।।७।।
नरवेद छठें छय नियत धीर। सातयें संज्वलन क्रोधचीर।
आठवें संज्वलन मानभान। नवमें माया संज्वलन हान।।८।।
इमि घात नवें दशमें पधार। संज्वलनलोभ तित हू विदार।
पुनि द्वादशके द्वयअंशमाहिं। सोलह चकचूर कियो-जिनाहिं ।।६।।
निद्रा प्रचला इकभागमाहिं। दुति अंश चतुर्दश नाश जाहिं।
ज्ञानावरनी पन दरश चार। अरि अंतराय पांचों प्रहार।।१०।।
इमि छय त्रेशठ केवल उपाय। धरमोपदेश दीन्हों जिनाय।
नवकेवललब्धि विराजमान। जय तेरमगुनतिथि गुन अमान।।११।।
गत चौदह में द्वै भाग तत्र। क्षय कीन बहत्तर तेरहत्र।
वेदनी असाताको विनाश। औदारि विक्रिया हार नाश।।१२।।
तैजस्य कारमानों मिलाय। तन पंच पंच बंधन विलाय।
संघात पंच घाते महंत। त्रय अंगोपांग सहित भनंत।।१३।।
संठान संहनन छह छहेव। रसवरन पंच वसु फरस भेव।
जुगगंध देवगति सहित पुव्व। पुनि अगुरुलघू उस्वासदुव्व ।।१४।।
परउपघातक सुविहाय नाम। जुत अशुभगमन प्रत्येक खाम।
अपरजथिर अथिरअशुभसुभेव। दुरभागसुसुर दुस्सुरअभेव।।१५।।
अन आदर और अजस्य कित्त। निरमान नीचगोतौ विचित्त।
ये प्रथम बहत्तर दिय खपाय। तब दूजे में तेरह नशाय ।।१६।।
पहले सातावेदनी जाय। नरआयु मनुषगति को नशाय।
मानुषगत्यानु सु पूरवीय। पंचेंद्रिय जात प्रकृति विधीय ।।१७।।
त्रसवादर परजापति सुभाग। आदरजुत उत्तम गोतपात।
जसकीरती तीरथ प्रकृति जुक्त। ए तेरह छय करि भये मुक्त ।।१८।।

जय गुनअनंत अविकार धार। वरनत गनधर नहिं लहत पार।
ताकों मैं बंदौं बारबार। मेरी आपत उद्धार धार ।।१९।।
सम्मेदशैल सुरपति नमंत। तब मुकतथान अनुपम लसंत।
वृन्दावन बंदत प्रीतिलाय। मम उरमें तिष्ठहु हे जिनाय ।।२०।।

घत्तानंद

जयजय जिनस्वामी, त्रिभुवननामी, मल्लविमलकल्यानकरा।
भवदंद विदारन आनंद कारन, भविकुमोद निशि ईश वरा ।।२१।।

ओं ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शिखरिणी

जजें हैं जो प्रानी दरब अरु भावादि विधिसों,
करैं नानाभाँती भगति थुति और नौति सुधिसौं।
लहै शक्री चक्री सकल सुख सौभाग्य तिनको,
तथा मोक्ष जावै जजत जन जो मल्लिजिन को।२२।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनपूजा

छन्द मत्तगयन्द

प्रानत स्वर्ग विहाय लियो जिन, जन्म सु राजगृहीमँह आई।
श्री सुहमित्त पिता जिनके, गुनवान महापदमा जसु माई।।
बीस धनू तनुश्याम छबि, कछु अंक हरी वरवंश बताई।
सो मुनिसुव्रतनाथ प्रभु कंह, थापतु हौं इत प्रीति लगाई।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्नि०)

छन्द-गीतिका

उज्ज्वल सुजल जिमि जस तिहार, कनक झारी में भरों।
जर मरन जामन हरन कारन, धार तुम पदतर करो।।
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ, मुनि गुनमाल हैं।
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन विरद विशाल हैं।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

भवतापघायक शांतिदायक, मलय हरि घसि ढिंग धरूं।
गुन गाय शीश नमाय पूजत, विघनताप सबै हरूँ।।शिव०।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि० स्वाहा।

तंदुल अखंडित दमक शशिसम, गमक युत थारी भरूँ।
पद अखयदायक मुकतिनायक, जानि पद पूजा करूँ।।शिव०।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

बेला चमेली रायबेली, केतकी करना सरूँ।
जगजीत मनमथहरन लखि प्रभु, तुम निकट ढेरी करूँ।।शिव०।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

पकवान विविध मनोज्ञ पावन, सरस मृदु गुन विस्तरूँ।
सो लेय तुम पदतर धरत ही, छुधा डाइन को हरूँ।।
शिवसाथ करत सनाथ सुव्रतनाथ मुनि गुनमाल हैं।
तसु चरन आनन्दभरन तारन, तरन विरद विशाल हैं।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

दीपक अमोलिक रतन मनिमय, तथा पावन घृत भरूँ।
सो तिमिर मोह विनाश आतम, भासकारन ज्वै धरूँ।।शिव०।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् नि० स्वाहा।

करपूर चन्दन चूर भूर सुगन्ध पावक में धरूँ।
तसु जरत जरत समस्त पातक, सार निज सुखकों भरूँ।।शिव०।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल अनार सु आम आदिक, पक्व फल अति विस्तरूँ।
सो मोक्षफलके हेतु लेकर, तुम चरन आगे धरूँ।।शिव०।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जलगंध आदि मिलाय आठों, दरब अरघ सजों वरूँ।।
पूजों चरनरज भगत जुत, जातें जगत सागर तरूँ।।शिव०।।

ओं ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

तिथि दोयज सावन श्याम भयो, गरभागम मंगल मोद थयो।
हरिवृन्द सची पितु मातु जजे, हम पूजत ज्यौं अघ ओघ भजे।।

ओं ह्रीं श्रावणकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वयसाख वदी दशमी वरनी, जनमें तिहिं द्यौस त्रिलोकधनी।
सुरमन्दिर ध्याय पुरन्दर ने, मुनिसुव्रतनाथ हमें सरने।।

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णादशम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर ने गहियो, वयसाख वदी दशमी कहियो।
निरुपाधि समाधि सुध्यावत हैं, हम पूजत भक्ति बढ़ावत हैं।।

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णादशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर केवलज्ञान उद्योत किया, नवमी वयसाख वदी सुखिया।
घनि मोहनिशाभनि मोखमगा, हम पूजि चहैं भवसिन्धु थगा।।

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णानवम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वदि बारस फागुन मोच्छ गये, तिहुँ लोक शिरोमनि सिद्ध भये।
सु अनन्त गुनाकर विघ्न हरी, हम पूजत हैं मनमोद भरी।।

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णाद्वादश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीमुनिसुव्रतजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

मुनिगननायक मुक्तिपति, सूक्त व्रताकरयुक्त।
भुक्तिमुक्तिदातार लखि, बन्दूँ तन मन युक्त।।

छन्द त्रोटक

जय केवल भान अमान धरं, मुनि स्वच्छसरोज विकासकरं।
भव संकट भंजन लायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
घनघातवनं दवदीप्त भनं, भविवोधतृषातुर मेघघनं।
नित मङ्गलवृन्द बधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
गरभादिक मङ्लसार धरे, जगजीवन के दुखदंद हरे।
सब तत्त्वप्रकाशन वायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
शिवमारगमंडन तत्त्व कह्यो, गुनसार जगत्रय शर्म लह्यो।
रुज-रागरु दोष मिटायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।

समवसृति में सुरनार सही, गुन गावत नावत भालमहीं।
अरु नाचत भक्ति बढ़ायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
पगनूपुर की धुनि होत भनं, झननं झननं झननं झननं।
सुरलेत अनेक रमायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
घननं घननं घन घंट बजैं, तननं तननं तनतान सजैं।
दृम-दृम मिरदंग बजायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
छिन में लघु औ छिन थूल बनें युत हावविभाव विलासपनें।।
मुखतें पुनि यों गुनगायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
धृगतां धृगतां पग पावत हैं सननं सननं सु नचावत हैं।
अति आनन्द को पुनि पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
अपने भव को फल लेत सही, शुभ भावनितें सब पाप दही।
तित ते सुखको सब पायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
इन आदि समाज अनेक तहाँ, कहि कौन सकै जु विभेद यहाँ।
घन श्री जिनचन्द सुधायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
पुनि देश विहार कियौ जिनने, वृष अमृतवृष्टि कियो तुमने।
हमको तुमरी शरनायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
हम पै करुना करि देव अबै, शिवराज समाज से देहु सबैं।
जिमि होहुँ सुखाश्रमनायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।
भवि वृन्दतनी विनती जु यही, मुझ देहु अभैपद राज सही।
हम आनि गही शरनायक हैं, मुनिसुव्रत सुव्रतदायक हैं।।

छन्द घत्तानन्द

जय गुनधारी, शिवहितकारी, शुद्धबुद्ध चिद्रूपपती।
परमानन्ददायक, दास सहायक, मुनिसुव्रत जयवन्त जती।।

ओं ह्री श्री मुनिसुव्रतजिनेन्द्राय जयमाला महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

श्री मुनिसुव्रत के चरन, जो पूजै अभिनन्द।
सो सुरनर सुख भोगकें, पावै सहजानन्द।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री नमिनाथ जिनपूजा

(रोड़क)

श्री नमिनाथजिनेन्द्र नमों विजयारथनन्दन।
विख्यादेवी मातु सहज सब पापनिकन्दन।।
अपराजित तजि जये मिथिलापुर वर आनन्दन,
तिन्हें सु थापों यहाँ त्रिधा करिके पदवन्दन।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्
(सन्निधिकरणम्।)

(छन्द जोगीरासा)

सुरनदी जल उज्ज्वल पावनं, कनकभृङ्ग भरो मनभावनं।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

हरि मलै मिलि केशरसों घसों, जगतनाथ भवाताप को नसों।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि० स्वाहा।

गुलक के सम सुन्दर तन्दुलं, धरत पुञ्जसु भुञ्जत संकुलं।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

कमल केतकि बेलि सुहावनी, समरसूल समस्त नसावनी।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

शशि सुधासम मोदक मोदनं, प्रबल दुष्ट छुदामद खोदनं।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपंदाबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

शुचि घृताश्रित दीपक जोइया, असम मोह महत्तम खोइया।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् नि० स्वाहा।

अमरजिह्व विषैं दशगंधकों, दहत दाहत कर्म के बंधकों।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि० स्वाहा।

फल सुपक्व मनोहर पावने, सकल विघ्न समूह नशावने।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल फलादि मिलाय मनोहरं, अरघ धारत ही भय भौ हरं।
जजतु हौं नमिके गुन गायकें, जुगपदांबुज प्रीति लगायकें।।

ओं ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० स्वाहा।

पंचकल्याणक

छन्द-पाईता

गरभागम मंगलधारा, जुग आश्विन श्याम उदारा।
हरि हर्षि जजे पितुमाता, हम पूजें त्रिभुवन ताता।।

ओं ह्रीं आश्विन्कृष्णाद्वितीयां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनमोत्सव श्याम असाढ़ा, दशमी दिन आनन्द बाढ़ा।
हरि मन्दर पूजे जाई, हम पूजे मनवचकाई।।

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णादशम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप दुद्धर श्रीधर धारा, दशमीकलि षाढ़ उदारा।
निज आतम-रस झर लायौ, हम पूजत आनन्द पायौ।।

ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित मगसिर ग्यारस चूरे, चवघाति भये गुन पूरे।
समवसृत केवलधारी, तुमको नित नौति हमारी।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वयसाख चतुर्दशि श्यामा, हनि शेष वरी शिववामा।
सम्मेद थकी भगवन्ता, हम पूजैं सुगुन अनन्ता।।

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आयु सहसदश वर्ष की, हेमवरन तन सार।
धनुष पञ्चदश तुंग तन, महिमा अपरम्पार।।

चौपाई

जै जै जै नमिनाथ कृपाला, अरिकुल गहन दहन दवज्वाला।
जै जै धरमपयोधर धीरा, जय भवभंजन गुनगम्भीरा।।
जै जै परमानन्द गुन धारी, विश्व विलोकन जनहितकारी।
अशरन शरन उदार जिनेशा, जै जै समवशरन आवेशा।।
जै जै केवलज्ञान प्रकाशी, जै चतुरानन हनि भवफाँसी।
जै त्रिभुवनहित उद्यमवन्ता, जै जै जै जै नमि भगवन्ता।
जै तुम सप्ततत्त्व दरशायो, तास सुनत भवि निजरस पायो।।
एक शुद्ध अनुभव निज भाखे, दो विधि राग-दोष छैं आखे।।

द्वै श्रेणी दै नय द्वै धर्मं, दो प्रमाण आगमगुन शर्म।
तीन लोक त्रयजोग तिकालं, सल्ल पल्ल त्रय बात बयालं।।
चार बन्ध संज्ञागति ध्यानं, आराधनं निछेप चउदानं।
पञ्चलब्धि आचार प्रमादं, बन्धहेतु पैंताले सादं।।
गोलक पञ्चभाव शिव भौंने, छहों दरब सम्यक अनुकौनें।
हानि वृद्धि तप समय समेता, सप्तभङ्ग वानी के नेता।।
संजम समुदघात भय सारा, आठ करम मद सिध गुन धारा।
नवों लब्धि नव तत्त्व प्रकाशे, नोकषाय हरि तूप हुलाशे।
दशों बन्ध के मूल नशाये, यों इन आदि सकल दरशाये।
फेर विहरि जग जन उद्धारे, जै जै ज्ञान दरश अविकारे।।
जै वीरज जै सूक्षमवन्ता, जै अवगाहन गुन वरनन्ता।
जै जै अगुरुलघू निरबाधा, इन गुनयुत तुम शिव सुखसाधा।।
ताकों कहत थके गन धारी, तौ को समरथ कहैं प्रचारी।
तातैं मैं अब शरनै आया, भवदुख मेटि देहु शिवराया।।
बारंबार यह अरज हमारी, हे त्रिपुरारी हे शिवकारी।
परपरनति को बेगि मिटावो, सहजानन्द सरूप मिटावो।।
'वृन्दावन' जाँचत शिरनाई, तुम मम उर निवसौ जिनराई।
जबलों शिव नहिं पावों सारा, तबलों यही मनोरथ म्हारा।।

छन्द घत्तानन्द

जय जय नमिनाथं, हो शिवसाथं, औ अनाथ के नाथ सदं।
ताते शिरनायौ, भगति बढाऔ, चिह्न चिह्न शतपत्र पदं।।

ओं ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

श्री नमिनाथतनें युगल, चरन जजैं जो जीव।
सो सुर नर सुख भोगवर, होवैं शिवतिय पीव।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्रीनेमिनाथ जिनपूजा

(छंद लक्ष्मी, तथा अर्द्धलक्ष्मीधरा)

जैति जै जैति जै जैति जै नेमकी, धर्म औतार दातार श्यौचैनकी।
श्री शिवानंद भौफंद निःकन्द ध्यावै, जिन्हैंइन्द्र नागेन्द्रओ मैनकी।।
परमकल्यानके देनहारे तुम्हीं, देव हो एव तातें करौ ऐनकी।
थापि हौ वार त्रै शुद्ध उच्चार त्रै, शुद्धताधार भौपारकूं लेन की।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

अष्टक

(चाल होली, ताल जत्त)

दाता मोक्षके, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता०।।टेक।।
गंग नदी कुश प्राशुक लीनौ, कंचनभृंग भराय।
मन वच तन तें धार देत ही, सकल कलंक नशाय।।
दाता मोक्षके, श्रीनेमिनाथ जिनराय, ।।दाता० १।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचन्दनजुत कदलीनन्दन, कुंकुम संग घसाय।
विघन ताप नाशन के कारन, जजौं तिहारे पाय ।। दाता०२।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्यराशि तुमजस सम उज्ज्वल, तंदुल शुद्ध मंगाय।
अखय सौख्य भोगन के कारन, पुंज धरों गुनगाय।। दा०३।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये. अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्डरीक तृण द्रुम को आदिक, सुमन सुगंधित लाय।
दर्प्पक मनमथ भंजनकारन, जजहुं चरन लवलाय।।दा० ४।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

घेवर बावर खाजे साजे, ताजे तुरत मँगाय।
क्षुधावेदनी नास करनको, जजहुँ चरन उमगाय।।
दाता मोक्षके, श्रीनेमिनाथ जिनराय, दाता० ।।५।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कनक दीप नवनीत पूरकर, उज्ज्वल जोति जगाय।
तिमिरमोहनाशक तुमको लखि, जजहुँ चरन हुलसाय।। दा०६।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशविध गंध मँगाय मनोहर, गुंजत अलिगण आय।
दशों बंध जारन के कारण, खेवों तुमढिंग लाय।।दा० ७।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस वरन रसना मनभावन, पावन फल सु मंगाय।
मोक्ष महाफल कारण पूजों, हे जिनवर तुम पाय।दाता० ८।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आदि साज शुचि लीने, आठों दरब मिलाय।
अष्टम छिति कै राज करनकों, जजों अंग वसु नाय।। दा०।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

पंचकल्याणक

छंद पाइता

सित कार्तिक छट्ठ अमंदा। गरभागम आनन्द कन्दा।
शचि सेय सिवा पद आई। हम पूजत मन-वच-काई।।१।।

ओं ह्रीं कार्तिकशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित सावन छट्ठ अमन्दा। जनमें त्रिभुवन के चन्दा।
पितु समुद्र महासुख पायो। हम पूजत विघन नशायो।।२।।

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तजि राजमती व्रत लीनों। सित सावन छट्ठ प्रवीनों।
शिवनारि तबै हरषाई। हम पूजैं पद शिरनाई।।३।।

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठ्यां तपःकल्याणकप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सित आश्विन एकम चूरे। चारों घाती अति कूरे।
लहि केवल महिमा सारी। हम पूजैं पद अष्टप्रकारा।।४।।

ओं ह्रीं आश्विन् शुक्ल प्रतिपदि केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सितषाढ़ अष्टमी चूरे। चारों अघातिया कूरे।
शिव ऊर्ज्जयन्ततें पाई। हम पूजैं ध्यान लगाई।।५।।

ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लाष्टम्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

श्याम छबी तन चाप दश, उन्नत गुणनिधिधाम।
शंख चिह्नपद में निरखि, पुनि पुनि करों प्रणाम।१।

छंद पद्धरि

जै जै जै नेमि जिनिंद चन्द। पितु समुद्रसेन आनन्दकन्द।
शिवमात कुमुद मन मोद दाय। भविवृन्द चकोर सुखी कराय।२।
जयदेव अपूरब मारतंड। तम कीन ब्रह्मसुत सहस खंड।
शिवतिय मुख जलज विकासनेश। नहिं रहो सृष्टि में तम अशेष।३।
भविभीत कोक कीनों अशोक। शिवमग दरशायो शर्मथोक।
जै जै जै तुम गुनगम्भीर। तुम आगम निपुण पुनीत धीर।४।
तुम केवल जोति विराजमान। जै जै जै जै करुणानिधान।
तुम समवसरनमें तत्त्वभेद। दरशायो जातें नशत खेद।५।
तित तुमकों हरि आनंदधार। पूजत भगतीजुत बहु प्रकार।

पुनि गद्यपद्यमय सुजस गाय। जै बल अनंत गुनवंतराय।६।
जय शिवशंकर ब्रह्मा महेश। जय बुद्ध विधाता विष्णुदेव।
जय कुमतिमतंगन को मृगेंद्र। जय मदनध्वांतको रविजिनेंद्र।७।
जय कृपासिंधु अविरुद्ध बुद्ध। जय रिद्धसिद्ध दाता प्रबुद्ध।
जय जग जन मन रंजन महान। जय भवसागरमहँ सुष्टुयान।८।
तुव भगति करें ते धन्य जीव। ते पावैं दिव शिवपद सदीव।
तुमरो गुनदेव विविधप्रकार। गावत नित किन्नर की जु नार।६।
वर भगतिमाहिं लवलीन होय। नाचैं ता थेइ थेइ थेइ बहोय।
तुम करुणासागर सृष्टिपाल। अब मोकों बेगि करो निहाल।१०।
मैं दुख अनंत वसु करम जोग। भोगे सदीव नहिं और रोग।
तुमकों जगमें जान्यो दयाल। हो वीतराग गुनरतनमाल।११।
तातें शरना अब गही आय। प्रभु करो वेगि मेरी सहाय।
यह विघनकरम मम खंडखंड। मनवांछितकारज मंडमंड ।१२।
संसार कष्ट चक चूर चूर। सहजानन्द मम उर पूर पूर।
निजपर प्रकाशबुधिदेइ देई। तजिके बिलंब सुधि लेई लेई।१३।
हम जांचत हैं यह बार बार। भवसागरतें मो तार तार।
नहिं सह्यो जात यह जगत दुःख। तातैं विनवो हे सुगुनमुक्ख।१४।

घत्तानंद

श्रीनेमिकुमारं जितमदमारं, शीलागारं, सुखकारं।
भवभयहरतारं, शिवकरतारं, दातारं धर्माधारं।।१५।।

ओं ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तयेमहार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

मालिनी

सुख धन जस सिद्धि पुत्र-पौत्रादि वृद्धी।।
सकल मनसि सिद्धि होति है ताहि रिद्धी।।
जजत हरषधारी नेमि को जो अगारी।
अनुक्रम अरिजारी सो वरे मोक्षनारी।।१६।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री पार्श्वनाथ जिनपूजा

छन्द कवित्त

प्राणत देवलोकतैं आये, वामादे उर जगदाधार।
अश्वसेन सुत नुत हरिहर हरि, अंक हरिततन सुखदातार।।
जरत नागजुग बोधि दियो जिहि, भुवनेसुरपद परमउदार।
ऐसे पारस को तजि आरस, थापि सुधारस हेत विचार।।

ओ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आह्वाननम्)
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)
ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट्
(सन्निधिकरणम्।)

छन्द-प्रतिमाक्षर

सुर दीरघ कञ्चन कुम्भ भरूँ, तव पादपद्मतर धार करूँ।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्युविनाशनाय जलं नि० स्वाहा।

हरिगन्ध कुंकुम कर्पूर घसूँ, हरि चिह्न हेरि अरचों सुरसूँ।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं नि० स्वाहा।

हिम हीर नीरज समान शुचं, वर तंदुल पुञ्ज तवाग्र मुचं।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि० स्वाहा।

कमलादि पुष्प धनुपुष्प धरी, मदभंजनहेत ढिग पुञ्ज करी।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि० स्वाहा।

चरु नव्य गव्य रस सार करूँ, धरि पादपद्मतर मोद भरूँ।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० स्वाहा।

मनि दीप जोत जगमग्ग मई, तव पाद कंजतर वार दई।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् नि० स्वाहा।

दंश गंध खेय मन माचत है, बहु धूम धूम मिसि नाचत है।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल पक्व शुद्ध रस जुक्त लिया, पदकंज पूजत हौं खोलि हिया।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल आदि साजि सब द्रव्य लिया, कनथार धार नुत नृत्य किया।
सुखदाय पाय यह सेवत हूँ, प्रभु पार्श्व पार्श्व गुन बेवत हूँ।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

लक्ष्मीधरा

पक्ष वैसाख की श्याम दूजी भनों,
गर्भकल्यानको द्यौस सोही गनों।
देव देवेन्द्र श्रीमातु सेवैं सदा,
मैं जजूँ नित्य विघ्न जो होवे विदा।।

ओं ह्रीं वैशाखकृष्णाद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौषकी श्याम एकादशी कों स्वजी,
जन्म लीनों जगन्नाथ धर्मध्वजी।
जायके नाक नागेन्द्र ने पूजिया,
मैं जजों ध्यायकें भक्त धारों हिया।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्ण एकादशी पौषकी पावनी,
राजकों त्याग वैराग धारयो बनी।
ध्यान चिद्रूप को ध्याय साता मई,
आपको मैं जजों भक्ति भावें लई।।

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चैत की चौथि श्यामा महाभावनी,
तादिना घातिया घाति शोभा बनी।
बाह्य आभ्यन्तरे छन्द लक्ष्मीधरा,
जैति सर्वज्ञ मैं पादसेवा करा।।

ओं ह्रीं चैत्रकृष्णचतुर्थ्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सप्तमी शुद्ध शोभै महासावनी,
तादिना मोक्ष पायो महापावनी।
शैलसम्मेदतें सिद्ध राजा भये,
आपको पूजतें सिद्ध काजा ठये।।

ओं ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

पार्श्व पर्म गुनरास हैं, पार्श्व कर्म हरतार।
पार्श्व शर्म निजवास दो, पार्श्व धर्म धरतार।।
नगर बनारसि जन्म लिय, वंश इख्वाकु महान।
आयु वरष शत तुंग तन, हस्त सुनव परमान।।

छन्द-पद्धरि

जय श्रीधर श्रीकर श्री जिनेश, तुव गुन गन फणि गावत अशेश।
जय जय जय आनंद कन्दचंद, जय जय भवि पंकज को दिनन्द।।
जय जय शिवतिय वल्लभ महेश, जय ब्रह्मा शिवशंकर गनेश।
जय स्वच्छ चिदंग अनंग जीत, तुव ध्यावत मुनिगन सुहृद मीत।।
जय गरभागममंडित महंत, जग जनमन मोदन परम सन्त।
जय जनम महोत्सव सुखद धार, भवि सारंग को जलधर उदार।।
हरि गिरिवर पर अभिषेक कीन, भट तांडव निरत अरंभ दीन।
बाजन बाजत अनहद अपार, को पार लहत वरनत अपार।।
दृमदृम दृमदृम दृमदृम मृदंग, घनघन नननन घंटा अभंग।
छमछम छमछम छम छुद्र घंट, टमटम टमटम टंकोर तंट।।
झननन झननन नूपुर झंकोर, तननन तननन तन तान शोर।
सन नन नन नन नन गगन माहिं, फिरि फिरि फिरि फिरि फिरिकी-लहांहि।।
ताथेई थेई थेई धरत पांव, चटपट अटपट झट त्रिदशराव।
करिकें सहस्त्र कर को पसार, बहुभाँति दिखावत भाव प्यार।।
निज भगति प्रगट जित करतइंद्र, ताकों क्या कंह सकि हैं कविंद्र।
जंह रंगभूमि गिरिराज पर्म, अरु सभाईश तुम देव शर्म।।
अरु नाचत मघवा भगति रूप, बाजे किन्नर बज्जत अनूप।
सो देखत ही छबि बनत वृन्द, मुखसों कैसे वरनै अमंद।।

धन धड़ी सोय धनदेव आप, धन तीर्थङ्कर प्रकृती प्रताप।
हम तुमको देखत नयन द्वार, मनु आज भये भव सिंधु पार।।
पुनि पिता सौंपि हरि स्वर्ग जाय, तुम सुखसमाज भोग्यौ जिनाय।
फिरि तपधरि केवलज्ञान पाय, धरमोपदेश दै शिव सिधाय।।
हम सरनागत आये अबार, हे कृपासिन्धु गुन अमल धार।
सो मन में तिष्ठहु सदाकाल, जबलौं न लहों शिवपुर रसाल।।
निरवान थान सम्मेद जाय, 'वृन्दावन' वन्दत शीश नाय।
तुम ही हौ सब दुख दन्द हर्न, तातें पकरी यह चर्न शर्न।।

छन्द-घत्तानन्द

जय जय सुखसागर, त्रिभुवन आगर, सुजस उजागर पार्श्वपती।
'वृन्दावन' ध्यावत, पूज रचावत, शिवथल पावत शर्म अती।।

ओं ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

छन्द कवित्त मात्रा ३१

पारसनाथ अनाथनि के हित, दारिदगिरिकों वज्र समान।
सुखसागरवर्द्धन को शशिसम, दवकषायको मेघ महान।।
तिनकों पूजै जो भवि प्रानी, पाठ पढ़ै अति आनन्द आन।
सो पावै मनवाँछित सुख सब, और लहै अनुक्रम निरवान।।

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री महावीरस्वामी जिनपूजा (चाँदनगाँव)

श्री वीर सन्मति गांव चांदनमें प्रगट भये आय कर।
जिनको वचन मन कायसे मैं पूजहूं शिर नाय कर।।
हुये दयामय नार नर लखि, शांतिरूपी भेषको।
तुम ज्ञानरूपी भानसे कीना सुशोभित देशको।।
सुर इन्द्र विद्याधर मुनी नरपति नवावें शीसको।
हम नवत हैं नित चावसों महावीर प्रभु जगदीश को।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमान श्री महावीरस्वामिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्(आ०)

ओं ह्रीं श्री चाँदनपुरविराजमान श्री महावीरस्वामिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्थापनम्)

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमान श्री महावीरस्वामिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (सन्निधिकरणम्)

क्षीरोदधिसे भरि नीर कंचन के कलशा।
तुम चरणनि देत चढ़ाय आवागमन नशा।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।१।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिर और कपूर केशर ले हरषों।
प्रभु भव आताप मिटाय तुम चरननि परसों।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल उज्ज्वल अति धोय थारी में लाऊं।
तुम संमुख पुंज चढ़ाय अक्षय पद पाऊं।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बेला केतकी गुलाब चंपा कमल लऊं।
जे कामबाण करि नाश तुम्हरे चरण दऊं।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फैना गुंजा अरु स्वार मोदक ले लीजे।
करि क्षुधा रोग निरवार तुम सम्मुख कीजे।।
चाँदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

घृतमें करपूर मिलाय दीपक में जोरो।
करि मोहतिमिरको दूर तुम सम्मुख बारो।।
चाँदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशविधि ले धूप बनाय तामें गंध मिला।
तुम सम्मुख खेऊं आय आठों कर्म जला।।

चाँदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता किसमिस बादाम श्रीफल लौंग सजा।
श्री वर्द्धमान पद राख पाऊं मोक्ष मुदा।।
चाँदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध सु अक्षत पुष्प चरुवर जोर करों।
ले दीप धूप फल मेलि आगे अर्घ्य करों।।
चाँदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरस्वामिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

टोंक के चरणों का अर्घ्य

जहँ कामधेनु नित आय दुग्ध जु बरसावै।
तुम चरननि दरशन होत आकुलता जावै।।
जहँ छतरी बनी विशाल तहँ अतिशय भारी।
हम पूजत मन वच काय तजि संशय सारी।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं शिखरस्थापितश्रीमहावीरचरणाभ्यां अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

टीले के अंदर विराजमान समय का अर्घ्य

टीले के अन्दर आप सोहें पदमासन।
जहां चतुर निकाई देव आवें जिन शासन।।
नित पूजन करत तुम्हार करमें ले झारी।
हम हूं वसु द्रव्य बनाय पूजें भरि थारी।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चाँदनपुरविराजमानश्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक

कुंडलपुर नगर मंझार त्रिशला उर आयो।
सुदि छठि असाढ़ सुर आई रतनजु बरसायो।।
चाँदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लाषष्ठयां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्य पदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जनमत अनहद भई घोर आये चतुर निकाई।
तेरस शुक्ला की चैत्र सुर गिरि ले जाई।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं चैत्रशुक्लात्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णा मगसिर दश जान लौकांतिक आये।
करि केश लौंच ततकाल झट वनको धाये।।

चाँदनपुरके महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बैसाख सुदी दशमांहि घाती क्षय करना।
पायौ तुम केवलज्ञान इन्द्रनि की रचना।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं वैशाखशुक्लादशम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कार्तिक जु अमावस कृष्ण पावापुर ठाही।
भयो तीनलोकमें हर्ष पहुँचे शिव माहीं।।
चाँदनपुर के महावीर तोरी छवि प्यारी।
प्रभु भव आताप निवार तुम पद बलिहारी।।

ओं ह्रीं कार्तिकामावस्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

मंगलमय तुम हो सदा श्रीसन्मति सुखदाय।
चाँदनपुर महावीरकी कहूं आरती गाय।।

पद्धरि

जय जय चाँदनपुर महावीर, तुम भक्तजनों की हरत पीर।
जड़ चेतन जगके लखत आप, दई द्वादशांग वानी अलाप।।१।।
अब पंचम काल मँझार आय, चाँदनपुर अतिशय दई दिखाय।
टीलेके अंदर बैठि वीर, नित हरा गाय का तुमने क्षीर।।२।।

ग्वालाको फिर आगाह कीन, जब दरशन अपना तुमने दीन।
मूरति देखी अति ही अनूप, है नग्न दिगंबर शांति रूप।।३।।
तहां श्रावक जन बहु गये आय, किये दरशन करि मनवचकाय।
है चिह्न शेर का ठीक जान, निश्चय है ये श्रीवर्द्धमान।।४।।
सब देशन के श्रावक जु आय, जिन भवन अनूपम दियो बनाय।
फिर शुद्ध दई वेदी कराय, तुरतहिं गजरथ फिर लयो सजाय।।५।।
ये देख ग्वाल, मन में अधीर, मम ग्रह को त्यागो नहीं वीर।
तेरे दरशन बिन तजूं प्राण, सुनि टेर मेरी किरपा निधान।।६।।
कीने रथमें प्रभु विराजमान, रथ हुआ अचल गिरके समान।
तब तरह तरहके किये जोर, बहुतक रथ गाड़ी दिये तोड़।।७।।
निशिमाँहि स्वप्न सचिवहिं दिखात, रथ चलै ग्वाल का लगत हाथ
भोरहिं झट चरण दियो बनाय, संतोष दियो ग्वालहिं कराय।।८।।
करि जय जय प्रभु से करी टेर, रथ चल्यो फेर लागी न देर।
वहु निरत करत बाजे बजाई, स्थापन कीने तहँ भवन जाइ।।६।।
इक दिन मंत्रीको लगा दोष, धरि तोप कही नृप खाइ रोष।
तुमको जब ध्याया वहाँ वीर, गोलासे झट बच गया वजीर।।१०।।
मंत्री नृप चाँदन गाँव आय, दरशन करि पूजा की बनाय।
करि तीन शिखर मंदिर रचाय, कंचन कलशा दीने धराय।।११।।
यह हुक्म कियो जयपुर नरेश, सालाना मेला हो हमेश।
अब जुड़न लगे बहु नर उ नार, तिथि चैत सुदी पूनों मँझार ।।१२।।
मीना गूजर आवै विचित्र, सब वरण जुड़े करि मन पवित्र।
बहु निरत करत गावैं सुहाय, कोई २ घृत दीपक रह्यो चढ़ाय ।।१३।।
कोई जय जय शब्द करै गंभीर, जय जय जय हे श्री महावीर।
जैनी जन पूजा रचत आन, कोई छत्र के चंवरके करत दान।।१४।।
जिसकी जो मन इच्छा करंत, मन वांछित फल पावै तुरंत।
जो करै वंदना एक बार, सुख पुत्र संपदा हो अपार।। १५।।

जो तुम चरणों में रखै प्रीत, ताको जगमें को कर सकै जीत।
है शुद्ध यहाँ का पवन नीर, जहाँ अति विचित्र सरिता गंभीर ।।१६।।
पूरनमल पूजा रची सार, हो भूल लेउ सज्जन सुधार।
मेरा है शमशावाद ग्राम, त्रय काल करूं प्रभुको प्रणाम।।१७।।

घत्ता

श्री वर्द्धमान तुम गुण निधान उपमा न बनी तुम चरनन की।
है चाह यही नित बनी रहै अभिलाषा तुम्हारे दरशन की।।

ओं ह्रीं श्री चाँदनपुरविराजमान श्रीमहावीरजिनबिम्बाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

अष्टकर्मके दहनको पूजा रची विशाल।
पढ़े सुनें जो भावसे छूटे जग जंजाल।।१।।
संवत जिन चौबीस सौ, है बासठकी साल।
एकादश कार्तिक वदी पूजा रची सम्हाल।।२।।

इत्याशीर्वादः (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

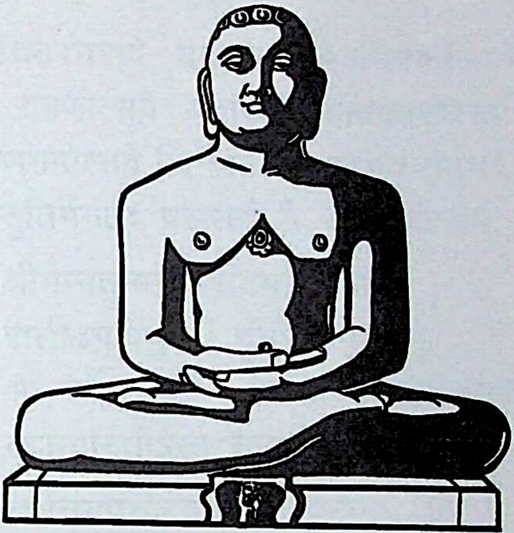

चतुर्थ भाग

स्तोत्र, स्तुति, भक्ति पाठ, आरती

सुप्रभात-स्तोत्रम्

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यद्भवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः,
संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ।।१।।

श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभि-
रालीढ़पादयुग ! दुर्धर-कर्मदूर !
श्री नाभिनन्दन ! जिनाजितसम्भवाख्य !
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ।।२।।

छत्रत्रयप्रचलचामरवीज्यमान्-
देवाभिनन्दनमुने सुमते जिनेन्द्र !
पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासुरांग ।।त्व०।।३।।

अर्हन् सुपार्श्व ! कदलीदलवर्णगात्र,
प्रालेयतारगिरि-मौक्तिक-वर्ण-गौर-
चन्द्रप्रभ-स्फटिकपाण्डुर पुष्पदन्त! ।। त्व०।।४।।

सन्तप्तकाञ्चनरुचेजिनशीतलाख्य !
श्रेयन्विनष्टदुरिताष्टकलंकपंक।
बन्धूकबन्धुररुचे जिनवासुपूज्य ! ।। त्व०।।५।।

उद्दण्डदर्पकरिपो विमलामलांग,
स्थेमनन्तजिदनन्तसुखाम्बुराशेः।
दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ ! ।। त्व०।।६।।

देवामरीकुसुमसन्निभ शान्तिनाथ !
कुन्थो ! दयागुणविभूषणभूषितांग।
देवाधिदेव भगवन्नरतीर्थनाथ ! ।। त्व०।।७।।

यन्मोहमल्लमदभञ्जनमल्लिनाथ !
क्षेमंकरोऽवितथशासनसुव्रताख्य !
यत्सम्पदाप्रशमितो नमिनामधेय ! ।। त्व०।।८।।

तापिच्छगुच्छरुचिरोज्ज्वल नेमिनाथ !
घोरोपसर्गविजयिन् जिन पार्श्वनाथ !
स्याद्वादसूक्तिमणिदर्पणवर्द्धमान ! ।। त्व०।।६।।

प्रालेयनीलहरितारुणपीतभासं,
यन्मूर्तिमव्यय सुखावसथं मुनीन्द्राः!
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां ।। त्व०।।१०।।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं मांगल्यं परिकीर्तितम्।
चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने ।।११।।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ।।१२।।

सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्त्वसुखावहम् ।।१३।।

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्।
अज्ञानतिमिरान्धानां नित्यमस्तमितो रविः ।।१४।।

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवीदग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना ।।१५।।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम्।
त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिनानामेव शासनम् ।।१६।।

5138

महावीराष्टक-स्तोत्रम्

(कविवर भागचन्द)

शिखरिणी

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः
समं भान्ति ध्रौव्य-व्ययजनि-लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षीमार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।१।।

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्द-रहितं
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।२।।

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भाजाल-जटिलं
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।३।।

यदर्च्चा-भावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख समाजं किमु तदा
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।४।।

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो
विचित्रात्माप्येको नृपति-वर-सिद्धार्थ-तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भव-रागोद्भुत-गतिर्
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।५।।

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।६।।

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः
कुमारावस्थायामपि निज-बलाद्येन विजितः
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।७।।

महामोहातंक-प्रशमन-पराकस्मिक-भिषक्
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा मंगलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भयभृतामुत्तमगुणो
महावीरस्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे।।८।।

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम्।।६।।

श्री जिनसहस्त्रनामस्तोत्रम्

(अनुष्टुप छन्द)

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तयेऽचिंत्यवृत्तये ।।१।।
नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर ! ।।२।।
कर्मशत्रुहणं देवमामनन्ति मनीषिणः।
त्वामानमत्सुरेण्मौलिभामालाभ्यर्चितक्रमम् ।।३।।
ध्यानदुर्घणनिर्भिन्नघनघातिमहातरुः ।
अनन्तभवसन्तानजयादासीरनन्तजित् ।।४।।
त्रैलोक्यनिर्जयावाप्तदुर्दर्पमतिदुर्जयम् ।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन! मृत्युञ्जयो भवान् ।।५।।
विधूताशेषसंसारबन्धनो- भव्यबान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि जन्ममृत्युजरान्तकृत् ।।६।।
त्रिकालविजयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशितः ।।७।।
त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुरमर्दनात् ।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यतः ।।८।।
शिवः शिव-पदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः।
शंकरः कृतशं लोके संभवस्त्वं भवन्सुखे ।।९।।
वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरुगुणोदयैः।
नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ।।१०।।
त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधाबुद्धसन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारकः ।।११।।
चतुःशरणमांगल्यमूर्तिस्त्वं चतुरस्रधीः।
पंचब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम् ।।१२।।

स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेकवामाय वामदेव नमोऽस्तु ते ।।१३।।
संन्निष्क्रान्तावघोराय परं प्रशममीयुषे।
केवलज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते ।।१४।।
पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्तिपदभाजिने ।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भावर्नी तेऽद्य बिभ्रते ।।१५।।
ज्ञानावरण-निर्ह्रासान्नमस्तेऽनन्त-चक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने ।।१६।।
नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टये।
नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय महौजसे ।।१७।।
नमस्तेऽनन्तवीर्याय नमोऽनन्तसुखात्मने ।
नमस्तेऽनन्तलोकाय लोकालोकावलोकिने ।।१८।।
नमस्तेऽनन्तदानाय नमस्तेऽनन्तलब्धये ।
नमस्तेऽनन्तभोगाय नमोऽनन्तोपभोगिने ।।१९।।
नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये ।
नमः परमपूताय नमस्ते परमर्षये ।।२०।।
नमः परमविद्याय नमः पर-मत-च्छिदे।
नमः परमतत्त्वाय नमस्ते परमात्मने ।।२१।।
नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे।
नमः परममार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने।।२२।।
परमर्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः।
नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने परतरात्मने ।।२३।।
नमः क्षीणकलंकाय क्षीणबन्ध नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीणदोषाय ते नमः ।।२४।।
नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञानसुखायानिन्द्रियात्मने ।।२५।।
कायबन्धननिर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने ।।२६।।

अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः।
नमः परमयोगीन्द्र वन्दितांघ्रिद्वयाय ते ।।२७।।
नमः परमविज्ञानाय नमः परमसंयमः।
नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय ते नमः ।।२८।।
नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशकस्पृशे।
नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षिणे ।।२९।।
संज्यसंज्ञिद्वयावस्था - व्यतिरिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ।।३०।।
अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ।।३१।।
अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेऽतीताजन्मिने।
अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ।।३२।।
अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः।
त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे ।।३३।।
एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्ठोत्तरं नाम्नां सहस्त्रं पापशान्तये।।३४।।

इति पीठिका

प्रसिद्धाष्टसहस्त्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नामष्टसहस्त्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये ।।१।।
श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ।।२।।
विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः।।३।।

विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः।।४।।
विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।
विश्वदृग्विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः।।५।।

जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशोजगत्पतिः।
अनन्तचिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः ।।६।।
युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः शिवः ।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ।।७।।
स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः।।८।।
प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद्ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ।।६।।
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः।
सिद्धः सिद्धान्तविद्ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः।।१०।।
सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः।।११।।
विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः ।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ।।१२।।

इति श्रीमदादिशतम्।।१।।

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः ।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ।।१।।
श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः।।२।।
अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः।।३।।
निरंजनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिरनामयः।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः।।४।।
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत्।।५।।
वृषध्वजो वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभाङ्को वृषोद्भवः ।।६।।

हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः ।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः।।७।।
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः ।
स्वयंप्रभः प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्पतिः ।।८।।
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित् ।।९।।
सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः ।
विश्रुतो विश्वतः पादो विश्वशीर्षः शुचिश्रवाः।।१०।।
सहस्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ।।११।।

इति दिव्यादिशतम्।।२।।

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः पृष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः।।१।।
विश्वभृद्विश्वसृड् विश्वेड् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः।।२।।
विभवो विभयो वीरो विशोको विजरो जरन्।
विरागो विरतोऽसङ्गो विविक्तो वीतमत्सरः।।३।।
विनेयजनताबन्धुर्विलीनाशेषकल्मषः ।
वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः।।४।।
क्षान्तिभाक्पृथिवीमूर्तिः शान्तिभाक् सलिलात्मकः।
वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ।।५।।
सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सुत्रामपूजितः।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञाङ्गममृतं हविः।।६।।
व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ।।७।।
मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तगः ।
स्वतन्त्रस्तन्त्रकृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत्।।८।।

कृती कृतार्थः सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युंजयोऽमृत्युरमृतात्मऽमृतोद्भवः ।।६।।
ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः ।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेड् महाब्रह्मपदेश्वरः ।।१०।।
सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः ।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ।।११।।

इति स्थविष्ठादिशतम् ।।३।।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्त्रष्टा पद्मविष्टरः।
पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ।।१।।
पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ।।२।।
गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः।।३।।
गुणाकरो गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ।।४।।
अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः।।५।।
पापपेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः।
निर्द्वन्द्वो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः ।।६।।
निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निरास्रवः ।।७।।
विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत्सुनयतत्त्ववित् ।।८।।
एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः यतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः ।।६।।
पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
ज्ञाता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ।।१०।।

कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः ।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ।।११।।

इति महाशोकध्वजादिशतम्।।४।।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः ।।१।।
सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः।
बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्द्धमानो महर्द्धिकः ।।२।।
वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः ।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ।।३।।
अनादिनिधनोऽ व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः।
युगादिकृद्‌युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ।।४।।
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियोऽ धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्रार्च्यो महेन्द्रमहितो महान् ।।५।।
उद्‌भवः कारणं कर्त्ता पारगोभवतारकः।
अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यः परमेश्वरः ।।६।।
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिरचिंत्यर्द्धिः समग्रधीः ।
प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्र्योऽग्रिमोऽग्रजः ।।७।।
महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः ।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ।।८।।
महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः ।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ।।९।।
महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महादयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ।।१०।।
महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ।।११।।
महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपंचकः ।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ।।१२।।

इति श्रीवक्षादिशतम्।।५।।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ।।१।।
महाव्रतपतिर्मह्यो महाकान्तिधरोऽधिपः।
महामैत्री महामेयो महोपायो महोमयः ।।२।।
महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायतिः।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ।।३।।
महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ।।४।।
महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ।।५।।
महाभवाब्धिसन्तारि महामोहाद्रिसूदनः ।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ।।६।।
महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः।
महाकर्मारिहाऽऽत्मज्ञो महादेवो महेषिताः।।७।।
सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ।।८।।
सर्वयोगीश्वरोऽचिंत्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ।।९।।
प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः ।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ।।१०।।
प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ।।११।।
आनन्दो नन्दनो नन्दो वंद्योऽनिंद्योऽभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिंजयः।।१२।।

इति महामुन्यादिशतम्।।६।।

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वै कृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः ।।१।।

अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः ।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः ।।२।।
जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः ।।३।।
नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ।।४।।
सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ।।५।।
क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी ।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः ।।६।।
सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः ।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ।।७।।
सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसंधानः सत्यः सत्यपरायणः ।।८।।
स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः ।
अणोरणीयननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ।।९।।
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ।।१०।।
सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ।।११।।

इति असंस्कृतादिशतम् ।।७।।

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः ।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ।।१।।
नैकरूपो नयोतुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ।।२।।
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः ।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ।।३।।

लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढ़ीयानिन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञाङ्गो धीरो गम्भीरशासनः।।४।।
धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः।।५।।
अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः।।६।।
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः।।७।।
वश्येन्द्रियो वियुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मंगलं मलहाऽनघः।।८।।
अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक्।।९।।
अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक्।।१०।।
शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः।।११।।
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः।
त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः।।१२।।

इति बृहदादिशतम्।।८।।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढ़व्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः।।१।।
पुराणः पुरुषः पूर्वः कृतपूर्वाङ्गविस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता।।२।।
युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः।।३।।
कल्याणप्रकृतिर्दीप्तकल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः।।४।।

देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः ।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वङ्गो जगदग्रजः ।।५।।
चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः ।
सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ।।६।।
आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः ।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ।।७।।
तपनीयनिभस्तुङ्गो बालर्काभोऽनलप्रभः ।
संध्याभ्रवभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ।।८।।
निष्टप्तकनकच्छायः कनत्कांचनसन्निभः ।
हिरण्यवर्णः स्वार्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ।।६।।
द्युम्नाभो जातरूपाभस्तप्तजाम्बूनदद्युतिः ।
सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ।।१०।।
शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ।।११।।
शान्तिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कांतिमान्कामितप्रदः ।।१२।।
श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः ।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ।।१३।।

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ।।६।।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किञ्चनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ।।१।।

तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिमूर्तिस्तमोऽपहः ।।२।।
जगच्चूड़ामणिर्दीप्तः शंवान्विघ्नविनायकः ।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकॉलोकप्रकाशकः ।।३।।
अनिद्रालुरतंद्रालुर्जागरूकः प्रभामयः ।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ।।४।।

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः ।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः ।।५।।
मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रयसोक्तिर्निरुक्तवाक् ।।६।।
प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित्।
सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ।।७।।
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयङ्करः।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः।।८।।
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः ।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ।।९।।
प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः ।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ।।१०।।
समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठशुशुक्षणिः ।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ।।११।।
अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः ।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः ।।१२।।
समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः ।
सूक्ष्मदर्शी जितानङ्गः कृपालुर्धर्मदेशकः ।।१३।।
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः ।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः ।।१४।।

इति दिग्वासादिशतम् ।।१०।।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ।।१।।
गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत् ।।२।।
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ।।३।।

त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यङ्गः स्वोत्थानन्तचतुष्टयः ।।४।।
त्वं पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याणनायकः ।
षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ।।५।।
दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः ।
दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वरः ।।६।।
युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया ।
भवन्तं परिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ।।७।।
इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः।
यः संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम्।।८।।
ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः।
पौरुहूर्ती श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ।।६।।
स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम् ।
ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम् ।।१०।।
स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखं ।।११।।

(शार्दूलविक्रीड़ित छन्द)

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्,
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित्।
यो नेतृन् नयते नमन्कृतिमलं नन्तव्यपक्षेक्षणः।
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः ।।१२।।
तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तर-,
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जनीनामिनम्।
मानस्तंभविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं,
प्राप्ताचिन्त्यवहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे ।।१३।।

इति श्रीजिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् (भगवज्जिनसेनाचार्य प्रणीतम्)

तत्त्वार्थसूत्रम्

(गृद्धपिच्छोपलक्षितमुमास्वामिविरचितम्)

त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं नव-पद-सहितं जीव-षट् काय-लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः।।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवन - महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्धधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः।।
सिद्धे जयप्पसिद्धे चउविहाराहणाफलं पत्ते।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो।।
उज्झोवणमुज्झवणं णिव्वाहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसण-णाण-चरित्तं तवाणमाराहणा भणिया।।
मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये।।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।।१।। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।२।। तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।३।। जीवाजीवास्रव- बन्ध - संवर - निर्जरा - मोक्षास्तत्त्वम् ।।४।। नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः ।।५।। प्रमाण-नयैरधिगमः।।६।। निर्देश-स्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थितिविधानतः।।७।। सत्संख्या-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ।।८।। मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानि ज्ञानम् ।।६।। तत्प्रमाणे ।।१०।। आद्ये परोक्षम् ।।११।। प्रत्यक्षमन्यत् ।।१२।। मतिःस्मृतिःसंज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।।१३।। तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।।१४।। अवग्रहेहाऽवाय- धारणाः ।।१५।। बहु-बहुविध-क्षिप्राऽनिःसृताऽनुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ।।१६।। अर्थस्य ।।१७।। व्यञ्जनस्यावग्रहः ।।१८।। न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ।।१६।। श्रुतं मतिपूर्वं द्वयनेक-द्वादश-भेदम् ।।२०।। भवप्रत्ययोऽवधिदेवनारकाणाम् ।।२१।। क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ।।२२।। ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः ।।२३।। विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः ।।२४।। विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनःपर्यययोः।।२५।। मति-श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु ।।२६।। रूपिष्ववधेः ।।२७।। तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ।।२८।।

सर्व-द्रव्य-पर्यायेषु केवलस्य ।।२६।। एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना-चतुर्भ्यः ।।३०।। मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ।।३१।। सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्।।३२।। नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जुसूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूता नयाः ।।३३।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे-मोक्षशास्त्रे प्रथमोध्यायः।।१।।

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ।।१।। द्वि-नवाष्टादशैकविंशति-त्रिभेदा यथाक्रमम्।।२।।सम्यक्त्व-चारित्रे ।।३।। ज्ञान-दर्शन-दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्याणि च।।४।। ज्ञानाज्ञान-दर्शन-लब्ध यश्चतुस्त्रित्रि-पञ्च-भेदा-सम्यक्त्व-चारित्र-संयमासंयमाश्च ।।५।। गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध-लेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैक-षड्भेदाः ।।६।। जीव-भव्या-भव्यत्वानि च।।७।। उपयोगो लक्षणम् ।।८।। स द्विविधोऽष्ट-चतुर्भेदः ।।६।। संसारिणो मुक्ताश्च ।।१०।। समनस्कामनस्काः ।।११।। संसारिणस्त्रस-स्थावराः ।।१२।। पृथिव्यप्तेजो-वायु-वनस्पतयः स्थावराः ।।१३।। द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः ।।१४।। पञ्चेन्द्रियाणि ।।१५।। द्विविधानि।।१६।। निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ।।१७।। लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।।१८।। स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षुःश्रोत्राणि ।।१६।।स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्दास्तदर्थाः ।।२०।। श्रुतमनिन्द्रियस्य ।।२१।। वनस्पत्यन्तानामेकम् ।।२२।। कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैक-वृद्धानि ।।२३।। संज्ञिनः समनस्काः ।।२४।। विग्रहगतौ कर्मयोगः ।।२५।। अनुश्रेणि गतिः ।।२६।। अविग्रहा जीवस्य ।।२७।। विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः।।२८।। एकसमयाऽविग्रहा ।।२६।। एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः ।।३०।। सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म ।।३१।। सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः ।।३२।। जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः।।३३।। देव-नारकाणामुपपादः ।।३४।। शेषाणां सम्मूर्च्छनम् ।।३५।। औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस-कार्मणानि-शरीराणि ।।३६।। परं परं सूक्ष्मम् ।।३७।। प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात् ।।३८।। अनन्तगुणे परे ।।३६।। अप्रतीघाते ।।४०।। अनादि-सम्बन्धे च ।।४१।। सर्वस्य ।।४२।। तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।४३।। निरुपभोगमन्त्यम् ।।४४।। गर्भ-सम्मूर्च्छनजमाद्यम् ।।४५।। औपपादिकं वैक्रियिकम् ।।४६।। लब्धिप्रत्ययञ्च ।।४७।। तैजसमपि ।।४८।। शुभं

विशुद्धमव्याघाति-चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव ।।४६।। नारक-संमूर्च्छिनो नपुंसकानि ।।५०।। न देवाः ।।५१।। शेषास्त्रिवेदाः ।।५२।। औपपादिक-चरमोत्तमदेहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।।५३।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः।।२।।

रत्न-शर्करा-बालुका-पंक-धूम-तमो-महातमःप्रभा-भूमयो घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः ।।१।। तासुत्रिंशत्पञ्चविंशति-पञ्चदश-दश-त्रि-पंचोनैक-नरक शतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्।।२।। नारका नित्याशुभतर-लेश्या-परिणाम-देह-वेदना-विक्रियाः।।३।। परस्परोदीरितदुखाः ।।४।। संक्लिष्टाऽसुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः ।।५।। तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परास्थितिः।।६।। जम्बूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः।।७।। द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्व-पूर्व-परिक्षेपिणो वलयाकृतयः ।।८।। तन्मध्ये मेरु-नाभि-र्वृत्तो योजन-शतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः।।६।। भरतहैमवत-हरि-विदेह-रम्यक-हैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ।।१०।। तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ।।११।। हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य-रजत-हेममयाः ।।१२।। मणि-विचित्र-पार्श्वा उपरिमूले च तुल्य-विस्ताराः ।।१३।। पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केशरि-महापुण्डरीक-पुंडरीका ह्रदास्तेषामुपरि ।।१४।। प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्धविष्कम्भो ह्रदः।।१५।। दश योजनावगाहः।।१६।। तन्मध्ये योजनं पुष्करम् ।।१७।। तद्द्विगुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च ।।१८।। तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री- धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक-परिषत्काः ।।१६।। गंगा-सिन्धु-रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता सीतोदा-नारी-नरकान्ता-सुवर्ण-रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः ।।२०।। द्वयोर्द्वयोःपूर्वाः पूर्वगाः ।।२१।। शेषास्त्वपरगाः।।२२।। चतुर्दश-नदी-सहस्र-परिवृता गंगा-सिन्ध्वादयो नद्यः।।२३।। भरतः षड्विंशति-पञ्च-योजन-शत-विस्तारः षट् चैकोनविंशतिभागा योजनस्य ।।२४।। तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः।।२५।। उत्तरा दक्षिण-तुल्याः ।।२६।। भरतैरावतयोर्वृद्धि-ह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यपसर्पिणीभ्याम् ।।२७।। ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः।।२८।। एक-द्वि-त्रि-पल्योपमस्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक-दैवकुरवकाः ।।२६।। तथोत्तराः ।।३०।।

विदेहेषु-संख्येय-कालाः।।३१।। भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति-शत-भागः ।।३२।। द्विर्धातकीखण्डे ।।३३।। पुष्करार्द्धे च ।।३४।। प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः।।३५।। आर्या म्लेच्छाश्च ।।३६।। भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यंः ।।३७।। नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।।३८।। तिर्यग्योनिजानां च ।।३६।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।।३।।

देवाश्चतुर्णिकायाः ।।१।।आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।।२।। दशाष्ट-पञ्च-द्वादश-विकल्पाः कल्पोपपन्न-पर्यन्ताः ।।३।। इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश-पारिषदात्मरक्ष-लोकपालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य-किल्विषिकाश्चैकशः ।।४।। त्रायस्त्रिंश-लोकपाल-वर्ज्या व्यन्तर-ज्योतिष्काः ।।५।। पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।।६।। कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।।७।। शेषाः स्पर्श-रूप-शब्द-मनः प्रवीचाराः ।।८।। परेऽप्रवीचाराः ।।६।। भवनवासिनोऽसुरनाग-विद्युत्सुपर्णाग्नि-वातस्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः।।१०।। व्यन्तरा किन्नर-किंपुरुष-महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः।।११।। ज्योतिष्काः सूर्या-चन्द्रमसौ ग्रह-नक्षत्र-प्रकीर्णक-तारकाश्च।।१२।। मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ।।१३।।तत्कृतः काल-विभागः ।।१४।। बहिरवस्थिताः।।१५।। वैमानिकाः।।१६।। कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।।१७।। उपर्युपरि ।।१८।। सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ-शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्तजयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ।।१६।। स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रियावधि-विषयतोऽधिकाः ।।२०।। गतिशरीर-परिग्रहाऽभिमानतो हीनाः ।।२१।। पीत-पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु ।।२२।। प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः।।२३।। ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः ।।२४।। सारस्वतादित्यवह्नयरुण- गर्दतोय- तुषिताव्याबाधारिष्टाश्च।।२५।। विजयादिषु द्विचरमाः ।।२६।। औपपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः ।।२७।। स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीपशेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्द्ध-हीनमिताः।।२८।। सौधर्मैशानयोः सागरोपमेऽधिके ।।२६।। सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः सप्त ।।३०।। त्रि-सप्तनवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु ।।३१।।आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च ।।३२।। अपरा

पल्योपमधिकम्।।३३।। परतः परतः पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा।।३४।। नारकाणां च द्वितीयादिषु।।३५।। दशवर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम् ।।३६।। भवनेषु च ।।३७।। व्यन्तराणां च ।।३८।। परा पल्योपममधिकम् ।।३६।। ज्योतिष्काणां च ।।४०।। तदष्टभागोऽपरा ।।४१।। लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ।।४२।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः।।४।।

अजीवकाया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः ।।१।। द्रव्याणि।।२।। जीवाश्च ।।३।। नित्यावस्थितान्यरूपाणि ।।४।। रूपिणः पुद्गलाः ।।५।। आ आकाशादेकद्रव्याणि ।।६।। निष्क्रियाणि च।।७।। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम् ।।८।। आकाशस्यानन्ताः ।।६।। संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ।।१०।। नाणोः ।।११।। लोकाकाशेऽवगाहः ।।१२।। धर्माधर्मयोः कृत्स्ने ।।१३।। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्।।१४।। असंख्येयभागादिषु जीवानाम्।।१५।। प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत्।।१६।। गति-स्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः ।।१७।। आकाशस्यावगाहः।।१८।। शरीर-वाङ्-मनः-प्राणापानाः पुद्गलानाम् ।।१६।। सुख-दुःख- जीवितमरणोपग्रहाश्च ।।२०।। परस्परोपग्रहो जीवानाम् ।।२१।। वर्तना-परिणाम-क्रिया-परत्वापरत्वे च कालस्य।।२२।। स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णवन्तः पुद्गलाः।।२३।। शब्द-बन्ध-सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छाया-तपोद्योतवन्तश्च।।२४।। अणवः स्कन्धाश्च ।।२५।। भेद-संघातेभ्य उत्पद्यन्ते ।।२६।। भेदादणुः।।२७।। भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः ।।२८।। सद् द्रव्यलक्षणम् ।।२६।। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।।३०।। तद्भावाव्ययं नित्यम्।।३१।। अर्पितानर्पितसिद्धेः ।।३२।। स्निग्ध-रूक्षत्वाद्-बन्धः।।३३।। न जघन्य-गुणानाम् ।।३४।। गुणसाम्ये सदृशानाम्।।३५।। द्व्यधिकादिगुणानां तु ।।३६।। बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च ।।३७।। गुण-पर्ययवद् द्रव्यम्।।३८।। कालश्च ।।३६।। सोऽनन्तसमयः ।।४०।। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।।४१।। तद्भावः परिणामः ।।४२।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।।५।।

काय-वाङ्-मनः कर्मयोगः ।।१।। स आस्रवः।।२।। शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य।।३।। सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः ।।४।। इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पञ्च-चतुः पञ्च-पञ्चविंशति-संख्या पूर्वस्य भेदाः

।।५।। तीव्र-मन्द-ज्ञाताज्ञात-भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः ।।६।। अधिकरणं जीवाजीवाः।।७।। आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भयोग कृत-कारितानुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः।।८।। निवर्तना-निक्षेप-संयोग-निसर्गा द्वि-चतुर्द्वि-त्रिभेदाःपरम् ।।६।। तत्प्रदोष-निह्नव-मात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञान-दर्शनावरणयोः ।।१०।। दुःख-शोक-तापाक्रन्दन-वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थानान्यसद्वेद्यस्य ।।११।। भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सरागसंयमादि-योगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ।।१२।। केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ।।१३।। कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य ।।१४।। बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।१५।। माया तैर्यग्योनस्य।।१६।। अल्पारम्भ-परिग्रहत्वं मानुषस्य ।।१७।। स्वभाव-मार्दवं च।।१८।। निःशील-व्रतत्वं च सर्वेषाम्।।१६।। सरागसंयम-सयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य ।।२०।। सम्यक्त्वं च ।।२१।। योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।।२२।। तद्विपरीतं शुभस्य ।।२३।।दर्शनविशुद्धिर्विनय-सम्पन्नता-शील-व्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्याग-तपसी साधुसमाधिर्वैय्यावृत्य-करणमर्हदाचार्य- बहुश्रुत-प्रवचन-भक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावनाप्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थंकरत्वस्य ।।२४।। परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।।२५।। तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।।२६।। विघ्नकरणमन्तरायस्य ।।२७।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः।।६।।

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।।१।। देशसर्वतोणुमहती।।२।। तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च-पञ्च ।।३।। वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपण-समित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ।।४।। क्रोध- लोभ-भीरुत्व-हास्य-प्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ।।५।। शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सद्धर्माविसंवादा-पञ्च ।।६।। स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहरांग निरीक्षणपूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरस-स्वशरीरसंस्कार-त्यागाः पञ्च ।।७।। मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषय-राग-द्वेष वर्जनानि पञ्च।।८।। हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम् ।।६।। दुःखमेव वा ।।१०।। मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाविनयेषु ।।११।। जगत्काय-स्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम् ।।१२।। प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ।।१३।। असदभि

धानमनृतम्।।१४।। अदत्तादानं स्तेयम्।।१५।। मैथुनमब्रह्म।।१६।। मूर्च्छा
परिग्रहः।।१७।। निःशल्यो व्रती।।१८।। अगार्यनगारश्च ।।१९।।
अणुव्रतोऽगारी ।।२०।। दिग्देशानर्थदण्डविरति-सामायिक-व्रतसम्पन्नश्च
।।२१।। मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता।।२२।।
शंका-कांक्षा-विचिकित्सान्यदृष्टि-प्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः।।२३।।
व्रत-शीलेषु पञ्च-पञ्च यथाक्रमम्।।२४।। बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपान-
निरोधाः ।।२५।। मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान- कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-
साकारमन्त्रभेदाः।।२६।। स्तेनप्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-
हीनाधिकमानोन्मान-प्रतिरूपक व्यवहाराः।।२७।। परविवाहकरणेत्वरिका-
परिगृहीतापरिगृहीतागमनानंगक्रीड़ाकामतीव्राभिनिवेशाः।।२८।।
क्षेत्रवास्तु-हिरण्यसुवर्ण-धन-धान्य-दासीदास-कुप्यप्रमाणातिक्रमाः ।।२९।।
ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम-क्षेत्रवृद्धि- स्मृत्यंतराधानानि ।।३०।। आनयन-प्रेष्य
प्रयोग-शब्द-रूपानुपात- पुद्गलक्षेपाः।।३१।। कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्या-
धिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ।।३२।। योग-दुःप्रणिधानानादर-
स्मृत्यनुपस्थानानि।।३३।अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादान- संस्तरोपक्रमणा
नादरस्मृत्यनुपस्थानानि।।३४।। सचित्तसंबंध-सम्मिश्राभिषव-दुःपक्वाहाराः
।।३५।। सचित्तनिक्षेपापिधान-परव्यपदेश- मात्सर्य्यकालातिक्रमाः ।।३६।।
जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग- सुखानुबन्ध-निदानानि ।।३७।। अनुग्रहार्थं
स्वस्यातिसर्गो दानम्।।३८।। विधि-द्रव्य-दातृ- पात्र- विशेषात्तद्विशेषः ।।३९।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।।७।।

मिथ्यादर्शनाविरति-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ।।१।। सकषायत्वाज्जीवः
कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः।।२।। प्रकृति-स्थित्यनुभाग- प्रदेशास्त
द्विधयः ।।३।। आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-
गोत्रान्तरायाः।।४।। पञ्च-नव-द्वयष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद् द्वि-पञ्च भेदा
यथाक्रमम् ।।५।। मति-श्रुतावधि-मनःपर्यय-केवलानाम् ।।६।। चक्षुरचक्षुर
वधिकेवलानां निद्रा- निद्रानिद्रा-प्रचला-प्रचलाप्रचला- स्त्यानगृद्धयश्च।।७।।
सदसद्वेद्ये ।।८।। दर्शन-चारित्र-मोहनीयाकषाय- कषायवेदनीयाख्यास्त्रि
द्वि-नव-षोडशभेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय-कषायौहास्यरत्यरति-
शोक-भय- जुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक- वेदाः अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-

प्रत्याख्यान-संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध- मान-माया-लोभाः ।।६।। नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ।।१०।। गति-जाति- शरीरांगोपांग- निर्माण-बन्धन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णानुपूर्व्यगुरुलघूपघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस- सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म- पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशःकीर्ति- सेतराणि तीर्थकरत्वं च ।।११।। उच्चैर्नीचैश्च ।।१२।। दान-लाभ- भोगोपभोग-वीर्याणाम् ।।१३।। आदितस्तिसृणामंतरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम- कोटीकोट्यः परास्थितिः।।१४।। सप्ततिर्मोहनीयस्य।।१५।। विंशतिर्नाम- गोत्रयोः ।।१६।। त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः ।।१७।। अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ।।१८।। नाम-गोत्रयोरष्टौ ।।१६।। शेषाणामन्तर्मुहूर्ताः ।।२०।। विपाकोऽनुभवः ।।२१।। स यथानाम ।।२२।। ततश्च निर्जरा ।।२३।। नाम-प्रत्ययाः सर्वतोयोग-विशेषात्-सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाह-स्थिताःसर्वात्म- प्रदेशेष्वनन्तानन्त-प्रदेशाः ।।२४।। सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम् ।।२५।। अतोऽन्यत्पापम् ।।२६।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः।।८।।

आस्रव-निरोधःसंवरः।।१।। स गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा-परीषहजय- चारित्रैः ।।२।। तपसा निर्जरा च ।।३।। सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः ।।४।। ईर्या-भाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः।।५।। उत्तमक्षमा-मार्दवार्जव- शौच-सत्य-संयम- तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि धर्मः।।६।। अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रव-संवर-निर्जरा-लोक-बोधिदुर्लभधर्म-स्वाख्याततत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः ।।७।। मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।।८।। क्षुत्पिपासा-शीतोष्णदंशमशक-नाग्न्यारति-स्त्री-चर्या-निषद्या-शय्याक्रोश-वध-याचनालाभ-रोग-तृणस्पर्श-मल-सत्कारपुरस्कार-प्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानि।।६।।सूक्ष्मसाम्पराय-छद्मस्थ-वीतरागयोश्चतुर्दश ।।१०।। एकादश जिने ।।११।। वादरसाम्पराये सर्वे।।१२।। ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ।।१३।। दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ।।१४।। चारित्रमोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्या-क्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः।।१५।। वेदनीये शेषाः।।१६।। एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतिः।।१७।। सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमिति

चारित्रम् ।।१८।। अनशनावमौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः ।।१९।। प्रायश्चित्त-विनय वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ।।२०।। नवचतुर्दश-पञ्च द्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ।।२१।। आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक-व्युत्सर्ग- तपश्छेद परिहारोपस्थापनाः ।।२२।। ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः ।।२३।। आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्यग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम् ।।२४।। वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।।२५।। बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।।२६।। उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधोध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ।।२७।। आर्त्त-रौद्र-धर्म्य-शुक्लानि ।।२८।। परे मोक्षहेतू ।।२९।। आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः ।।३०।। विपरीतं मनोज्ञस्य ।।३१।। वेदनायाश्च ।।३२।। निदानं च ।।३३।। तदविरत-देशविरत-प्रमत्तसंयतानाम् ।।३४।। हिंसानृत-स्तेय-विषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः ।।३५।। आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ।।३६।। शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ।।३७।। परे केवलिनः ।।३८।। पृथक्त्वैकत्ववितर्क-सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रियानिवर्तीनि ।।३९।। त्र्येकयोग-काययोगायोगानाम् ।।४०।। एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ।।४१।। अवीचारं द्वितीयम् ।।४२।। वितर्कः श्रुतम् ।।४३।। वीचारोऽर्थव्यञ्जन- योगसंक्रान्ति ।।४४।। सम्यग्दृष्टि- श्रावक-विरतानन्तवियोजक-दर्शनमोह- क्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ।।४५।। पुलाक-वकुश-कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातकाः निर्ग्रन्थाः ।।४६।। संयम-श्रुत-प्रतिसेवना-तीर्थ-लिंग-लेश्योपपाद-स्थानविकल्पतः साध्याः ।।४७।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ।।९।।

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ।।१।। बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म-विप्रमोक्षो मोक्षः ।।२।। औपशमिकादि-भव्यत्वानां च ।।३।। अन्यत्र केवलसम्यक्त्व-ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः ।।४।। तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात् ।।५।। पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ।।६।। आविद्धकुलालचक्रवद्-व्यपगतलेपालांबुवदेरण्डबीजवदग्नि-शिखावच्च ।।७।। धर्मास्तिकायाभावात् ।।८।। क्षेत्र-काल-गति-लिंग-तीर्थ-चारित्र प्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनान्तर- संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।।९।।

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अक्षर-मात्र पद-स्वर हीनं, व्यञ्जन-सन्धि-विवर्जित-रेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं, को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे।।१।।
दशाध्याये परिच्छिन्ने, तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य, भाषितं मुनिपुंगवैः।।२।।
तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं, गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्रसंजातमुमास्वामिमुनीश्वरम्।।३।।
पढमे चउक्के जीवं पंचमे जाणि पुग्गलं तच्च।
छह सत्तमे हि आस्सव अट्ठमे बंधणायव्या।।४।।
णवमे संवर णिज्जर दहमे मोक्खं वियाणे हि।
इह सत्त तच्च भणियं दह सुत्तेण मुणिं देहिं।।५।।
जं सक्कइ तं कीरइ जं पुण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं।।६।।
तवयरणं वयधरणं, संजमसरणं च जीवदयाकरणम्।
अन्ते समाहिमरणं, चउविहदुक्खं णिवारेई।।७।।
अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवयं सिरसा।।८।।
गुरवः पान्तु वो नित्यं ज्ञान-दर्शन-नायकाः।
चारित्रार्णवगंभीराः मोक्षमोर्गोपदेशकः।।६।।
कोटिशतं द्वादशं चैव कोट्यो लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यामेतद् श्रुतं पंचपदं नमामि।।१०।।

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम-तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तम्।

भक्तामर स्तोत्र (भाषा)

(अनुवादक-श्री पं. हेमराज जी)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।
धरम-धुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार।।

सुर-नत-मुकुट रतन छवि करैं, अंतर पाप-तिमिर सब हरैं।
जिनपद वंदों मन वच काय, भव-जल-पतित उधरन-सहाय।।१।।
श्रुत-पारग इंद्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव।
शब्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनों गुन-माल।।२।।
विबुधवंद्य पदमैं मतिहीन, हो निलज्ज थुति-मनसा कीन।
जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै, शशिमंडल बालक ही चहै।।३।।
गुन-समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुरगुरु पावै पार।
प्रलय-पवन-उद्धतजल-जन्तु, जलधि तिरै को भुज बलवन्तु।।४।।
सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्तिभाव-वश कछुनहिं डरूँ।
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेतु, मृगपति सन्मुख जाय अचेत ।।५।।
मैं शठ सुधी हँसन को धाम, मुझ तव भक्ति बुलावै राम।
ज्यों पिक अम्ब कली परभाव, मधु-ऋतु मधुर करै आराव ।।६।।
तुम जस जंपत जन छिनमाहिं, जनम जनम के पाप नशाहिं।
ज्यों रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत नील निशा-तम -जाल।।७।।
तब प्रभावतैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मन-हार।
ज्यों जल-कमल पत्रपै परै, मुक्ताफल की द्युति विस्तरै ।।८।।
तुम गुन-महिमा हत-दुख-दोष, सो तो दूर रहो सुख-पोष।
पाप-विनाशक है तुम नाम, कमल-विकासी ज्यों रवि-धाम ।।६।।
नहिं अचंभ जो होहिं तुरन्त, तुमसे तुम गुण वरणत सन्त।
जो अधीन को आप समान, करैं न सो निंदित धनवान।।१०।।

इकटक जन तुमको अविलोय, अवर-विषैं रति करैं न सोय।
को करि क्षीर-जलधि जल पान, क्षीर नीर पीवैं मतिमान ।।११।।
प्रभु तुम वीतराग गुणलीन, जिन परमाणु देह तुम कीन।
हैं तितने ही ते परमाणु, यातैं तुम सम रूप न आनु।।१२।।
कहँ तुम मुख अनुपम अविकार, सुरनर-नाग-नयन-मनहार।
कहाँ चन्द्र-मंडल-सकलंक, दिन में ढाक-पत्र सम रंक ।।१३।।
पूरन चन्द्र-ज्योति छविवंत, तुम गुन तीन जगत लंघंत।
एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार ।।१४।।
जो सुर-तिय विभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ।
अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु-शिखर डगमगै न धीर।।१५।।
धूमरहित बाती गत नेह, परकाशै त्रिभुवन-घर एह।
बात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम बलो अखंड ।।१६।।
छिपहु न लुपहु राहुकी छाँहि, जग परकाशक हो छिनमांहि
घन अनवर्त दाह विनिवार, रवितैं अधिक धरो गुणसार ।।१७।।
सदा उदित विदलित मनमोह, विघटित मेघ राहु अविरोह।
तुम मुख-कमल अपूरव चन्द, जगत-विकाशी जोति अमंद ।।१८।।
निश दिन शशि रवि को नहिं काम, तुम मुख-चन्द हरै तम-धाम।
जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तैं कौनहु काज ।।१६।।
जो सुबोध सोहै तुम माहिं, हरि हर आदिक में सो नाहिं।
जो द्युति महा-रतन में होय, काँच-खंड पावै नहिं सोय ।।२०।।

नाराच छन्द

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया।
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया।
कछू न तोहि देखके जहाँ तुही विशेखिया।
मनोग चित्त-चोर और भूल हूँ न पेखिया ।।२१।।

अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं।
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं।।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै।
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ।।२२।।

पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो।
कहें मुनीश अंधकार-नाश को सुभान हो।।
महंत तोहि जानके न होय वश्य काल के।
न और मोहि मोखपंथ देय तोहि टाल के।।२३।।

अनन्त नित्य चित्तकी अगम्य रम्य आदि हो।
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो।।
महेश कामकेतु योग ईश योग ज्ञान हो।
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ।।२४।।

तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धि के प्रमानतैं।
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रये विधानतैं।।
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं।
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचारतैं ।।२५।।

नमो करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो।
नमो करूँ सुभूरि-भूमि-लोक के सिंगार हो।।
नमो करूँ भवाब्धि-नीर-राशि-शोष-हेतु हो।
नमो करूँ महेश तोहि मोखपंथ देतु हो ।।२६।।

तुम जिन पूरन गुन-गन भरे, दोष गर्वकरि तुम परिहरे।
और देव-गण आश्रंय पाय, स्वप्न न देखें तुम फिर आय।।२७।।

तरु अशोक तर किरन उदार, तुम तन शोभित है अविकार।
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत, दिनकर दिपै तिमिर निहनंत।।२८।।

सिंहासनमणि-किरण-विचित्र, तापर कंचन-वरन पवित्र।
तुम तन शोभित किरन विथार, ज्यों उदयाचल रवि तम-हार ।।२६।।

कुंद-पुहुप-सित-चमरढुरंत, कनकवरन तुम तन शोभंत।
ज्यों सुमेरु-तट निर्मल कांति, झरना झरै नीर उमगांति।।३०।।

ऊँचे रहैं सूर दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपै अगोप।
तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती-झालरसों छवि लहैं ।।३१।।

दुंदुभि-शब्द गहर गंभीर, चहुँ दिशि होय तुम्हारे धीर।
त्रिभुवन-जन शिव-संगम करै, मानूं जय जय रव उच्चरै ।।३२।।

मंद पवन गंधोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पुहुप-सुवृष्ट।
देव करैं विकसित दल सार, मानों द्विज-पंकति अवतार।।३३।।

तुम तन भामंडल जिनचन्द, सब दुतिवंत करत हैं मन्द।
कोटि शंख रवि तेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करे अछाय।।३४।।

स्वर्ग-मोख-मारग-संकेत, परम-धरम उपदेशन हेत।
दिव्य वचन तुम खिरें अगाध, सब भाषा-गर्भित हित साध।।३५।।

विकसित-सुवरन-कमल दुति, नख-दुति मिलि चमकाहिं।
तुम पद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ।।३६।।

ऐसी महिमा तुम विषैं, और धरै नहिं कोय।
सूरज में जो जोत है, नहिं तारा-गण होय ।।३७।।

षट्पद

मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि-कुल झंकारे।
तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं।।
काल-वरन विकराल, कालवत सनमुख आवै।
ऐरावत सो प्रबल सकल जन भय उपजावै।।
देखि गयंद न भय करै तुम पद-महिमा लीन।
विपति-रहित संपति-सहित वरतैं भक्त अदीन ।।३८।।

अति मद-मत्त गयंद कुंभ-थल नखन विदारै।
मोती रक्त समेत डारि भूतल सिंगारै।।
बांकी दाढ़ विशाल वदन में रसना लोलै।
भीम भयानक रूप देख जन थरहर डोलै।।
ऐसे मृग-पति पग-तलैं जो नर आयो होय।
शरण गये तुम चरण की बाधा करै न सोय ।।३६।।

प्रलय-पवनकर उठी आग जो तास पटंतर।
बमैं फुलिंग शिखा उतंग पर जलैं निरंतर।।
जगत समस्त निगल्ल भस्म कर हैगी मानों।
तड़तड़ाट दव-अनल जोर चहूँ-दिशा उठानों।।
सो इक छिन में उपशमैं नाम-नीर तुम लेत।
होय सरोवर परिनमैं विकसित कमल समेत।।४०।।

कोकिल-कंठ-समान श्याम-तन क्रोध जलन्ता।
रक्त-नयन फुंकार मार विष-कण उगलंता।।
फण को ऊँचा करे बेग ही सम्मुख धाया।
तब जन होय निःशंक देख फणपति को आया।
जो चांपै निज पगतलैं व्यापै विष न लगार।
नाग-दमनि तुम नामकी है जिनके आधार ।।४१।।

जिस रनमाहिं भयानक रव कर रहे तुरंगम।
घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि जंगम।।
अति कोलाहल माहिं बात जहँ नाहिं सुनीजै।
राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै।।
नाथ तिहारे नामतैं सो छिनमांहि पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं अन्धकार विनशाय ।।४२।।

मारै जहाँ गयंद कुंभ हथियार विदारै।
उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारै।।
होय तिरन असमर्थ महाजोधा बलपूरे।
तिस रन में जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे।।
दुर्जय अरिकुल जीतके जय पावौ निकलंक।
तुम पद पंकज मन वसैं ते नर सदा निशंक ।।४३।।

नक्र चक्र मगरादि मच्छकरि भय उपजावै।
जामैं बड़वा अग्नि दाहते नीर जलावै।।
पार न पावैं जास थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अतिगंभीर, लहरकी गिनति न ताकी।।
सुखसों तिरैं समुद्रको, जे तुम गुन सुमराहिं।
लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहिं।।४४।।

महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं।
बात पित्त कफ कुष्ट, आदि जो रोग गहै हैं।।
सोचत रहैं उदास, नाहिं जीवन की आशा।
अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गन्ध निवासा।।
तुम पद-पंकज-धूल को, जो लावैं निज अंग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग ।।४५।।

पाँव कंठते जकर बांध, साँकल अति भारी।
गाढ़ी बेड़ी पैर मांहि, जिन जाँघ बिदारी।।
भूख प्यास चिंता शरीर दुख जे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय भूप के बंदीखाने।।
तुम सुमरत स्वयमेव ही बंधन सब खुल जाहिं।
छिनमें ते संपति लहैं, चिंता भय विनसाहिं ।।४६।।

महामत्त गजराज और मृगराज दवानल।
फणपति रण परचंड नीरनिधि रोग महाबल।।
बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै।
तुम सुमरत छिनमाहिं अभय थानक परकाशै।।
इस अपार संसार में शरन नाहिं प्रभु कोय।
यातैं तुम पदभक्त को भक्ति सहाई होय ।।४७।।

यह गुनमाल विशाल नाथ तुम गुनन सँवारी।
विविधवर्णमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति विथारी।।
जे नर पहिरें कंठ भावना मनमें भावैं।
मानतुंग ते निजाधीन शिवलक्ष्मी पावैं।।
भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत।
जे नर पढ़ै सुभावसों, ते पावैं शिवखेत ।।४८।।

आचार्य मानतुंग ने भगवान् वृषभदेव की भक्ति में ४८ छन्दबद्ध भक्तामर स्तोत्र की रचना की थी, फलस्वरूप उनके समस्त बन्धन खुल गये थे। जिनेन्द्र भक्ति करने से विघ्नों के समूह, शाकिनी, भूत, प्रेत एवं मानव कृत समस्त उपसर्ग विनष्ट हो जाते हैं। कभी किसी प्रकार का भय नहीं रहता है। अतः श्री मानतुंगाचार्य के समान एकनिष्ठ होकर जिनेन्द्र भक्ति/स्तुति नित्य प्रति करना चाहिए, जिससे भव-बाधाएं पास न आ सकें।

स्वयंभूस्तोत्र (भाषा)

राजविषैं जुगलनि सुख कियो, राज त्याग भवि शिवपद लियो।
स्वयम्बोध स्वयम्भू भगवान, बन्दौं आदिनाथ गुणखान ।।१।।
इन्द्र क्षीर-सागर-जल- लाय, मेरु न्हवाये गाय बजाय।
मदन-विनाशक सुख करतार, बन्दौं अजित अजित-पदकार ।।२।।
शुकल ध्यानकरि करम विनाशि, घाति अघाति सकल दुखराशि।
लह्यो मुकतिपद सुख अविकार बन्दौं सम्भव भव-दुःख टार ।।३।।
माता पश्चिम रयन मँझार, सुपने सोलह देखे सार।
भूप पूछि फल सुनि हरषाय, बन्दौं अभिनन्दन मन लाय ।।४।।
सब कुवादवादी सरदार, जीते स्याद्‌वाद-धुनि धार।
जैन-धरम-परकाशक स्वामि, सुमतिदेव-पद करहुँ प्रणाम ।।५।।
गर्भ अगाऊ धनपति आय, करी नगर-शोभा अधिकाय।
बरसे रतन पंचदश मास, नमों पद्‌मप्रभु सुखकी रास ।।६।।
इन्द्र फणीन्द्र नरिन्द्र त्रिकाल, बानी सुनि सुनि होहिं खुशाल।
द्वादश सभा ज्ञान-दातार, नमों सुपारसनाथ निहार ।।७।।
सुगुण छियालिस हैं तुम मांहि, दोष अठारह कोऊ नाहिं।
मोह-महातम-नाशक दीप, नमों चन्द्रप्रभ राख समीप ।।८।।
द्वादशविध तप करम विनाश, तेरह विध चारित्र परकाश।
निज अनिच्छ भवि इच्छक दान, बन्दौं पुष्पदन्त मन आन ।।६।।
भवि-सुखदाय सुरगतैं आय, दशविधि धरम कह्यो जिनराय।
आप समान सबनि सुख देह, बन्दौं शीतल धर्म-सनेह ।।१०।।
समता-सुधा कोप-विष-नाश, द्वादशांग वाणी परकाश।
चार संघ आनंद-दातार, नमों श्रेयांस जिनेश्वर सार ।।११।।
रतनत्रय शिव मुकुट विशाल, शोभै कण्ठ सुगुन मनि-माल।
मुक्ति-नार-भर्त्ता भगवान्, वासुपूज्य बन्दौं धर ध्यान ।।१२।।

परम समाधि-स्वरूप जिनेश, ज्ञानी ध्यानी हित-उपदेश।
कर्मनाशि शिव-सुख-विलसन्त, बन्दौं विमलनाथ भगवन्त ।।१३।।
अन्तर बाहिर परिग्रह डारि, परम दिगम्बर-व्रतको धारि।।
सर्व जीव-हित राह दिखाय, नमों अनन्त वचन मन लाय ।।१४।।
सात तत्त्व पंचास्तिकाय, नव पदार्थ छह द्रव्य बताय।
लोक अलोक सकल परकास, बन्दौं धर्मनाथ अविनाश ।।१५।।
पंचम चक्रवर्ति निधि भोग, कामदेव द्वादशम मनोग।
शान्तिकरन सोलम जिनराय, शान्तिनाथ बन्दौं हरषाय ।।१६।।
बहु थुति करे हरष नहिं होय, निन्दे दोष गहैं नहिं कोय।
शीलवान् परब्रह्मस्वरूप, बन्दौं कुन्थुनाथ शिव-भूप ।।१७।।
द्वादश गण पूंजैं सुखदाय, थुति बन्दना करैं अधिकाय।
जाकी निज-थुति कबहुँ न होय, बन्दौं अर-जिनवर-पद दोय।।१८।।
पर-भव रत्नत्रय-अनुराग, इह भव ब्याह-समय वैराग।
बाल-ब्रह्म पूरन-व्रत धार, बन्दौं मल्लिनाथ जिनसार ।।१६।।
बिन उपदेश स्वयं वैराग, थुति लौकान्त करें पग लाग।
नमः सिद्ध कहि सब व्रत लेहि, बन्दौं मुनिसुव्रत व्रत देहि ।।२०।।
श्रावक विद्यावन्त निहार, भगति-भावसौं दियो अहार।
बरसि रतन-राशि तत्काल, बन्दौं नमिप्रभु दीन-दयाल ।।२१।।
सब जीवनकी बन्दी छोर, राग-द्वेष द्वै बन्धन तोर।
राजुल तजि शिव-तिय सों मिले, नेमिनाथ बन्दौं सुख निले।।२२।।
दैत्य कियो उपसर्ग अपार, ध्यान देखि आयो फनिधार।
गयो कमठ शठ मुख कर श्याम, नमों मेरुसम पारसस्वाम ।।२३।।
भव-सागर तैं जीव अपार धरम-पोत मैं धरे निहार।
डूबत काढ़े दया विचार, वर्द्धमान बन्दों बहुबार ।।२४।।

दोहा

चौबीसों पद-कमल-जुग, बन्दौं मन वच काय।
'द्यानत' पढ़ै सुनै सदा, सौ प्रभु क्यों न सहाय।।

श्री पार्श्वनाथ-स्तोत्र

भुजंग-प्रयात

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीशं।
शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं।।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं।
नमो देव-देवं सदा पार्श्वनाथं।।
गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै।
महा आगतैं नागतैं तू बचावै।।
महावीरतैं युद्ध में तू जितावै।
महा रोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै।।
दुखी दुःखहर्ता सुखी सुक्खकर्ता।
सदा सेवकों को महानन्द भर्ता।।
हरे यक्ष राक्षस भूतं पिशाचं।
विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं।।
दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने।
अपुत्रीन को तू भले पुत्र कीने।।
महासंकटों से निकारै विधाता।
सबै संपदा सर्व को देहि दाता।।
महाचोर को वज्र को भय निवारे।
महापौन के पुंजतैं तू उबारै।।
महाक्रोध की अग्नि को मेघ-धारा।
महालोभ-शैलेश को वज्र भारा।।
महा मोह अंधेर को ज्ञान भानं।
महा-कर्म कांतार को दो प्रधानं।।

किये नाग नागिन अधोलोक स्वामी।
हर्‌यो मान तू दैत्य को हो अकामी।।
तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनुं।
तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं।।
पशु नर्क के दुःखतैं तू छुड़ावै।
महास्वर्गतैं मुक्ति में तू बसावै।।
करै लोह को हेम पाषाण नामी।
रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी।।
करै सेव ताकी करैं देव सेवा।
सुन वै सोही लहै ज्ञान मेवा।
जपै जाप ताको नहीं पाप लागै।
धरे ध्यान ताके सबै दोष भागै।।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे।
तुम्हारी कृपा तैं सरैं काज मेरे।।

दोहा

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीति निहारकैं, कीजे आप समान।।

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

दोहा

वीतराग वन्दौं सदा, भावसहित सिरनाय।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय।।१।।

चौपाई

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौं भाव-भगति उर धार।।२।।
चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसम्मेद जिनेसुर बीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस।।३।।
वरदत्तराय रु इन्द मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, वन्दौं भावसहित कर जोड़ि।।४।।
श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
सम्बु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुद्ध आदि नमूँ तसु पाय।।५।।
रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाड़नरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरी वन्दौं निरधार।।६।।
पाण्डव तीन द्रविड़-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजयगिरि के सीस, भावसहित वन्दौं निश-दीस।।७।।
जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपन्थ शिखरसुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहूँ काल।।८।।
राम हनू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणव मुक्तिपयान, तुङ्गीगिरि वन्दौं धरि ध्यान।।९।।
नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि सीस ते वन्दौं त्रिभुवनपति ईस।।१०।।
रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास।।११।।

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश काम कुमार, ऊठकोड़ि वन्दौं भव पार।। १२।।
बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, तै वन्दौं भव-सागर-तर्ण।।१३।।
सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मँझार।
चेलना नदी-तीरके पास, मुक्ति गये वन्दौं नित तास।। १४।।
फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिमदिशा द्रोणगिरिरूप।
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गए वन्दौं नित तहाँ।।१५।।
बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्रीअष्टापद मुक्ति मँझार ते वन्दौं नित सुरत सँभार।१६।।
अचलापुर की दिश ईसान तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय तिनको चरण नमूँ चित लाय।।१७।।
वंशस्थल वनके ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करुँ प्रणाम।।१८।।
जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पांचसौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करुँजोरि जुग पान।।१६।।
समवसरण श्रीपार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दीगिरी नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज।।२०।।
मथुरापुर पवित्र उद्यान , जम्बूस्वामी जायें निर्वाण।
चरमकेवली पंचमकाल, ते वन्दौं नित दीनदयाल।।२१।।
तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजे तहाँ।
मन वच कायसहित सिरनाय, वन्दन करहिं भविक गुणगाय।।२२।।
संवत् सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
"भैया" वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुनमाल।।२३।।

श्री पार्श्वनाथ भक्ति

भक़्ति बेकरार है, आनन्द अपार है।
आजा प्रभु पारस, तेरी जय जयकार है।।
तेरी जय जयकार है, तेरी जय जयकार है।
देखो मन्दिर जी में कैसा चमत्कार है।।
मंगल आरती लेकर स्वामी, आया तेरे द्वार जी।
दर्शन देना पार्श्वप्रभु जी होवे आतमज्ञान जी।।
भक्ति बेकरार है, आनन्द अपार है।
आजा प्रभु पारस, तेरी जय जयकार है।।
चन्दा देखे सूरज देखे और देखे तारागण जी।
तुम सम ज्ञान ज्योति न देखी है पारस परमेश जी।।
भक्ति बेकरार है, आनन्द अपार है।
आजा प्रभु पारस, तेरी जय जयकार है।।
देख सभी दुनिया में देखे देश विदेश जी।
तुम सम सच्चा देव न देखा है पारस परमेश जी।।
भक्ति बेकरार है, आनन्द अपार है।
आजा प्रभु पारस, तेरी जय जयकार है।।
यह तन मेरा इक दिन चेतन मिट्टी में मिल जायेगा।
अर्पण कर प्रभु पार्श्व चरण में तो पारस बन जायेगा।
भक्ति बेकरार है, आनन्द अपार है।
आंजा प्रभु पारस, तेरी जय जयकार है।।

पार्श्वनाथ स्तुति

तुमसे लागी लगन, लेलो अपनी शरण ।
पारस प्यारा ! मेटो मेटो जी संकट हमारा।।
निश दिन तुमको जपूं पर से नेहा तजूं ।
जीवन सारा, तेरे चरणों में बीते हमारा ।। मेटो मेटो।।
अश्वसेन के राज दुलारे, वामादेवी के सुत प्राण प्यारे।
सबसे नेहा तोड़ा, जग से मुंह को मोड़ा, संयम धारा।।मेटोमेटो०।
इन्द्र और धरणेन्द्र भी आये, देवी पद्मावती मंगल गाये।
आशा·पूरो सदा, दुःख नहीं पावे कदा, सेवक थारा ।।मेटो मेटो०।
जग के दुःख की तो परवाह नहीं है, स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं है।
मेटो जामन मरण, होवे ऐसा यतन, पारस प्यारा ।।मेटो मेटो०।
लाखों बार तुम्हें शीष नवाऊँ जग के नाथ तुम्हें कैसे पाऊँ।
"पंकज" व्याकुल भया, दर्शन बिन यह जिया, लागे खारा ।मेटो मेटो०।

दौलतपद

अपनी सुधि भूल आप, आप दुःख उपायौ,
ज्यों शुक नभचाल बिसरि नलिनी लटकायो।।
चेतन अविरुद्ध शुद्ध दरशबोधमय विशुद्ध,
तजि जड़-रस परस रूप पुद्गल अपनायौ।।अपनी०।।
इन्द्रिय सुख-दुख में नित्त, पाग रागरूख में चित्र।
दायक भव विपतिवृन्द, बन्ध को बढ़ायौ।।अपनी०।।
चाहदाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहै ।
समता सुधान गाहै जिन निकट जो बतायौ।।अपनी०।।
मानुष भव सुकुल पाय जिनवर शासन लहाय।
'दौल' निजस्वभाव भज अनादि जो न ध्यायौ ।।अपनी०।।

स्तुति (अहो जगतगुरु)

(पं० भूधरदासकृत स्तुति)

अहो ! जगतगुरु, देव सुनिए अरज हमारी।
तुम हो दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी।।१।।
इस भव वनमें माहिं, काल अनादि गमायो।
भ्रमत चहुँगति माहिं, सुख नहिं, दुख बहु पायो।।२।।
कर्म महारिपु जोर, एक न काम करै जी।
मन माने दुख देहि काहू सों नाहिं डरै जी।।३।।
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नर्क दिखावै।
सुर-नर-पशुगति माहिं, बहुविधि नाच नचावै।।४।।
प्रभु ! इनके परसंग, भव भव माहिं बुरो जी।
जे दुःख देखे देव ! नाहिं दुरो जी।।५।।
एक जनम की बात, कहि न सकौं सुनि स्वामी।
तुम अनन्त परजाय, जानत अन्तरयामी।।६।।
मैं तो एक अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियसो साहिब मेरे।।७।।
ज्ञान महानिधि लूटि रंक निबल करि डार्‌यो।
इनही तुम मुझ मांहि, हे जिन ! अन्तर पर्‌यो।।८।।
पाप पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह माहिं मोहि दियो दुःख भारी।।६।।
इनको नेक बिगार, मैं कछु नाहिं कियो जी।
बिन कारन जगवंद्य ! बहुविधि बैर लियो जी।। १०।।
अब आयौ तुम पास सुनि कर सुजस तिहारो।
नीति निपुन महाराज, कीजै न्याय हमारो।।११।।
दुष्टन देहु निकार, साधुनको रख लीजै।
विनवै "भूधरदास" हे प्रभु ! ढील न कीजै।।१२।।

विनती

(बुधजनजी कृत)

प्रभु पतित पावन मैं अपावन चरण आयो शरण जी।
यों विरद आप निहार स्वामी मेट जानम मरण जी।।
तुम न पिछान्यो आन मान्यो देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो भ्रम गिन्यो हितकार जी।।
भव विकट वन में कर्म बैरी ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय अनिष्टगति धरतो फिर्‌यो।।
धन घड़ी यो धन दिवस योंही धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो दरश प्रभु को लख लयो।।
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नाशा पै धरै।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण युत कोटि रवि छवि को हरै।।
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो मनु रंक चिन्तामणि लयो।।
मैं हाथ जोड़ि नमाय मस्तक वीनऊँ तुव चरणजी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन सुनहु तारन तरनजी।।
जाचूं नहीं सुरवास पुनि नर राज परिजन साथजी।
"बुध" जाचहूँ तुम भक्ति भव भव दीजिये शिवनाथजी।।

गुरु स्तुति (ते गुरु मेरे मन वसो)

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जहाज।
आप तिरैं पर तारही, ऐसे श्री ऋषिराज।।१ टेक।।
मोह महारिपु जानिकै, छोड्यो सब घरबार।
होय दिगम्बर वन बसे, आतम शुद्ध विचार।।२।।
रोग उरग बिल वपु गिण्यो, भोग भुजंग समान।
कदली तरु संसार है, त्यागो सब यह जान।।३।।
रत्नत्रय निधि उर धरैं, अरु निरग्रन्थ त्रिकाल।
मार्‌यो काम खबीसको, स्वामी परम दयाल।।४।।
पंच महाव्रत आचरैं, पांचों समिति समेत।
तीन गुपति पालैं सदा, अजर अमर पद हेत।।५।।
धर्म धरैं दश लक्षणी, भावैं भावना सार।
सहैं परीषह बीस द्वै, चारित रतन भण्डार ।।६।।
जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर।
शैल शिखर मुनि तप तपैं, दाझै नगन शरीर।।७।।
पावस रैन डरावनी, बरसै जलधर धार।
तरुतल निवसैं साहसी, चालै झंझाधार।।८।।
शीत पड़े कपि-मद गले, दाहै सब वनराय।
ताल तरंगनिके तटै, ठाड़े ध्यान लगाय।।६।।
इह विधि दुद्धर तप तपैं, तीनों काल मंझार।
लागे सहज सरूपमें, तनसों ममत निवार।।१०।।
पूरब भोग न चिन्तवै, आगम वांछा नाहिं।
चहुँगति के दुःखसों डरै, सुरति लगी शिवमांहि।।११।।
रंग महल में पोढ़ ते, कोमल सेज बिछाय।
ते पश्चिम निशि भूमि में, सोवै संवरि काय।।१२।।
गज चढ़ि चलते गरब सों, सेना सजि चतुरंग।
निरखि निरखि पग ते धरैं, पालैं करुणा अंग।।१३।।
वे गुरु चरण जहाँ धरैं, जग में तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़ो ! 'भूधर' माँगै एह।।१४।।

आराधना पाठ

हरिगीतिका

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सुर गुरु मुनि तीन पद ये, साधु पद हिरदय धरौं।।
मैं धर्म करुणामयी चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना।।१।।
चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदिते पातक नसैं।
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी।
कैलास श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी।।२।।
नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासौं भय हरों।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव चाहूँ कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा।।३।।
सम्यक्त्व दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ , महा हर्ष उछाव सों।।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों।।४।।
मैं वेद चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों।।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना में चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ।।५।।

भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत है।।
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान सदा आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोहना।।६।।
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनहीं सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, आरम्भ मैं सब परिहरौं।।
इस दुखद पंचमकाल माहीं, व्रत श्रावक मैं लह्यो।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो।।७।
आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ "द्यानत" दया करना नाथ जी।।
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुमति चरनन दीजिये।।८।।

आत्म-कीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम।टेक।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहाँ राग-वितान।।१।।हूँ.।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति-सुख-ज्ञाननिधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान।।२।।हूँ.।
सुख-दुख-दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान।
निज को निज, पर को पर जान, फिर दुख का नहिं लेश निदान।।३।।हूँ।
जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचूँ निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम।।४।।हूँ.।
होता स्वयं जगत-परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत परिणाम, "सहजानन्द" रहूँ अभिराम।।५।।हूँ.।

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष कामादिक जीते, सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध वीर, जिन, हरि हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्तिभाव से प्रेरित हो, यह चित्त उसी में लीन रहो।।१।।
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ-त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।।२।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन ही जैसी चर्या में यह चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूँठ कभी नहिं कहा करूँ।
पर-धन वनिता पर न लुभाऊं, सन्तोषामृत पिया करूँ।।३।।
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ।।
रहै भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बनै जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।।४।।
मैत्री भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा-स्त्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर-कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवै।
साम्य-भाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावै।।५।
गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।।६।।

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे।।७।।
होकर सुख में मग्न न फूलै, दुःख में कभी न घबरावै।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहिं भय खावै।।
रहै अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावै।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, सहनशीलता दिखलावै।।८।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावै।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावै।।
घर-घर चर्चा रहै धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावे।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज-जन्म फल सब पावे।।६।।
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करै।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करै।।
रोग-मरी-दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करै।
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करै।।१०।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करै।
अप्रिय कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करै।।
बनकर सब "युग-वीर" हृदय से, देशोन्नति-रत रहा करै।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुःख-संकट सहा करें।।११।।

तप महिमा

तप तारै भव उदधि सौं टारै पाप असाधि।
धरै महासुख थल विषैं दे हैं ध्यान समाधि।।१।।
पुण्य प्रभाव नरभव मिल्यो उत्तम कुल अवतार।
तप करि शिव को साधना, तव मानुषभव सार।।२।।

बारह भावना

(भूधरदास जी कृत)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।१।।
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियाँ जीव को, कोई न राखन हार।।२।।
दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णा वश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।३।।
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेला होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।४।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय।।५।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन गेह।।६।।
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म चोर चहूँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।७।।
सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमैं।
तब कछु बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं।।८।।
ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधे भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर।।६।।
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार।।१०।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं भरमत हैं बिन ज्ञान।।११।।

धन कन कंचन राज सुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।१२।।
जाँचे सुर तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।।१३।।

बारह भावना

(श्री मंगतराय श्री कृत)

दोहा

वंदूँ श्री अरहंतपद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जगजीवन-हित जान।।१।।
कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा।
कहाँ गये वह रामअरु-लक्ष्मण, जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण रुक्मिणि सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी।।२।।
नहीं रहे वह लोभी कौरव, जूझ मरे रनमें।
गये राज तज पांडव वनको, अगिनि लगी तन में।।
मोह-नींदसे उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयालु उपदेश करैं गुरु, बारह भावन को।।३।।

१ अनित्य भावना

सूरज चाँद छिपै निकलै ऋतु, फिर फिर कर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।।
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल बहकर नहिं हटता।
श्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता।।४।।

ओस-बूंद ज्यों गलै धूपमें, वा अंजुलि पानी।
छिन छिन यौवन छीन होत है क्या समझै प्रानी।।
इंद्रजाल आकाश नगर सम जग-संपति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो सब नर अरु नारी।।५।।

२ अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को घेरा भव वन में।
नहीं बचावन-हारा कोई यों समझो मनमें।।
मंत्र यंत्र सेना धन संपति, राज पाट छूटै।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटै।।६।।
चक्ररत्न हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की विनश गई काया।।
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यूं ही उमर खोई ।।७।।

३ संसार भावना

जनम-मरन अरु जरा-रोगसे, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव भव-परिवर्तन सहता।।
छेदन भेदन नरक पशुगति, वध बंधन सहना।
राग-उदय से दुख सुरगतिमें, कहाँ सुखी रहना।।८।।
भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।।
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिलै शुभाशुभ को मेटो लेखा।।६।।

४ एकत्व भावना

जन्मैं मरै अकेला चेतन, सुख-दुख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी।।

कमला चलत न पैंड़ जाय मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुख को रोवैं, पिता पुत्र दारा।।१०।।
ज्यों मेले में पंथी जन मिल नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा पंछी आ करते।।
कोस कोई दो कोस कोई उड़ फिर थक थक हारै।
जाय अकेला हंस संगमें, कोई न पर मारै।।११।।

५ अन्यत्व भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ उठ, दौड़ैं थक थक कै।।
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता।।१२।।
तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतन तैं बिछुड़ै, ज्यों पय अरु पानी।।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेदज्ञान करना।
जौलों पौरुष थकै न तौलों उद्यमसों चलना।।१३।।

६ अशुचि भावना

तू नित पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली।।
मात-पिता-रज-बीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस हाड़ नश लहू राध की, प्रगट व्याधि घेरी।।१४।।
काना पौंड़ा पड़ा हाथ यह चूसै तो रोवै।
फलै अनंत जु धर्म ध्यान की, भूमि-विषै बोवै।।
केसर चंदन पुष्प सुगंधित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल झारी।।१५।।

७ आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी त्यों, आस्रव कर्मनको।
दर्वित जीव प्रदेश गहै जब पुद्गल भरमनको।।
भावित आस्रवभाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप पुण्यके दोनों करता, कारण बंधनको।।१६।।
पन-मिथ्यात योग-पंद्रह द्वादश-अविरत जानो।
पंचरु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।।
मोह-भावकी ममता टारै, पर परणति खोते।
करै मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानी जन होते।।१७।।

८ संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोकै संवर, क्यों नहिं मन लाता।।
पंच महाव्रत समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह भावनको।।१८।।
यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रवको खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन कहां पड़े सोते।।
भाव शुभाशुभ रहित शुद्ध-भावन-संवर भावै।
डॉट लगत यह नाव पड़ी, मंझधार पार जावै।।१६।।

६ निर्जरा भावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै कर्म, निर्जरा ह्वै सोखनहारी।।
उदय-भोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावै, पालविषैं माली।।२०।।
पहली सबके होय, नहीं कछु सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करकै, मिटै जगत फेरा।।
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी।।२१।।

१० लोक भावना

लोक अलोक आकाश माहिं थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप कर कटी भये षट् द्रव्यन सों मानो।।
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीव अरु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है।।२२।।
पापपुण्य सों जीव जगतमें, नित सुख दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै, शिर औरन के धरता।।
मोहकर्म को नाश मेंटकर सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो बासा।।२३।।

११ बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रस गति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी।।
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पंचम गुणठाना।।२४।।
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्धभाव करना।।
दुर्लभतैं दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान, नहीं फिर इस भव में आवै।।२५।।

१२ धर्म भावना

धर्म "अहिंसा परमो धर्मः" ही सच्चा जानो।
जो पर को दुख दे, सुख माने, उसे पतित मानो।।
राग द्वेष मद मोह घटा आतम रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे।।२६।।
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त तत्त्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी।।
इनका चिंतवन बार बार कर श्रद्धा उर धरना।
"मंगत" इसी जतनतैं इकदिन, भव-सागर-तरना।।२७।।

आलोचना पाठ

दोहा

वंदों पाँचो परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि-करन के काज।।

छन्द सखी

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निर्वृति काजा, तुम सरन लही जिनराजा।।
इक वे ते चउ इंद्री वा, मनरहित्त सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदय ह्वै घात विचारी।।
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित मोदन करिकै, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै।।
शत आठ जु इमि भेदनतें, अघ कीने परिछेदन तैं।
तिनकी कहुं कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी।
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने वचतैं नहिं जाय कहीने।।
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुंगति मधि दोष उपायो।।
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, पर वनिता सों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो।।
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय सेवन को।
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने।।
फल पंच उदुंबर खाये, मधु मांस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुविसयन दुखकारे।।
दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निश-दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो।।

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोड़श मुनिये।।
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम।।
निद्रावश शयनं कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय वन धायो, नाना विध-विष-फल खायो।।
आहार विहार नीहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई।।
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है।।
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन भिन अब कैसें कहिये, तुम ज्ञान विषैं सब पइये।।
हा हा ! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी।।
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो।।
हा हा ! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
तामधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनंदा।।
हा हा ! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
तामध्य जीव जु आये, ते हू परलोक सिधाये।।
बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाडू ले जागां बुहारी, चींटी आदिक जीव बिदारी।।
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई।।
जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन विच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये।।

अन्नादिक शोध कराई, तातैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारें धूप डराया।।
पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै।
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं रंच विचारी।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वाणी तैं कहिय न जाई।।
ताको जु उदय अब आयो, नाना विध मोहि सतायो।
फल भुँजत जिय दुख पावै, बचतैं कैसे करि गावैं।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।।
इक गाँवपती जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेंटहु अंतरजामी।।
द्रोपदि का चीर बढ़ायो, सीता-प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुख मेटो अंतरजामी।।
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपना बिरद सम्हारो।
सब दोष-रहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी।।
इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊं।
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निज पद दीजे।।

दोहा

दोष-रहित जिनदेवजी, निज-पद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ैं, आनंद मंगल होय।।
अनुभव माणिक पारखी, जौहरि आप जिनन्द।
येही बर मोहि दीजियें, चरण शरण आनन्द।।

सिद्धचक्र पाठ

श्री सिद्धचक्र का पाठ करो, दिन आठ, ठाठ से प्राणी,
फल पायो मैना रानी ।।टेक।।
मैना सुन्दरि इक नारी थी, कोढ़ीपति लखि दुखियारी थी।
नहिं पड़े चैन दिन रैन व्यथितअकुलानि, फल पायो मैनारानी।।१।।
जो पति का कष्ट मिटाऊंगी, तो उभय़ लोक सुख पाऊँगी।
नहिंअजागलस्तनवत् निष्फल जिन्दगानी, फल पायो मैनारानी।।२।।
एक दिवस गई जिनमन्दिर में, दर्शन करि अति हर्षी उर में।
फिर लखे साधु निर्ग्रंथ दिगम्बर ज्ञानी, फल पायौ मैना रानी।।३।।
बैठी मुनि को कर नमस्कार, निज निन्दा करती बार बार।
भरी अश्रु नयन कही मुनि सों दुखद कहानी, फल पायौ मैना रानी।।४।।
बोले मुनि पुत्री धैर्य धरो, श्री सिद्धचक्र का पाठ करो।
नहिं रहे कुष्ठ की तन में नाम निशानी, फल पायो मैनारानी।।५।।
सुन साधु वचन हर्षी मैना, नहिं होय झूठ मुनि के बैना।
करिके श्रद्धा श्री सिद्धचक्र की ठानी, फल पायो मैना रानी।।६।।
जब पर्व अठाई आया है, उत्सवयुत पाठ कराया है।
सबके तन छिड़का यन्त्र न्हवन का पानी, फल पायो मैना रानी।।७।।
गन्धोदक छिड़कत वसु दिन में, नहिं रहा कुष्ठ किंचित तन में।
भई सातशतक की काया स्वर्ण समानी, फल पायो मैना रानी।।८।।
भव भोगिभोगि योगेश भये, श्रीपाल कर्म हनि मोक्ष गये।
दूजे भव मैना पावे शिव रजधानी, फल पायौ मैना रानी।।९।।
जो पाठ करै मन वच तन से, वे छूटि जाय भव बन्धन से।
मत करो विकल्प कहा जिनवाणी, फल पायौ मैना रानी।।१०।।

ध्वजा रोहण मंत्र

रत्नत्रयात्मकतयाभिमतऽत्रदण्डे, लोकत्रयप्रकृत-बोधरूपम्।
संकल्पपूजितमिदं ध्वजमर्च्यलग्ने, स्वारोपयामि सति मंगलवाद्यघोषे।।
ओं ह्रीं णमो अरिहंताणं स्वस्ति भद्रं भवतु। सर्वलोकशान्तिर्भवतु स्वाहा।

इसके बाद वाद्यघोष पूर्वक ध्वज फहराना चाहिए और यह गीत गाना चाहिए।

जैन ध्वज गीत

प्राणि मात्र का रक्षक प्यारा, झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।टेक।।

प्रेम भाव दर्शाने वाला, शान्ति सुधा बरसाने वाला।
जग जन का हरषाने वाला, धर्म अहिंसा सब सुखकारा।।१।।
समता पाठ पढ़ाने वाला, सेवा-धर्म सिखाने वाला।
सच्चा वीर बनाने वाला, जिन मत सार जगत हितकारा।।२।।
आओ वीर सभी मिल आओ धर्म पताका यह लहराओ।
शान वह पहली फिर दिखलाओ, ऊँचा मस्तक रहे हमारा।।३।।
वीर भक्त कहलाने वाले, अपना अब कर्तव्य सँभालो।
देश धर्म की लाज रखा लो, कर दो अर्पण तन मन सारा।।४।।
इस झण्डे को शीस झुकाओ, जैनधर्म के मिल गुन गाओ।
झण्डा यह घर घर लहराओ, शिव मारग दरशावन हारा।।५।।

जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचल तैं निकसी गुरु गौतम के मुख कुण्ड ढरी है।
मोह महाचल भेद चली जग की जड़ता तप दूर करी है।।
ज्ञान पयोनिधि माँहि रली बहु भंग तरंगनि सौ उछरी है।
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति मैं अंजुरी कर शीश धरी है।
या जग मंदिर में अनिवार अज्ञान अंधेर छयौ अति भारी।
श्रीजिन की धुनि दीप शिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी।।
तो किस भांति पदारथ पांति कहाँ रहते रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं धनि हैं जिन वैन बड़े उपकारी।।

जिनवाणी स्तुति - २

मिथ्यातम नाशवे को ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा परभासवे को, भानु सी बखानी है।।
छहूं द्रव्य जानवे को वन्दे विद्यमानवे को।
स्वपर पिछानवे को परम प्रमानी है।।
अनुभौ बतायवे को जीव को जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है।
जहाँ तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।।
सुख विसतारवे को ऐसी जिनवाणी है।।
हे जिनवाणी भारती तोहि जपूं दिन रैन।
जो तोहि शरणा गहै, सो पावै सुख चैन।
जा वाणी के ज्ञान तें सूझै लोकालोक।
सो वाणी मस्तक धरुँ सदा देत हूँ धोक।

श्री जिनवाणी माँ

हे स्याद्वाद माता हम शरण लही तेरी।
करुणाकर समरस से भव भव की मिटे फेरी।टेक।

निज वैभव भूला था, माँ तुमने बताया है।।
विष विषय बताकर के सन्मार्ग दिखाया है।
शिवमार्ग चलूं मैं माँ हो स्वानुभूति तेरी।
हे स्याद्वाद माता हम शरण लही तेरी।
मिथ्यात्व कषायमयी मद मोह मिटाने को।
षट् द्रव्य धर्म सत को नय पक्ष बताने को।।
माँ आपहिं दर्पण हो पुरुषार्थ निधि मेरी।
हे स्याद्वाद माता हम शरण लही तेरी।
चहुँगति से तिराने को चारों अनुयोग मई।
रत्नत्रय नौका हो और द्वादशांग जिनगी।।
हमको भी तरना है, संसार सिन्धु फेरी।
हे स्याद्वाद माता हम शरण लही तेरी।
ऐकान्तवाद तम की, तुम ज्ञान किरण सविता।
हम स्याद्वाद मय हों पी शान्ति सुधा शुचिता।
सन्मति सुख पाने को माँ विनय भक्ति तेरी ।
करुणाकर समरस से भव भव की मिटे फेरी।
हे स्याद्वाद माता हम शरण लही तेरी।
जा बाणी के ज्ञान तैं सूझै लोकालोक।
सो वाणी मस्तक चढ़ो सदा देत हूँ धोक।।

लघु प्रतिक्रमण

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने ।
परमात्मप्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः।।

अर्थः– मैं नित्य उन परम सिद्धि को प्राप्त परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जो परमात्मपद के प्रकाशन में अग्रसर हुये हैं जिन्होंने अनेक रूपता में स्थित चिदानन्द प्रभु को सन्मार्ग के आधार स्वयं को परमात्म पद में स्थित कर जिस परमात्म पद को दर्शाया है, मुक्ति प्राप्त की है, अनेक गुणों के भण्डार हुए हैं।

हे प्रभु! मैंने अब तक पाँच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पन्द्रह योग, पच्चीस कषाय ये सत्तावन आस्रव निरन्तर किये हैं। इन्हीं के अन्तर्गत संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना तथा क्रोध, मान, माया, लोभ से १०८ प्रकार के दोषों में और नित्य ही तीन दंड, त्रिशल्य, तीन वर्ग, राजकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा, भोजनकथा में अपने को अनादि मिथ्याज्ञान मोहवश अपने को परिणमाया है और जब तक सद्बोधि की प्राप्ति नहीं हुई तब तक परिणमाता रहूँगा, ऐसी दशा में अब मैंने जिनवाणी द्वारा सत समागम से जो उपलब्धि प्राप्त की है उससे ऊपर कथित आस्रव में जो पाप लगा हो वह सब मिथ्या हो मैं पश्चाताप करता हूँ।

मैंने भूल से मिथ्यात्ववश अज्ञानी दशा में जो, इतरनिगोद सात लाख, नित्यनिगोद सात लाख, पृथ्वीकायिक सात लाख, जलकायिक सात लाख, अग्निकायिक सात लाख, वायुकायिक सात लाख, वनस्पतिकायिक दस लाख, दो इन्द्रिय की दो लाख, तीन इन्द्रिय की दो लाख, चार इन्द्रिय की दो लाख, पंचेन्द्रिय पशु की चार लाख, मनुष्यगति की चौदह लाख एवं देवगति की चार लाख, नरकगति की चार लाख कुल चौरासी लाख योनि माता पक्ष पितापक्ष एक सौ साढ़े निन्यानवे लाख कुलकोटि सूक्ष्म बादर पर्याप्त अपर्याप्त लब्धि अपर्याप्त आदि जीवों की विराधना की हो तथा इन पर राग द्वेष द्वारा जो पाप लगा हो वह सब मिथ्या होवे मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे भगवन् ! मैंने चार आर्त्तध्यान, चार रौद्रध्यान या अतिचार अनाचार किया हो तथा त्रस जीवों की विराधना की हो, सप्तव्यसन सेवन किये हों, सप्त भयों को किया हो अष्ट मूलगुण व्रत में अतिचार लगे हों, दस प्रकार का बहिरंग

परिग्रह, चौदह प्रकार का अंतरंग परिग्रह रखा हो, पन्द्रह प्रमाद के वशीभूत होकर बारह व्रतों के पाँच–पाँच अतिचार इस प्रकार साठ अतिचारों में, पानी छानने में, जिवानी यथास्थान न पहुँचाने में, जो भी पाप लगाया हो यह सब मिथ्या होवे, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे भगवन् ! मेरे रौद्र परिणाम दुश्चिन्तवन बोलने में चलने में हिलने में, सोने में करवट लेने में, मार्ग में ठहरने में, बिना देखे गमन करने में, मेरे मन वचन काय द्वारा जो पाप अनसमझ से लगा हो वह सब मिथ्या हो, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे भगवन् ! मैंने सूक्ष्म अथवा बादर कोई भी जीव पैर तले, करवट में बैठने– उठने चलने–फिरने झाडु लगाने में संरम्भ समारंभ आरम्भ के द्वारा रसोई व्यापार इत्यादि आरंभ में जीव सताये हों, भय को पहुंचाये हों, मरण को प्राप्त हुए हों, दुख को अनुभव करते हों, छेदन भेदन को मन वचन काय द्वारा जाने अनजाने में दुख को ज्ञात करते हों यह सब दोष मिथ्या हो, मैं पश्चाताप करता हूँ।

मैं सर्व जिनेन्द्रों की वन्दना करता हूँ चौबीस जिन भूत, भविष्यत, वर्तमान, बीस तीर्थंकर, सिद्धक्षेत्र, कल्याणकक्षेत्र, सिद्धक्षेत्र, अतिशयक्षेत्र, कृत्रिम–अकृत्रिम चैत्यालयों की जिनमन्दिरों की एवं समस्त जिनचैत्यालयों की वन्दना करता हूँ मैंने सर्व मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका, व्रत प्रतिमाओं में स्थित सधर्मी बन्धुओं की बिना समझे अनुभवी संसारी भव्य जीवों की जो निन्दा की हो कटुक वचन कहे हों आघात पहुँचाया हो, विनय न की हो, तथा अन्य जीवों की निन्दा, गर्हा की हो तो वह सब पाप मिथ्या हो, मैं पश्चाताप करता हूँ।

हे प्रभु ! मैंने निर्माल्य द्रव्य का उपयोग किया हो सामायिक के बत्तीस प्रकार के दोष लगाये हों जिनमन्दिर में पाँच इन्द्रियों के विषय व मन के द्वारा, विषयों में प्रवृत्ति की हो, भगवत् पूजन में जो प्रमाद किया हो, मैंने राग से द्वेष से मान से माया से खेल–तमाशे में, नाटक ग्रहों में, नृत्यगान आदि सभा सोसायटियों में, पिक्चर में गृहीत अगृहीत मिथ्यादर्शन द्वारा जो कर्म नोकर्म संगृहीत किये हों व जो भाव दूसरों के प्रति अहित के हुये हों वह सब मिथ्या हों मैं पश्चाताप करता हूँ।

मेरा समस्त जीवों के प्रति मैत्रीभाव रहे, सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करें, सब जीवों के प्रति मेरा क्षमा भाव बने, कर्मक्षय का उपाय प्रयत्न करूँ, मेरा समाधिमरण हो, चारों गतियों में मेरे भाव निर्मल रहें, यही प्रार्थना है।

मुझे निरन्तर शास्त्राभ्यास की प्राप्ति हो, सज्जन समागम का लाभ मिले, दोषों के कहने में मौन रहूँ, अपने दोषों को त्यागने व प्रायश्चित के भाव हो, परोपकार, मिष्टवचन, प्रतिज्ञायों पर दृढ़ रहूँ चारों दान के भाव बने, हे भगवन्! जब तक मेरा भव भ्रमण न छूटे आपकी शान्त मुद्रा व आपके कर्मक्षय के प्रयास, अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति का लक्ष्य आपके हितकारी वचन, वीतराग परिणति केवलज्ञान द्वारा आत्महित का मनन मुझे प्रत्येक गति मे प्राप्त हो यह अंतिम निवेदन है. मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे, शीघ्र भव पार होऊँ। यही मेरी आपसे प्रार्थना है।

।। इति लघुप्रतिक्रमण ।।

प्रभु - भक्ति

रोम रोम से निकले, प्रभु जी नाम तुम्हारा-२
ऐसा दो वरदान कि फिर ना पाऊँ जन्म दुबारा
छोड़ न पाऊँ, प्रभुजी, पाँच ठगों का डेरा,
किस विधि पाऊँ प्रभु जी आखिर दर्शन तेरा,
भटक न जाये, ये बालक प्रभुजी, देना आन सहारा,
मन से निशिदिन प्रभु जी, ज्योति जलाऊँ तेरी,
कब तक मन की होगी पूरी आशा मेरी,
इन नैनों से, तेरी ज्योति का देखूँ अजब नजारा,
कोई न खाली जाये तेरे दर से प्रभुजी,
अपनी दया का हाथ तूं, सर पर रख दे प्रभु जी,
तेरे दर पर आये हैं, पाने दीदार तुम्हारा,

सामायिक पाठ भाषा

।।प्रथम प्रतिक्रमण कर्म।।

काल अनन्त भ्रम्यो जग में सहियो दुख भारी।
जन्म-मरण नित किये पापको है अधिकारी।।
कोटि भवांतर माहिं दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक।।१।।

हे सर्वज्ञ जिनेश ! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय योग की गुप्ति बिना लभ।।
आप समीप हजूरमाहिं मै खड़ो खड़ो सब।
दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब।।२।।

क्रोध मान मद लोभ मोह माया वशि प्रानी।
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी।।
बिनां प्रयोजन एकेंद्रिय वि ति चउ पंचेंद्रिय।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय।।३।।

आपस में इकठौर थापि करि जे दुख दीने।
पेलि दिए पगतलैं दाबि करि प्राण हरीने।।
आप जगत के जीव जिते तिन सबके नायक।
अरज करूँ मैं सुनो दोष मेटो दुःखदायक ।।४।।

अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय।।
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहुँ दयानिधि।
यह पडिकोणो किये आदि षट् कर्म माहिं विधि।।५।।

।।द्वितीय प्रत्याख्यान कर्म।।

जो प्रमादवशि होय विरोधे जीव घनेरे।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढ़ेरे।।
सो सब झूठो होउ जगतपति के परसादे।
जौं प्रसाद तै मिलैं सर्व सुख दुःख न लाघै।।६।।

मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ।
किये पाप अघ ढ़ेर पापमति होय चित्त दुठ।।
निंदूँ हुं मैं बार-बार निज जियको गरहुँ।
सब विधि धर्म उपाय पाय फिर पापन करहूँ।।७।।

दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावक कुल भारी।
सत्संगति संयोग धर्म जिन श्रद्धाधारी।।
जिन वचनामृत धार समावर्तें जिनवानी।
तोहू जीव संहारे धिक् धिक् धिक् हम जानी।।८।।

इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करै तिसि विधि हिंसक ह्वै अब।।
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये निन्दूं अब मन वच तोले ।।६।।

आलोचनविधि थकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउ तुमतें जिन मेरे।।
बार बार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्ष्यादिक तें भये निंदिये जे भयभीता ।।१०।।

।।तृतीय सामायिक भाव कर्म।।

सब जीवन में मेरे समताभाव लग्यो है।
सब जिय मो सम समता राखो भाव लग्यो है।।
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक।
संयम मो कब शुद्ध होय यह भाव बधायक ।।११।।

पृथ्वी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पति।
पंचहि थावरमाहिं तथा त्रस जीव वसैं जित।।
वे इन्द्रिय तिय चउ पचेंद्रिय माहिं जीव सब।
तिन तें क्षमा कराऊँ मुझ पर क्षमा करो अब।।१२।।

इस अवसर में मेरे सब सम कंचन अरु तृण।
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण।।
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।
सामायिक का काल जितै यह भाव नवीनी।।१३।।

मेरो है इक आतम तामै ममत जु कीनो।
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो।।
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतें न्यारे जानि जथारथ रूप कर्‌यो गह।।१४।।

मैं अनादि जगजाल माहिं फँसि रूप न जाण्यो।
एकेंद्रिय द्विन्द्रिय आदि जंतु को प्राण हराण्यो।
ते सब जीव समूह सुनो मेरी यह अरजी।
भव भव को अपराध छिमा कीज्यो करि मरजी।।१५।।

।।चतुर्थ स्तवन कर्म।।

नमों ऋषभ जिनदेव अजित जिन जीत कर्म को।
संभव भवदुःखहरण करण अभिनंदन शर्म को।।
सुमति सुमति दातार तार भवसिंधु पार कर।
पद्‌मप्रभ पद्‌माभ भानि भवभीति प्रीतिधर।।१६।।

श्री सुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्ध कर।
श्रीचन्द्रप्रभ चंद्रकांति सम देहकांति धर।।
पुष्पदंत दमि दोषकोष भविपोष रोषहर।
शीतल शीतल करन हरन भव ताप दोषहर।।१७।।

श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन।।
विमल विमलमति देत अंतगत हैं अनंत जिन।
धर्मशर्म शिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन।।१८।।

कुंथुकुंथुमुख जीवपाल अरनाथजाल हर।
मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर।।
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमतसुरसंघहि नमि जिन।
नेमिनाथ जिननेमि धर्म रथमाहिं ज्ञानधन।।१६।।

पार्श्वनाथ जिन पार्श्व उपलसम मोक्षरमापति।
वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत।।
या विधि मैं जिन संघरूप चौबीस संख्यधर।
स्तवूंनमूं हूं बार बार बंदूं शिव सुखकर ।।२०।।

।।पंचम वन्दना कर्म।।

बंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सुसन्मति।
वर्द्धमान अतिवीर बंदिहूं मनवचतन कृत।।
त्रिशलातनुज महेशाधीश विद्यापति बंदूं।
बंदूं नितप्रति कनकरूप तनु पापनिकंदूं ।।२१।।

सिद्धारथनृपनंद द्वन्द दुःख दोष मिटावन।
दुरित दवानल ज्वलित ज्वाल जग जीव उधारन।।
कुण्डलपुर करि जन्म जगत जिय आनन्द कारन।
वर्ष बहत्तर आयु पाय सबही दुःख टारन ।।२२।।

सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृत जन्म मरण भय।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय।।
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन।
आप बसे शिवमाहिं ताहि बंदों मन वच तन ।।२३।।

जाके बंदन थकी दोष दुख दूरहि जावै।
जाके बंदन थकी मुक्तितिय सन्मुख आवै।।
जाके बंदन थकी वंद्य होवे सुरगन के।
ऐसे वीर जिनेश बंदिहूं क्रमयुग तिनके ।।२४।।

सामायिक षट्कर्ममांहि बंदन यह पंचम।
बंदौं वीर जिनेन्द्र इंद्रशतवंद्याद्य मम।।
जन्म मरण भय हरो, करो अघ शांति शांतिमय।
मैं अघकोष सुपोष दोष को दोष विनाशय ।।२५।।

।। षष्ठम कायोत्सर्ग कर्म।।

कायोत्सर्ग विधान करूं अंतिम सुखदाई।
काय त्यजनमय होय काय सबको दुखदाई।।
पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर में।
जिनगृह वंदन करूं हरूं भव पाप तिमिर में ।।२६।।

शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक करि धरिकैं।
आवर्तादिक क्रिया करूं मन वच मद हरिकैं।।
तीन लोक जिन भवन मांहि जिन हैं जु अकृत्रिम।
कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीपमांही बंदौ जिम ।।२७।।

आठ कोडि परि, छप्पन लाख जु सहस सत्याणूं।
चारि शतक पर असी एक जिनमदिर जाणूं।।
व्यंतर ज्योतिषि मांहि संख्यरहिते जिनमंदिर।
ते सब बंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ।।२८।।

सामायिक समनांहि और कोउ बैर मिटायक।
सामायिक सम नांहि और कोउ मैत्रीदायक।।
श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुण थानक।
यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ।।२९।।

जे भवि आतम काज करण उद्यम के धारी।
ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी।।
राग द्वेष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब।
बुध महाचन्द्र विलाय जाय जातैं कीज्यो अब।।३०।।

।। इति सामायिक पाठ समाप्तम्।।

सम्बोधन

सदा संतोष कर प्राणी, अगर सुख से रहा चाहे।
घटा दे मन की तृष्णा को, अगर अपना भला चाहे।।
आग में जिस तरह ईंधन पड़ेगा ज्योति ऊँची हो।
बढ़ा मत लोभ की तृष्णा, अगर दुःख से बचा चाहे।।
वही धनवान है जग में, लोभ जिसके नहीं मन में।
वह निर्धन रंक होता है, जो परधन को हरा चाहे।।
दुःखी रहते हैं, वह निशिदिन जो आरत ध्यान करते।
न कर लालच अगर आजाद रहने का मजा चाहे।।
बिना मांगे मिले मोती देख दुनिया में।
भीख मांगे नहीं मिलती, अगर कोई गहा चाहे।।

समाधिमरण (भाषा)

गौतम स्वामी बन्दों नामी मरण समाधि भला है
मैं कब पाऊं निश दिन ध्याऊं गाऊं वचन कला है।।
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने।
त्याग बाइस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने।।
चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै।
बनिज करै पर द्रव्य हरै नहिं छहों कर्म इमि साधै।।
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहुं दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी।।
जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़ तन की ममता टारै।
अन्त समय वैराग्य सम्हारै ध्यान समाधि विचारै।।
आग लगै अरु नाव डुबै जब धर्म विघन तब आवै।
चार प्रकार आहार त्यागि के मन्त्र सु-मन में ध्यावे।।
रोग असाध्य जरा बहु देखे कारण और निहारै।
बात बड़ी है जो बनि आवे भार भवन को टारै।।
जो न बने तो घर में रह करि सबसों होय निराला।
मात पिता सुत तिय को सौंपै निज परिग्रह इहि काला।।
कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन कुछ दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सब ही सों कहि के मन की शल्य हनेई।।
शत्रुन सों मिल निजकर जौरै मैं बहु कीनी बुराई।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने क्षमा करो सो भाई।।
धन धरती जो मुखसों मांगै सो सब दे संतोषै।
छहों काय के प्राणी ऊपर करुणा भाव विशेषै।।
ऊंच नीच घर बैठ जगह इक कुछ भोजन कुछ पै लै।
दूधाधारी क्रम क्रम तजि के छाछ अहार पहेलै।।
छाछ त्यागि के पानी राखै पानी तजि संथारा।
भूमि मांहि थिर आसन मांडै साधर्मी ढ़िग प्यारा।।

जब तुम जानो यह न जपै है तब जिनवाणी पढ़िये।
यों कहि मौन लियो संन्यासी पंच परम पद गहिये।
चार अराधन मन में ध्यावैं बारह भावन भावै।
दशलक्षण मुनि-धर्म विचारै रत्नत्रय मन ल्यावै।।
पैंतीस सोलह षट् पन चारों दुइ इक वरन विचारै।
काया तेरी दुख की ढ़ेरी ज्ञानमयी तू सारै।।
अजर अमर निज गुणसों पूरे परमानन्द सुभावे।
आनन्द कन्द चिदानन्द साहब तीन जगतपति ध्यावै।।
क्षुधा तृषादिक होय परीषह सहे भाव सम राखै।
अतीचार पांचों सब त्यागे ज्ञान सुधारस चाखैं।।
हाड मांस सब सूख जाय जब धर्मलीन तन त्यागे।
अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्ग में सेज उठे ज्यों जागे।
तहां तैं आवे शिव पद पाये विलसे सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी जैन धरम जयवन्तो।।

इष्ट प्रार्थना

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर बार हो।।टेक
धर्म का परचार हो अरु देश का उद्धार हो।
और ये बिगड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो।।१।।
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के परचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो।।२।।
शान्ति अरु आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो।।३।।
रोग अरु भय शोक होवें, दूर सब परमात्मा।
कर सकें कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा।।४।।

समाधिमरण भाषा (वृहद्)

छन्द नरेन्द्र

बन्दों श्री अरहंत परमगुरु जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुःख जो मैं भुगते सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करुँ प्रभु तुमसे कर समाधि उर मांही।
अन्त समय में यह वर मांगू सो दीजे जग राई।।१।।

भव-भव में तन धार नये मैं भवभव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृप सिद्धि लई मैं मात पिता सुत थायो।।
भव-भव में तन पुरुष-तनों धर, नारी हूं तन लीनो।
भव-भव में भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनों ।।२।।

भव-भव में सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरकतनी, दुःख पाये विधि योगे।।
भव-भव में तिर्यञ्च योनिधर, पायो दुःख अति भारी।
भव-भव में साधर्मीजनको, संग मिल्यो हितकारी ।।३।।

भव-भव में जिनपूजन कीनी, दानसुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में मैं समवसरण में, देख्यो जिनगुण भीनो।।
एती वस्तु मिली भव-भव में सम्यकगुण नहिं पायो।
ना समाधियुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो ।।४।।

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एकबार हूँ सम्यकव्रत मैं, निज आतम नहिं चीनो।।
जो निजपरको ज्ञान होय तो, मरण समय दुःख काँई।
देह विनासी मैं निजभासी, जोतिस्वरूप सदाई ।।५।।

विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछान्यो।।
यों क्लेश हियधार मरण कर, चारों गति भरमायो।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो ।।६।।

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगो।
रोगजनित पीड़ा मत होवो, अरु कषाय मत जागो।।
ये मुझ मरण समय दुःखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजै।।७।।

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै।।
अतिदुर्गन्ध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनासी, जिय अविनासी नित्यस्वरूप कहावे ।।८।।

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजे।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै।।
मृत्यु होत से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन मन तुम पावो ।।९।।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँही।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम साहू नाहीं।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेशभाव को त्याग सयाने, समताभाव धरीजै ।।१०।।

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्युमित्र विन कौन दिखावे, स्वर्गसम्पदा भाई।।
राग रोष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, परभव पन्थ सहाई ।।११।।

कर्म महादुठ बैरी मेरो, ता सेती दुःख पावै।
तन पिंजर में बन्ध कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावे।।
भूख तृषा दुःख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़ै।
मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजर सों काढ़ै ।।१२।।

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस असन कराये।।
रात दिना मैं दास होकर, सेव करी तनकेरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी ।।१३।।

मृत्युराय को शरन पाय तन, नूतन ऐसो पांऊँ।
जामें सम्यकरतन तीन लहि आठों कर्म खपाऊँ।।
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सबही हैं दुखदाई ।।१४।।

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जियको दुर्गति दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख साता।।
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो पावो संपति तेती ।।१५।।

चौ आराधन सहित प्राण तज, तो ये पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर स्वर्गमुकतिमें आवो।।
मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारै।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ।।१६।।

इस तनमें क्या राचै जियरा, दिन-दिन जीरन होहै।
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है।।
पांचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोड़ै समता उर नहिं लावै ।।१७।।

मृत्युराज उपकारी जियको तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में परयो परयो बिललावै।
पुद्गल के परमाणू मिलकैं पिण्डरूप तन भासी।
याही मूरत मैं अमूरती ज्ञान ज्योति गुणखासी ।।१८।।

रोग-शोक आदिक जो वेदन ते सब पुद्गललारैं।
मैं तो चेतन व्याधि विना नित हैं सो भाव हमारे।।
या तनसों इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बन्यो है।
खान पान दे याको पोष्यो अब सम भाव ठन्यो है ।।१६।।

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन यह तन अपना जान्यो।
इन्द्रियभोग गिने सुख मैंने आपो नाहिं पिछान्यो।।
तन विनशनतैं नाश जानि निज यह अयान सुखदाई।
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो भूल अनादी छाई ।।२०।।

अब निज भेद जथारथ समझ्यो मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजैं विनसै सो यह पुद्‌गल जान्यो याको रूपी।।
इष्टानिष्ट जेते सुख दुःख हैं सो सब पुद्‌गल सागै।
मैं जब अपनो रूप विचारो तब वे सब दुःख भागैं ।।२१।।

विन समता तन अनंत धरे मैं तिनमें ये दुःख पायो।
शस्त्र घाततैं अनन्त बार मर नाना योनि भ्रमायो।।
बार अनन्तहि अग्नि माहिं जर मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिऽनन्त बार मुझ नाना दुःख दिखायो ।।२२।।

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो देवै तन सुखदाई।।
यातैं जब लग मृत्यु न आवे तब लग जप तप कीजे।
जप तप बिन इस जगके माहीं कोई भी ना सीजे ।।२३।।

स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै तपसों कर्म नसावै।
तप ही सों शिवकामिनि पति ह्वै यासों तप चित लावै।।
अब मैं जानी समता बिन मुझ कोऊ नाहिं सहाई।
मात पिता सुत बांधत तिरिया ये सब हैं दुःखदाई।।२४।।

मृत्यु समय में मोह करें, ये तातैं आरत हो है।
आरततैं गति नीची पावै यों लख मोह तज्यो है।।
और परिग्रह जेते जग में, तिनसों प्रीति न कीजे।
परभव में ये संग न चालैं नाहक आरत कीजे ।।२५।।

जे जे वस्तु लखत हैं ते पर तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालै, ऐसो भाव विचारो।।
जो परभव में संग चलै तुझ, तिनसों प्रीत सु कीजै।
पंच पाप तज समता धारी, दान चार विध दीजै ।।२६।।

दशलक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोड़शकारण नित्य विचारो, द्वादश भावन भावो।।
चारों परवी प्रोषध कीजै, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ।।२७।।

अन्त समयमें यह शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्ष फल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई।।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उरमें समता लाकैं।
जा सेती गति चार दूर कर, बसहु मोक्षपुर जाकैं ।।२८।।

मन थिरता करकै तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
ये ही तोकों सुखकी दाता, और हितू कोउ नाहीं।।
आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गही थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ पावन, आराधन उरधारी ।।२६।।

तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाकै।
भावसहित अनुमोदे तासों, दुर्गति होय न ताकैं।।
धरू समता निज उरमें आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निशदिन जो उन मुनिवरको, ध्यान हिये विच लावै ।।३०।।

धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चाजुत पांव भख्यो दुःखकारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३१।।

धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं आतम सों हित लायो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३२।।

देखो गजमुनि के शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३३।।

सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ट वेदना व्यापी।
छिन्न भिन्न तन तासों हूवो, तब चिन्त्यो गुण आपी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३४।।

श्रेणिकसुत गंगा में डूब्यो, तब जिननाम चितारयो।
धर सलेखना परिग्रह छोड़यो, शुद्ध भाव उर धारयो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३५।।

समंतभद्रमुनिवर के डिगियो चिन्त्यौ निजगुण भाई।
तो दुःख मुनि नेक न तन में क्षुधा वेदना आई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३६।।

ललितघटादिक तीस दोय मुनि कौशांबीतट जानो।
नदी मैं मुनि बहकर मूवे सो दुःख उन नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३७।।

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा तृषा दुःख सह गाढ़ो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३८।।

श्रीदत्तमुनि को पूर्वजन्म को वैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुःख शीत तनो सो, सह्यो साध मन लाके।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।३६।।

वृषभसेन मुनि उष्ण शिलापर, ध्यान धरम मनलाई।
सूर्यधाम अरु उष्ण पवनकी, वेदना सहि अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४०।।

अभयघोषमुनि काकन्दीपुर, महावेदना पाई।
वैरी चण्ड ने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४१।।

विद्युतचर ने बहु दुःख पायो, तो भी धीर न त्यागी।
शुभभावनसों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४२।।

पुत्रचिलाती नामा मुनिको, बैरीने तन घाता।
मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण राता।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४३।।

दण्डकनामा मुनिकी भुहा, वानों कर अरि भेदी।
तापर नेक ड़िगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छोदी।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४४।।

अभिनन्दनमुनि आदि पाँचसौ, घानी पेलि जु मारे।
तो भी श्रीमुनि समताधारी, पूरबकर्म विचारे।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४५।।

चाणक्यमुनि गौघर के माहीं, मून्द अगिनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारकै, अपनो रूप सम्हाल्यो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४६।।

सातशतक मुनिवर दुःख पायो, हस्तिनापुर मैं जानो।
बलिब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४७।।

लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये।
पांचों पांडव मुनिके तनमें, तो भी नांहिं चिगाये।।
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्यु महोत्सव भारी ।।४८।।

सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोकों सुखके दाता, इन्हें सदा उर धारों ।।४६।।

यों समाधि उरमाहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद का, जोतिस्वरूपी ध्यावो।।
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामांतरके काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभके कारण साजै ।।५०।।

मातपितादिक सर्व कुटुम सब, नीके शकुन बनावै।
हलदी धनिया पुंगी अक्षत, दूब दही फल लावै।।
एक ग्राम जाने के कारण, करैं शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचौ प्यारे ।।५१।।

सर्वकुटुम जब रोवन लागै, तोहि रुलावैं सारे।
ये अपशकुन करैं सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारै।।
अब परगति को चालत बिरियाँ, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोहतनी दुःख हानो ।।५२।।

होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो।।
मोहजाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरी, यों निश्चय उर धारो ।।५३।।

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, 'सूरचन्द' शिवथान।।
पञ्च उभय नव एक नभ, सम्बत् सो सुखदाय।
आश्विन् श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मनलाय ।।५४।।

श्री पार्श्वनाथ चालीसा

शीश नवा अरिहंत को, सिद्धन करूं प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का ले सुखकारी नाम।।
सर्व साधु और सरस्वती, जिन मन्दिर सुखकार।
अहिच्छत्र और पार्श्व को, मन मन्दिर में धार।।

पार्श्वनाथ जगत हितकारी, हो स्वामी तुम व्रत के धारी।
सुर नर असुर करें तुम सेवा, तुम ही सब देवन के देवा।
तुमसे करम शत्रु भी हारा, तुम कीना जग का निस्तारा।
अश्वसेन के राजदुलारे, वामा की आँखो के तारे।
काशी जी के स्वामि कहाये, सारी परजा मौज उड़ाये।
इक दिन सब मित्रों को लेके, सैर करन को वन में पहुँचे।
हाथी पर कसकर अम्बारी, इक जंगल में गई सवारी।
एक तपस्वी देख वहां पर, उससे बोले वचन सुनाकर।
तपसी ! तुम क्यों पाप कमाये, इस लक्कड़ में जीव जलाये।
तपसी तभी कुदाल उठाया, उस लक्कड़ को चीर गिराया।
निकले नाग-नागनी कारे, मरने के थे निकट विचारे।
रहम प्रभु के दिल में आया, तभी मन्त्र नवकार सुनाया।
मर कर वो पाताल सिधाये, पद्मावति धरणेन्द्र कहाये।
तपसी मर कर देव कहाया, नाम कमठ ग्रन्थों में गाया।
एक समय श्री पारस स्वामी, राज छोड़ कर वन की ठानी।
तप करते थे ध्यान लगाये, इकदिन कमठ वहाँ पर आये।
फौरन ही प्रभु को पहिचाना, बदला लेना दिल में ठाना।
बहुत अधिक बारिश बरसाई, बादल गरजे बिजली गिराई।
बहुत अधिक पत्थर बरसाये, स्वामी तन को नहीं हिलाये।
पद्मावति धरणेन्द्र भी आये, प्रभु की सेवा में चित लाये।
पद्मावती ने फन फैलाया, उस पर स्वामी को बैठाया।

धरणेन्द्र ने फन फैलाया, प्रभु के सर पर छत्र बनाया।
कर्मनाश प्रभु ज्ञान उपाया, समोशरण देवेन्द्र रचाया।
यही जगह अहिच्छत्र कहाये, पात्रकेसरी जहाँ पर आये।
शिष्य पाँच सौ संग विद्वाना, जिनको जाने सकल जहाना।
पार्श्वनाथ का दर्शन पाया, सबने जैन धरम अपनाया।
अहिच्छत्र श्री सुन्दर नगरी, जहाँ सुखी थी परजा सगरी।
राजा श्री वसुपाल कहाये, वो इक जिनमन्दिर बनवाये।
प्रतिमा पर पालिश करवाया, फौरन इक मिस्त्री बुलवाया।
वह मिस्तरी मांस खाता था, इससे पालिश गिर जाता था।
मुनि ने उसे उपाय बताया, पारस दर्शन व्रत दिलवाया।
मिस्त्री ने व्रत पालन कीना, फौरन ही रंग चढ़ा नवीना।
गदर सतावन का किस्सा है, इक माली को यों लिक्खा है।
माली एक प्रतिमा को लेकर, झट छुप गया कुएं के अन्दर।
उस पानी का अतिशय भारी, दूर होय सारी बीमारी।
जो अहिच्छत्र हृदय से ध्याये, सो नर उत्तम पदवी पावे।
पुत्र संपदा की बढ़ती हो, पापों की इक दम घटती हो।
है तहसील आंवला भारी, स्टेशन पर मिले सवारी।
रामनगर इक ग्राम बराबर, जिसको जाने सब नर नारी।
चालीसे को 'चन्द्र' बनाये, हाथ जोड़कर शीश नवाये।

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय सुगन्ध अपार, अहिच्छत्र में आय के।।
होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो।
जिसके नहिं सन्तान, नाम वंश में चले।।

महावीर चालीसा

सिद्ध समूह नमों सदा, अरु सुमरुं अरहन्त।
निर आकुल निर्वांच्छ हो, गए लोक के अन्त।।
मगंलमय मगंल करन, वर्धमान महावीर।
तुम चिंतत चिंता मिटे, हरो सकल भव पीर।।

जय महावीर दया के सागर, जय श्री सन्मति ज्ञान उजागर।
शांत छवि मूरत अति प्यारी, वेष दिगम्बर के तुम धारी।
कोटि भानु से अति छवि छाजे, देखत तिमिर पाप सब भाजे।
महाबली अरि कर्म विदारे, जोधा मोह सुभट से मारे।
काम क्रोध तजि छोड़ी माया, क्षण में मान कषाय भगाया।
रागी नहीं नहीं तू द्वेषी, वीतराग तू हित उपदेशी।
प्रभु तुम नाम जगत में सांचा, सुमरत भागत भूत पिशाचा।
राक्षस यक्ष डाकिनी भागे, तुम चिंतत भय कोई न लागे।
महा शूल को जो तन धारे, होवे रोग असाध्य निवारे।
व्याल कराल होय फणधारी, विष को उगल क्रोध कर भारी।
महाकाल सम करै डसन्ता, निर्विष करो आप भगवन्ता।
महामत्त गज मद को झारै, भगै तुरत जब तुझे पुकारै।
फार डाढ़ सिंहादिक आवै, ताको हे प्रभु तुही भगावै।
होकर प्रबल अग्नि जो जारै, तुम प्रताप शीतलता धारै।
शस्त्र धार अरि युद्ध लड़न्ता, तुम प्रसाद हो विजय तुरन्ता।
पवन प्रचण्ड चलै झकझोरा, प्रभु तुम हरौ होय भय चोरा।
झारखण्ड गिरि अटवी मांहीं, तुम बिन शरण तहाँ कोउ नाहीं।
वज्रपात करि घन गरजावै, मूसलधार होय़ तड़कावै।
होय अपुत्र दरिद्र संताना, सुमिरत होत कुबेर समाना।
बन्दीगृह में बँधी जंजीरा, कठ सुई अनि में सकल शरीरा।
राजदण्ड करि शूल धरावै, ताहि सिंहासन तुही विठावै।

न्यायाधीश राजदरबारी, विजय करै होय कृपा तुम्हारी।
जहर हलाहल दुष्ट पियन्ता, अमृत सम प्रभु करो तुरन्ता।
चढ़ै जहर, जीवादि डसन्ता, निर्विष क्षण में आप करन्ता।
एक सहस वसु तुमरे नामा, जन्म लियो कुण्डलपुर धामा।
सिद्धारथ नृप सुत कहलाये, त्रिशला माता उदर प्रगटाये।
तुम जनमत भयो लोक अशोका, अनहद शब्द भयो तिहुँलोका।
इन्द्र ने नेत्र सहस्त्र करि देखा, गिरी सुमेर कियो अभिषेखा।
कामादिक तृष्णा संसारी, तज तुम भए बालब्रह्मचारी।
अथिर जान जग अनित बिसारी, बालपने प्रभु दीक्षा धारी।।
शांत भाव धर कर्म विनाशे, तुरतहिं केवल ज्ञान प्रकाशे।
जड़-चेतन त्रय जग के सारे, हस्त रेखवत् सम तू निहारे।
लोक-अलोक द्रव्य षट जाना, द्वादशांग का रहस्य बखाना।
पशु यज्ञों का मिटा कलेशा, दया धर्म देकर उपदेशा।।
अनेकान्त अपरिग्रह द्वारा, सर्वप्राणि समभाव प्रचारा।
पंचम काल विषै जिनराई, चांदनपुर प्रभुता प्रगटाई।।
क्षण में तोपनि बाढि-हटाई, भक्तन के तुम सदा सहाई।
मूरख नर नहिं अक्षर ज्ञाता, सुमरत पंडित होय विख्याता।।

करे पाठ चालीस दिन नित चालीसंहिं बार।
खेवै धूप सुगन्ध पढ़, श्री महावीरजी आय।।
जनम दरिद्री होय अरु जिसके नहिं सन्तान।
नाम वंश जग में चले, होय कुबेर समान।।

पूरनमल रचकर चालीसा।
हे प्रभु तोहि नवावत शीशा।।

आरती-पंच परमेष्ठी

इह विधि मंगल आरती कीजे, पंच परमपद भज सुख लीजे।
पहली आरति श्री जिनराजा, भवदधि पार उतार जिहाजा।
दूजी आरति सिद्धन केरी ,सुमिरन करत मिटे भवफेरी ।
तीजी आरति सूरिमुनिन्दा, जन्म मरण दुख दूर करिन्दा ।
चौथी आरति श्री उवझाया, दर्शन देखत पाप पलाया ।
पांचवीं आरति साधु तिहारी , कुमति विनाशन शिव अधिकारी ।
छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक वन्दों आनन्दकारी ।
सातवीं आरति श्रीजिनवाणी, द्यानत स्वर्ग मुक्ति सुखदानी ।
संध्या करके आरति कीजे, अपनों जन्म सफल कर लीजे।
जो यह आरति पढ़े पढ़ावे, सो नर मन वांछित फल पावे ।
इह विधि मंगल आरती कीजे,
पंच परमपद भज सुख लीजे।

आरती चौबीसों तीर्थंकर भगवान

करहुँ अरती आज जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे ।
तुम्हरे द्वारे स्वामी तुम्हरे द्वारे। टेक।
ऋषभ अजित संभव जिन स्वामी।
अभिनन्दन महाराज जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।करहुँ...
सुमति पदम सुपार्श्व जिन स्वामी।
चन्द्रप्रभु महाराज जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।करहुँ....
पुष्पदन्त शीतल श्रेयांसप्रभु
वासुपूज्य महाराज जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।करहुँ....
विमल अनन्त धर्म जिन स्वामी।
शान्तिनाथ महाराज जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।करहुँ...
कुन्थु अरह मल्लि जिन स्वामी
मुनिसुव्रत महाराज जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।करहुँ....
नमि नेमि पारस जिनस्वामी
वर्द्धमान महाराज जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।करहुँ....

आरती-श्री आदिनाथ

ॐ जय आदीश प्रभु स्वामी जय आदीश प्रभु
ऋषभ जिनन्दा प्यारे तिहुँ जग ईश विभो।।टेक।।
नाभिराय के लाला मरुदेवी नन्दन स्वामी,
नगर अयोध्या जन्मे, जन गण मन रंजन। ॐ जय०।
प्रजापति कहलाये जगहित कर भारी स्वामी।
जीववृत्ति सिखाई, नींव धरम डारी।।ॐ जय।
सकल विभव को त्यागा, हुए आतम ध्यानी।
लोकालोक पिछाने भये केवलज्ञानी।।ॐ जय।
गिरि कैलास पे जाके, कीना तप भारी।
करम शिखर को चूरा, बरनी शिवनारी।।
ब्रह्मा विष्णु विधाता, आदि तीर्थंकर स्वामी।
सहस आठ नामों से सुमरे सुर इन्दर।।ॐ जय।
ऋषि मुनिगण नरनारी तुमको सब ध्यावैं।
सुरचक्री पद को लेके शिव पद को पावै।।ॐ जय।।
चरण आरती करके शत शत शीश झुकाऊँ।
ऐसी मुक्ति पाऊँ प्रभु सम बन जाऊँ।। ॐ जय।।

आरती-श्री पद्मप्रभ

आरती श्री जिन पद्म तुम्हारी।
प्रगट हुये तुम अतिशय धारी।।
तिथि वैशाख पंचमी आई।
जब तुम दर्श दिये जिनराई।। आरती श्री०।।
धरन भूष के सुत कहलाये।
सुसमा मात उदर प्रगटाये।। आरती श्री०।।
कौशाम्बी भयो जन्म कल्याना।
सुरपति तांडव निरत रचाना।। आरती श्री०।।
काम क्रोध मोहादिक मारे।
मान कषाय तजे तुम सारे।।आरती श्री०।।
जग का जो अज्ञान अँधियारा।
ज्ञान भाव से किया उजियारा।।आरती श्री०।।
जो यह आरती करे करावे।
पूरन "नहि" भय रोग सतावै।। आरती श्री०।।

आरती-श्री चन्द्रप्रभ

म्हारा चन्द्रप्रभु जी की सुन्दर मूरत म्हारे मन भाई जी।
सावन सुदी दशमी तिथि आई प्रकटे त्रिभुवन राई जी।।
अलवर प्रान्त में नगर तिजारा, दरशे देहरे मांही जी।
सीता सती ने तुमको ध्याया, अग्नि में कमल रचाया जी।।
मैनासती ने तुमको ध्याया पति का कष्ट हटाया जी।
सोमा सती ने तुमको ध्याया, नाग का हार बनाया जी।।
मानतुंग मुनि तुमको ध्याया, तालों को तोड़ भगाया जी।
जो भी दुखिया दर पर आया, उसका कष्ट मिटाया जी।।

अंजन चोर ने तुमको ध्याया, सूली से अधर उठाया जी।
समोसरण में जो कोई आया, उसको पार लगाया जी।।
ठाड़ो सेवक अर्ज करे है, जामन-मरण मिटाओ जी।
नवयुवक मण्डल तुमको ध्यावे बेड़ा पार लगाओ जी।।

आरती-श्री शांतिनाथ

जय जिनवर देवा प्रभु जय जिनवर देवा।। टेक।।
शांति विधाता शिव सुखदाता शांतिनाथ देवा।।
ऐरादेवी धन्य जगत में जिस उर आन बसे।
विश्वसेन कुल नभ में मानों पूनम चन्द्र लसे।।
कृष्ण चतुदर्शी जेठ मास की आनन्द करतारी।
हस्तिनापुर में जन्म महोत्सव ठाठ रचे भारी।।
बाल्य काल की लीला अद्‌भुत सुरनर मन भाई।
न्याय नीति से राज्य कियो चिर सबको सुखदाई।
पञ्चंम चक्री काम द्वादशम सोलम तीर्थंकर।
जय पदधारी तुमही मुरारी ब्रह्मा शिव शंकर।।
भव तन भोग समझ क्षणभंगुर पुनि व्रतधार लिए।
षट् खण्ड नवनिधि रतन चतुर्दश तृणवत् छार दिये।
दुद्धर तपकर कर्म निवारे केवलज्ञान लहा।
दे उपदेश भविक जन बोधे ये उपकार महा।।
शाँतिनाथ है नाम तिहारा सब जग शांति करो।
अरज करे "शिवराम" चरण में भव आताप हरो।।

आरती-श्री पार्श्वनाथ

जय पारस देवा, प्रभु जय पारस देवा।
सुर नर मुनि जन तुम चरनन की करते नित सेवा।
पौषवदी ग्यारसि काशी में आनन्द अति भारी।
अश्वसेन घर वामा के उर लीनों अवतारी। जय पारस०।
श्याम वर्ण नव हस्त काय पग उरग लख्खन सोहे।
सुरकृत अति अनुपम पट भूषण सबका मन मोहे। जय पारस०।
जलते देखे नाग नागनी को पढ़ नवकार दिया।
हरा कमठ का मान ज्ञान का भान प्रकाश किया।जय पारस०।
मात पिता तुम स्वामी मेरे आश करूं किसकी।
तुम बिन दूजा और न कोई शरण गहूं जिसकी। जय पारस०।
तुम परमातम, तुम अध्यातम, तुम अन्तर्यामी।
स्वर्ग मोक्ष पदवी के दाता, त्रिभुवन के स्वामी। जय पारस०।
दीनबंधु दुख हरण जिनेश्वर तुम ही हो मेरे।
दो शिवपुर का वास दास यह द्वार खड़ा तेरे। जय पारस०।
विषय विकार मिटाओ मन का, अर्ज सुनो दाता।
सेवक द्वय कर जोड़ प्रभु के चरणों चित लाता। जय पारस०।
जय पारस देवा, प्रभु जय पारस देवा।
सुर नर मुनि जन तुम चरनन की करते नित सेवा।।

आरती-श्री महावीर स्वामी

ॐ जय महावीर प्रभो, स्वामी जय महावीर प्रभो।
कुण्डलपुर अवतारी, त्रिशलानन्द विभो । ॐ जय०।
सिद्धार्थ घर जन्मे, वैभव था भारी, स्वामी वैभव था भारी।
बाल ब्रह्मचारी व्रत पाल्यो, तपधारी।। ॐ जय०।।
आतमज्ञान विरागी, समदृष्टि धारी।
माया मोह विनाशक ज्ञानज्योति जारी।। ॐ जय०।।
यही विधि चांदनपुर में, अतिशय दर्शायो।
ग्वाल मनोरथ पूरयो, दूध गाय पायो।। ॐ जय०।।
प्राणदान मन्त्री को, तुमने प्रभु दीना।
मन्दिर तीन शिखर का निर्मित है कीना।। ॐ जय०।।
जयपुर नृप भी तेरे अतिशय के सेवी।
एक ग्राम तिन दीनों, सेवा हित यह भी ।।ॐ जय०।।
जो कोई तेरे दर पर इच्छा कर आवे।।
धन सुत सब कुछ पावे, संकट मिट जावै।।ॐ जय०।।
निश दिन प्रभु मन्दिर में, जगमग ज्योति जरै।
"हरि प्रसाद" चरणों में, आनन्द मोद भरे।। ॐ जय०।।

आरती - श्री बाहुबली स्वामी

श्री बाहुबली की आरती उतारो मिलके,
उतारो मिलके छवि निहारो मिलके, श्री.........
ऋषभदेव पितु मात सुनन्दा, भ्रात भरत दोऊ सूरज चन्दा,
प्रेम की वर्षा दिन रैन करते थे, चारों के चारों मिलके, श्री......
सवा पंच शत धनु की काया, जिसमें जग का तेज समाया,
बाहुबली जी की इस मोहनी मूरत पे, तन मन वारो मिलके,श्री...
शस्त्र शास्त्र विद्या परवीणा, दोउ सुत को पितु नृप कर दीना
आदीश्वर बोले मैं वन चला, पुत्रो दोउ राज सँभालो मिलके,
तुम्हीं संभालो मिलके श्री.............
चक्रवर्ती पर जय जब पायी, कर्म विजय की मन तब आयी,
नश्वर माया को पाकर भी क्या होगा, ये तनिक विचारो मिलके,श्री.
वृक्ष जान तन चढ़ गई बेलें, सर्पादिक चरणों में खेलें,
ध्यान में डूबे हैं प्रभु ध्यान में डूबे हैं, इन्हें पुकारो मिलके, श्री.....
धीर वीर बाहुबली स्वामी, पितु के पूर्व भये, शिवगामी
ऐसे त्यागी का, ऐसे महायोगी का, नाम उचारो मिलके,
श्री बाहुबली की आरती उतारो मिलके।।

संक्षिप्त सूतकपातकविधि

सूतकपातक में देव शास्त्र गुरु का पूजन प्रक्षालादिक तथा मंदिर जी के वर्तन वस्त्रादि का स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूतकपातक का समय पूर्ण होने के बाद पूजनादि करके पात्रदानादि करना चाहिये।

१. जन्म का सूतक दश दिन तक माना जाता है।

२. यदि स्त्री का गर्भपात (पांचवे छठे महीने में) हो तो जितने महीने का गर्भपात हो उतने दिन का सूतक माना जाता है।

३. प्रसूति स्त्री को ४५ दिन का सूतक होता है, कहीं–कहीं चालीस दिन का भी माना जाता है। प्रसूतिस्थान एक मास तक अशुद्ध है।

४. रजस्वला स्त्री चौथे दिन पति के भोजनादिक के लिये शुद्ध होती है, परन्तु देवपूजन, पात्रदान के लिये पांचवें छठवे दिन शुद्ध होती है। व्यभिचारिणी स्त्री के सदा ही सूतक रहता है।

५. मृत्यु का पातक तीन पीढ़ी तक १२ दिन का माना जाता है।

चौथी पीढ़ी में छह दिन का, पांचवीं–छठी पीढ़ी तक चार दिन का, सातवीं पीढ़ी में तीन, आठवीं पीढ़ी में एक दिन रात, नवमी पीढ़ी में स्नान मात्र से शुद्धता हो जाती है।

६. जन्म का सूतक तथा मृत्यु का पातक गोत्र के मनुष्य का पाँच दिन का होता है। तीन दिन के बालक की मृत्यु का एक दिन का पातक, आठ वर्ष के बालक की मृत्यु का तीन दिन तक का पातक माना जाता है। इसके आगे बारह दिन का पातक माना जाता है।

७. अपने कुल के किसी गृहत्यागी का संन्यासमरण या किसी कुटुम्बी का संग्राम में मरण हो जाय तो एक दिन का पातक माना जाता है।

८. यदि अपने कुल का कोई देशांतर में मरण को प्राप्त हो तो मरण के जितने दिन बाद खबर सुने तो शेष दिनों का ही पातक मानना चाहिये।

यदि १२ दिन पूर्ण हो गये हों तो स्नान–मात्र पातक जानो।

९. जो कोई अपने को अग्नि आदिक में जलाकर वा विष, शस्त्रादि से आत्महत्या करे तो छह महीने तक का पातक उसके परिवार को होता है। इसी प्रकार और भी विचार है, सो आदिपुराण से जानना।

जाप्य-मंत्र

३५ अक्षरों का मन्त्र-

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

१६ अक्षरों का मन्त्र-

अरहंत सिद्ध आइरिया उवज्झाया साहू

६ अक्षरों के मन्त्र-

(१) अरहन्त सिद्ध (२) अरहन्त सिसा (३) ओं नमः सिद्धेभ्यः
(४) नमोऽर्हत्सिद्धेभ्यः

५ अक्षरों का मन्त्र-

अ सि आ उ सा

४ अक्षरों के मन्त्र-

(१) अरहन्त (२) असि साहू

२ अक्षरों का मन्त्र-

ओम्

ओम् कैसे बनता है

अरहन्ता असरीरा आयरिया तह उवज्झया मुणिणो।
पढमक्खर-णिप्पण्णो ओंकारो पंच-परमेट्ठी।।

अर्थ-पांचों परमेष्ठियों के पहिले अक्षर मिलाने पर ओम् बनता है। यही नीचे बताते है:–

अरहन्त का पहला अक्षर अ

अशरीरी (सिद्ध)	.	अ	अ + अ	=	आ
आचार्य	..	आ	आ + आ	=	आ
उपाध्याय	..	उ	आ + उ	=	ओ
मुनि (साधु)	..	म्	ओ + म्	=	ओम्

इसको ओम् इस प्रकार लिखते हैं।

रत्नत्रय जाप्य मन्त्र

ओं ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रेभ्यो नमः।

दशलक्षण जाप्य मन्त्र

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमल–समुद्गताय उत्तमक्षमा–धर्मांगाय नमः अथवा ओं ह्रीं उत्तमक्षमा–धर्मांगाय नमः।

इसी प्रकार "उत्तममार्दव" आदि धर्मों का मन्त्र जानना चाहिये।

षोड़शकारण जाप्य मन्त्र

ओं ह्रीं श्री षोड़शकारणभावनाभ्यो नमः

नन्दीश्वरव्रत (आष्टाह्निक व्रत) जाप्य मन्त्र

(१) ओं ह्रीं नन्दीश्वरसंज्ञाय नमः (२) ओं ह्रीं श्रीं अष्टमहाविभूतिसंज्ञाय नमः। (३) ओं ह्रीं श्रीं त्रिलोकसारसंज्ञाय नमः। (४) ओं ह्रीं श्रीं चर्तुर्मुखसंज्ञाय नमः। (५) ओं ह्रीं श्रीं पंचमहालक्षणसंज्ञाय नमः। (६) ओं ह्रीं श्रीं स्वर्गसोपानसंज्ञांय नमः। (७) ओं ह्रीं श्रीं सिद्धचक्राय नमः। (८)ओं ह्रीं श्रीं इन्द्रध्वजसंज्ञाय नमः।

पुष्पांजलि व्रत जाप्य मन्त्र

ओं ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनालयेभ्यो नमः।

रोहिणी व्रत जाप्य मन्त्र

ओं ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः।

ऋषि-मण्डल जाप्य मन्त्र

ओं ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्रेभ्यो ह्रीं नमः।

सिद्धचक्र-विधान के समय का जाप्य मन्त्र

ओं ह्रीं अर्ह अ सि–आ–उ सा नमः

त्रैलोक्य मंडल विधान का जाप्य मंत्र।

ओं ह्रीं अर्हं अनाहत–विद्याधिपाय त्रैलोक्यनाथाय नमः सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

लघु शान्ति मंत्र

ओं ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा सर्वशान्तिं कुरुत कुरुत स्वाहा।

रविव्रत जाप्य मंत्र

ॐ ह्रीं नमो भगवते चिन्तामणि–पार्श्वनाथ सप्तफणामंडिताय श्री धरणेन्द्र–पद्मावती–सहिताय मम ऋद्धिं वृद्धिं सिद्धिं सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।

रविव्रत लघु जाप्य मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं श्री चिन्तामणिपार्श्वनाथाय नमः

मनोरथसिद्धि दायक मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः

रोगनाशक मन्त्र

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिने नमः। आरोग्य–परमैश्वर्य कुरु कुरु स्वाहा।

यह मन्त्र श्री पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा के सामने शुद्ध भाव और क्रिया पूर्वक १०८ वार जपना चाहिये।

मंगलदायक मन्त्र

ओं ह्रीं वरे सुवरे अ सि आ उ सा नमः

एकान्त में प्रतिदिन १०८ वार धूप के साथ शुद्ध भाव पूर्वक जपें।

ऐश्वर्यदायक मन्त्र

ओं ह्रीं अ सि आ उ सा नमः स्वाहा।

सूर्योदय के समय पूर्व दिशा में मुख करके प्रतिदिन १०८ वार शुद्ध भाव से जपें।

सर्वसिद्धिदायक मन्त्र

ओं ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्री वृषभनाथतीर्थंकराय नमः

समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक १०८ वार जपना चाहिए।

सर्वग्रह शान्ति मन्त्र

ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा सर्व–शान्तिं–कुरु कुरु स्वाहा। प्रातः काल जप करें।

रोग निवारक मन्त्र

ओं ह्रीं सकल–रोगहराय श्रीसन्मतिदेवाय नमः

शान्तिकारक मन्त्र

ओं ह्रीं परमशान्तिविधायक श्री शान्तिनाथाय नमः

नव ग्रहों के जाप्य

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सूर्यग्रहारिष्टनिवारक श्रीपद्मप्रभजिनेन्द्राय नमः शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।।१।। ७००० जाप्य।

ॐ ह्रीं क्रौं श्रीं क्लीं चन्द्रारिष्टनिवारक श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय नमः शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।।२।। ११००० जाप्य।

ॐ आँ क्रौं श्रीं क्लीं भौमारिष्टनिवारक श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय नमः शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।।३।। १०००० जाप्य।

ॐ आँ ह्रीं क्रौं श्रीबुधग्रहारिष्टनिवारक श्रीविमल–अनंत–धर्म–शांति–कुन्थु–अर–नमि–वर्धमान अष्ट जिनेन्द्रेभ्यो नमः शांतिं कुरुत कुरुत स्वाहा।।४।। ८००० जाप्य।

ॐ आँ क्रौं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं गुरुअरिष्टनिवारकऋषभ–अजित–संभव–अभिनन्दन– सुमति–सुपार्श्व–शीतल–श्रेयांस अष्ट जिनेन्द्रेभ्यो नमः शांतिं कुरुत कुरुत स्वाहा।।५।। १६००० जाप्य।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रीं शुक्रारिष्टनिवारक श्रीपुष्पदन्तजिनेन्द्राय नमः शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।।६।। ११००० जाप्य।

ॐ ह्रीं श्रीं क्रौं ह्रः शनिग्रहारिष्टनिवारक श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय नमः शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।।७।। २३००० जाप्य।

ॐ ह्रीं क्लीं हूं राहुग्रहारिष्टनिवारक श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय नमः शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।।८।। १८००० जाप्य।

ॐ ह्रीं क्लीं ऐं केतु–अरिष्टनिवारक श्रीमल्लिनाथ–पार्श्वनाथजिनेन्द्राभ्यां नमः शांतिं कुरुत कुरुत स्वाहा।।९।। ७००० जाप्य।

अभिषेक पूजन विधान के बाद इन जाप्यों को जपना चाहिए। फिर शांति विसर्जन करें।

रविव्रत कथा

श्रीसुखदायक पार्श्वजिनेश, सुमति सुगति दाता परमेश।
सुमिरों शारद पद अरविन्द, तिनकर व्रत प्रगटो सानन्द।।१।।
बनारस नगरी सुविशाल, प्रजापाल प्रगटो भूपाल।
मतिसागर तहाँ सेठ सुजान, ताका भूप करे सम्मान।।२।।
तासु त्रिया गुणसुन्दरि नाम, सात पुत्र ताके अभिराम।
षट् सुत भोग करें परणीत, बाल रूपगुण धर सुविनीत।।३।।
सहस्त्र कूट शोभित जिन धाम, आये यति पति खंडित काम।
सुनिमुनि आगम हर्षित भये, सर्व लोग वन्दन को गये।।४।।
प्रभु सुगम व्रत देहु बताय, जासैं रोग शोक भय जाय।
गुरुवाणी सुनिके गुणवती। सेठिन तबै जो करी वीनती।।५।।
करुणानिधि भाषैं मुनिराय, सुनो भव्य तुम चित्त लगाय।
जब आषाढ़ सुदि पक्ष विचार, तब कीजै अन्तिम रविवार।।६।।
अनशस्न अथवा लघु आहार, लवणादिक जो करे परिहार।
नवफल युत पंचामृतधार, बहु प्रकार पूजो भवहार।।७।।
उत्तम फल इक्यासी जान, नवश्रावक घर दीजे आन।
या विधि करो नव वर्ष प्रमाण, याते होय सबै कल्याणं।।८।।
अथवा एक वर्ष एक सार, कीजै रविव्रत मनहिं विचार।
सुन साहुन निज घर को गई, व्रत निन्दा करि निन्दित भई।।६।।
व्रत निन्दा से निर्धन भये, सात पुत्र अयोध्यापुर गये।
तहाँ जिनदत्त सेठ गृह रहे, पूर्व दुःकृत का फल लहे।।१०।।
मात पिता गृह दुःखित सदा, अवधि सहित मुनिपूछे तदा।
दयावन्त मुनि ऐसे कहो, व्रत निन्दा से तुम दुःख लहो।।११।।
सुन गुरु वचन बहुरि व्रत लयो, पुण्य कियो घर में धन भयो।
भविजन सुनो कथा सम्बन्ध, जहाँ रहते थे वे सब नन्द।।१२।।

एक दिवस गुणधर सुकुमार, घास ले आये गृहद्वार।
क्षुधावन्त भावज पे गयो, दन्त बिना नहीं भोजन दयो।।१३।।
बहुरि गये जहां भूलो दन्त, देखो तासेअहि लिपटन्त।
फणिपति की तहाँ विनती करो, पद्मावति प्रगटी तिहिं धरो।।१४।।
सुन्दर मणिमय पारसनाथ, प्रतिमा पञ्चरत्न शुभ हाथ।
देकर कहो कुंवर कर भोग, करो क्षणिक पूजा संयोग।।१५।।
आन बिम्ब निज घर में धरो, तिहकर तिनको दारिद हरो।
सुख विलास सेवे सब नन्द, नित प्रति पूजो पार्श्वजिनेन्द्र।।१६।।
साकेता नगरी अभिराम, जिनप्रसाद राचा शुभ धाम।
करी प्रतिष्ठा पुण्य संयोग, आये भविजन संग सो लोग।।१७।।
संघ चतुर्विध को सम्मान, कियो दियो मनवांछित दान।
देख सेठ तिनकी सम्पदा, जाय कही भूपति से तदा।।१८।।
भूपति तब पूछी वृत्तान्त, सत्य कहो गुणधर गुणवन्त।
देख सुलक्षणता को रूप, अत्यानन्द भयो सो भूप।।१६।।
भूपति गृह तनुजा सुन्दरी, गुणधर को दीनो गुण भरी।
कर विवाह मंगल सोनन्द, हय गय पुरजन परमानन्द।।२०।।
मनवांछित पाये सुखभोग, विस्मित भये सकल पुरलोग।
सुख सेर हत बहुत दिन भये, तब सब बन्धु बनारस गये।।२१।।
मात पिता के परसे पाँय, अत्यानन्द हृदय न समाय।
विघटो विषम विषम वियोग, भयो सकल पुरजन संयोग।।२२।।
आठ सात सोलह के अंक, रविव्रत कथा रची अकलंक।
थोड़े अर्थ ग्रन्थ विस्तार, कहें कविवर जोगुण सार।।२३।।
यह व्रत जो नर नारी करे, सो कबहूँ नहिं दुख में परे।
भावसहित सो शिव सुख लहैं, भानुकीर्ति मुनिवर इमि कहें।।२४।।

इति श्री रविव्रत कथा सम्पूर्ण

सुगन्ध दशमी व्रत कथा

वर्द्धमान वंदो जिनराय, गुरु गौतम वन्दो सुखदाय।
सुगन्ध दशमी व्रत की कथा, वर्द्धमान सुप्रकाशी यथा।।१।।
मगध देश राजगृहि नाम, श्रेणिक राज करे अभिराम।
नाम चेलना गृह पटरानि, चंद्ररोहिणी रूप समान।।२।।
नृप बैठो सिंहासन परे, वनमाली फल लायो हरे।
कर प्रणाम वच नृप से कहो, प्रमुदित चित से ठाड़ो रहो।।३।।
वर्द्धमान आये जिन स्वामि, जिन जीतो उद्यम अरि काम।
इतनी सुनत नृपति उठ चला, पुरजन युत दलबलसै भला।।४।।
समोशरण वन्दे भगवान, पूजा भक्ति धारी बहुमान।
नर कोठा बैठो नृप जाय, हाथ जोड़ पूछे शिर नाय।।५।।
सुगन्ध दशमी व्रत फल भाषि, तानरकी कहिये अब साखि।
गणधर कहें सुनो मगधेश, जम्बूद्वीप विजयार्द्ध प्रदेश।।६।।
शिव मन्दिरपुर उत्तर श्रेणी, विद्याधर प्रीत कर जैनी।
कमलावती नारी अतिरूप, सुरकन्या से अधिक अनूप।।७।।
सागरदत्त बसे तहाँ साह, जाके जिनव्रत में उत्साह।
धनदत्ता वनिता गृह कहि, मनोरमा ता पुत्री सही।।८।।
सुगुप्तचार्य गृह आइयो, देख मुनीन्द्र दुःख पाइयो।
कन्या मुनि की निन्दा करी, कुछ मन में नहिं शंका धरी।।६।।
नग्न गात दुर्गन्ध शरीर, प्रकट पने देही नहीं चीर।
मुख ताम्बूल हतो मुनि अंग, मानो सुख को कीनो भंग।।१०।।
भोजन अन्तराय जब भयो, मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो।
समताभाव धरै उर मांहि, किञ्चित खेद चितमें नाहिं।।११।।
बीती अंवधि समय कछु गयो, मनोरमा को काल सु भयो।
भई गधी पुनि कुकरि ग्राम, अपर ग्राम भई सूकरी नाम।।१२।।

मगध सुदेश तिलकपुर जान, विजसेन तहंका नृप मान।
चित्ररेखा ता रानी कहि, ता पुत्री दुर्गन्धा भई।।१३।।
एक समय गुरुवन्दन गयो, पूजा कर विनती को ठयो।
मों पुत्री दुर्गन्ध शरीर, कहो भवांतर गुण गम्भीर।।१४।।
राजा वचन मुनिश्वर सुने, मुनि वृत्तान्त रायले भने।
सब वृत्तान्त हालजो जान, मुनि राजा से कहो बखान।।१५।।
सुन दुर्गंधा जोड़े हाथ, मोपर कृपा करो मुनि नाथ।
ऐसा व्रत उपदेशो मोहि, यासे तनु निरोग अब होहि।।१६।।
दयावंत बोले मुनिराज, सुन पुत्री व्रत चित्त लगाय।
समता भाव चित्त में धरो, तुम सुगन्ध दशमी व्रत करो।।१७।।
यह व्रत कीजे मन वच काय, यासे रोग शोक सब जाय।
दुर्गंधा विनवे मुनिपाय, कहिये सविधि महा मुनिराय।।१८।।
ऐसे वचन सुने मुनि जबै, तब बोले पुत्री सुन अबै।
भादों शुक्ल पक्ष जब होय, दशमी दिन आराधौ सोय।।१६।।
चारों रसकी धारा देव, मन में राखो श्रीजिनदेव।
शीतलनाथ की पूजा करो, मिथ्या मोह दूर परिहरो।।२०।।
व्रत के दिन छोड़ो आरम्भ, यासे मिटे कर्म का बन्ध।
याके करत पाप क्षय जाय, सो दश वर्ष करो मन लाय।।२१।।
जब यह व्रत सम्पूर्ण होय, उद्यापन कीजे चित जोय।
दश श्रीफल अमृतफल जान, नीबू सरस सदा फल आन।।२२।।
दश दीजे पुस्तक लिखवाय, यह विधि सब मुनि दई बताय।
विधि सुन दुर्गंधा व्रत लयो, सब दुर्गंध तत्क्षण गयो।।२३।।
व्रतकर आयु को पूरण करी, दशवें स्वर्ग भई अप्सरी।
जिन चैत्यालय वंदन करे, सम्यक् भाव सदा उर धरे।।२४।।
भरतक्षेत्र महँ मग्ध सुदेश, भूति तिलकपुर बसे अशेष।
राजा महीपाल तहाँ जान, मदन मुन्दरी त्रिया बखान।।२५।।
दशवें दिव से देवी आन, ताके पुत्री भइ निदान।
मदनावती नाम धर तास, अति सुरूप तनु सकल सुवास।।२६।।

बहुत बात को करे बखान, सुर कन्या मानों उन्मान।
कौशांबीपुर मदन नरेन्द्र, रानी सती करे आनन्द।।२७।।
पुरुषोत्तम नृप सुन्दर जान, विद्यावन्त सुगुण की खान।
जो सुगन्ध मदनावलि जाय, सो पुरुषोत्तम को परनाय।।२८।।
राजा मदन सुन्दरी बाल, सुख से जात न जानो काल।
एक दिवस मुनिवर वंदियो, धर्म श्रवण मुनिवर कियो।।२९।।
हाथ जोड़ पूछे तब राय, महा मुनीन्द्र कहो समझाय।
मो गृह रानी मदनावती, ता शरीर शौरभता भली।।३०।।
कौन पुन्य से सुभग सुरुप, सुरवनिता से अधिक अनूप।
राजा वचन मुनीश्वर सुने, सब वृत्तान्त राय से भने।।३१।।
जैसे दुर्गंधा व्रत लहो, तैसी विधि नरपति से कहो।
सुने भवांतर जोड़े हाथ, दिक्षाव्रत दीजे मुनि नाथ।।३२।।
राजा ने जब दीक्षा लई, रानी तबै अर्जिका भई।
तपकर अन्त स्वर्ग को गई, सोलम स्वर्ग प्रतेन्द्र सो भई।।३३।।
बाईस सागर कालजो गयो, अन्तकालता दिवसे चयो।
भरत सुक्षेत्र मगध तँह देश, वसुधा अमर केतुपुर वेश।।३४।।
ता नृप गेह जन्म उन लहो, जो प्रतेन्द्र अच्युत दिव कहो।
कनककेतु कंचन द्युति देह, वनिता भोग करे शुभगेह।।३५।।
अमरकेतु मुनि आगम भयो, कनककेतु तहं वंदन गयो।
सुनो सुधर्म श्रवण संयोग, तजे परिग्रह अरु भव भोग।।३६।।
घाति घातिया केवल लयो, पुनि अघाति हनि शिवपुर गयो।
व्रत सुगन्ध दशमी विख्यात, ता फल भयो सुरभि युत गात।।३७।।
यह व्रत पुरुष नारि जो करे, सो दुख संकट भूल न परे।
शहर गहेली उत्तम वास, जैन धर्म को जहाँ प्रकाश।।३८।।
सब श्रावक व्रत संयम धरे, पूजा दान से पातक हरें।
उपदेशी विश्व भूषण सही, हेमराज पंडित ने कही।।३९।।
मन वच पढ़े सुने जो कोय, ताको अजर अमर पद होय।
यातें भविजन पढ़ो त्रिकाल, जो छूटे विधि के भ्रम जाल।।४०।।

श्रीसुगन्धदशमीव्रतकथा भाषा सम्पूर्णम्

भारत के प्रमुख जैन तीर्थ-क्षेत्र

{बिहार प्रान्त}

सम्मेदशिखर- पूर्वी रेलवे के पारसनाथ अथवा गिरीडीह स्टेशन से पहाड़ की तलहटी मधुवन क्रमशः १४ और १८ मील है। इस क्षेत्र से २० तीर्थंकर एवं असंख्यात मुनि मोक्ष गये हैं।

पहाड़ की चढ़ाई–उतराई तथा यात्रा करीबन १८ मील की है। पारसनाथ हिल और गिरीडीह से मोटर शिखरजी जाने के लिए मिलती है।

कोल्हुआ पहाड़-यह पहाड़ जंगल में है। गया से जाया जाता है। इसकी चढ़ाई २ मील है। इस पहाड़ पर १० वें तीर्थंकर शीतलनाथजी ने तप करके केवलज्ञान प्राप्त किया था।

गुणावा-पटना जिले के नवादा स्टेशन से डेढ़ मील। यहाँ से गौतम स्वामी मोक्ष गए हैं।

पावापुरी-बिहार प्रान्त में स्टेशन बिहारशरीफ से १२ मील। नवादा से मोटर भी जाती है। यहाँ से महावीर स्वामी कार्तिक अमावस्या को मोक्ष गए हैं।

यहाँ का जलमन्दिर दर्शनीय है। उसी में भगवान के चरणचिह्न स्थित हैं।

राजगृही-बिहार प्रान्त में स्टेशन राजागिरि कुण्ड से ४ मील अथवा बिहारशरीफ से २४ मील। यहाँ विपुलाचल, सोनागिरि, रत्नगिरि, उदयगिरि, वैभारगिरि ये पंच पहाड़ियाँ प्रसिद्ध हैं। इन पर २३ तीर्थंकरों का समवशरण आया था तथा कई मुनि मोक्ष भी गए हैं। (यह राजा श्रेणिक की राजधानी थी)।

कुण्डलपुर-राजगृही के पास नालंदा स्टेशन से ३ मील। यह भ० महावीर का जन्मस्थान है। यह महाराजा सिद्धार्थ की राजधानी था ऐसा अनेक इतिहासकार मानते हैं।

चम्पापुर-बिहार प्रान्त में भागलपुर स्टेशन। यहाँ से वासुपूज्य स्वामी मोक्ष गए हैं।

पटना-पटना सिटी में गुलजार बाग स्टेशन के पास एक छोटीसी टेकरी पर चरण पादुकाएँ स्थापित है। यहाँ से सेठसुदर्शन ने मुक्ति लाभ किया है।

{उड़ीसा प्रान्त}

खण्डगिरि-उड़ीसा प्रान्त में भुवनेश्वर स्टेशन से ४ मील पर खण्डगिरि और उदयगिरि नाम की दो पहाड़ियाँ हैं। यहीं से कलिंग देश के ५०० मुनि मोक्ष गए हैं।

(उत्तर प्रदेश}

वाराणसी-इस नगर में भदैनीघाट सातवें तीर्थंकर भगवान् सुपार्श्वनाथ का जन्म स्थान है। भेलुपुर में तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ की जन्मभूमि है। शहर में अन्य कई मन्दिर दर्शनीय हैं।

सिंहपुरी-बनारस से ७ मील। यहाँ श्रेयांसनाथ भगवान के गर्भ, जन्म, तप; ये तीन कल्याणक हुए। यहाँ बौद्धमन्दिर आदि अन्य स्थान देखने योग्य हैं।

चन्द्रपुरी-बनारस से १३ मील अथवा सारनाथ से ७ मील पर गंगा किनारे। यहाँ पर चन्द्रप्रभ भगवान् का जन्म हुआ था।

प्रयाग- यहाँ त्रिवेणी संगम के पास एक पुराना किला है। किले के भीतर जमीन के अन्दर एक अक्षय वट (बड़ का पेड़) है। शास्त्रों में लिखा है कि श्री ऋषभदेव ने यहाँ तप किया था।

अयोध्या-आदिनाथ, अजितनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, अनन्तनाथ का जन्म स्थान।

रत्नपुरी-फैजाबाद जिले में सोहावल स्टेशन से १।। मील। यहाँ पर धर्मनाथ स्वामी के चार कल्याणक हुए हैं।

श्रावस्ती-बहराइच से २६ मील। यह भ० सम्भवनाथ की पवित्र जन्मभूमि है और यहीं ४ कल्याणक हुए हैं।

कौशाम्बी-प्रयाग से ३२ मील पर फफौसा ग्राम के पास। यहाँ पर पद्मप्रभ स्वामी के चार कल्याणक हुए हैं।

कम्पिला-कानुपर कासगंज लाइन पर। कायमगंज स्टेशन से ८ मील। यहाँ विमलनाथ स्वामी के चार कल्याणक हुए हैं।

अहिच्छेत्र-बरेली अलीगढ़ लाइनपर आमला स्टेशन से ८ मील रामनगर गाँव से लगा हुआ यह क्षेत्र है। इस क्षेत्र पर तपस्या करते हुए भ० पार्श्वनाथ के ऊपर कमठ के जीव ने घोर उपसर्ग किया था और उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।

हस्तिनापुर-मेरठ से २२ मील। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप कल्याणक हुए हैं।

चौरासी-मथुरा शहर से १।। मील। यहाँ से जम्बूस्वामी मोक्ष गए हैं।,

शौरीपुर-शिकोहाबाद से १० मील वटेश्वर ग्राम हैं। यहाँ पर नेमिनाथ स्वामी के गर्भ और जन्म ये दो कल्याणक हुए हैं।

देवगढ़ -ललितपुर के निकट (जाखलौन स्टेशन से ८ मील दूरी पर) है। भ० शान्तिनाथ की १२ फीट उत्तुंग विशाल प्रतिमा, ८ मानस्तम्भ तथा कई कलापूर्ण सुन्दर प्राचीन मन्दिर हैं।

(मध्यप्रदेश बुन्देलखण्ड)

अहार-ललितपुर स्टेशन से ३६ मील टीकमगढ है। वहाँ से १२ मील से पूर्व में यह क्षेत्र स्थित है। यहाँ पर १८ फुट उत्तुंग भ० शान्तिनाथ की सर्वोत्तम प्रतिमा तथा विशाल संग्रहालय हैं।

सोनागिरि-ग्वालियर झाँसी लाइन पर सोनागिरि स्टेशनं से २ मील श्रमणांचल पर्वत है। पहाड़ पर ७७ दि० जैन मन्दिर हैं। यहाँ से नंगअनंगकुमार आदि साढ़े पाँच सौ करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

पपौरा-ललितपुर से ३६ मील और टीकमगढ़ से ३ मील है। चार ओर कोट बना है। यहाँ लगभग ६० मन्दिर हैं। कार्तिक सुदी १४ का मेला भरता है।

थूवौन-चन्देरी से आठ मील। यहां २५ मन्दिर हैं। भ० शान्तिनाथ की २० फुट उत्तुंग मूर्ति अपनी विशालता के लिए प्रसिद्ध है।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ-सेन्ट्रल रेलवे के अकोला (बरार) स्टेशन से लगभग ४० मील पर शिवपुर नाम का गाँव है। गाँव के मध्य धर्मशालाओं के बीच में एक बहुत बड़ा प्राचीन विशाल दुमंजिला जैनमन्दिर है। नीचे की मंजिल में एक श्यामवर्ण २।। फुट ऊँची पार्श्वनाथ जी की प्राचीन प्रतिमा है। जो वेदी के ऊपर अधर में विराजमान है।

खजुराहो-मध्यप्रदेश में छतरपुर में ७ मील। यह एक छोटा गाँव अवर है। ३१ दि० जैन मन्दिर हैं यहाँ के प्राचीन मन्दिरों की निर्माण कला दर्शनीय है।

द्रोणगिरि-मध्यप्रदेश में सेंधपा नामक गाँव है। निकटवर्ती स्टेशन गणेशगंज, सागर है। यहाँ से गुरुदत्तादि मुनि मोक्ष गए हैं।

नैनागिरि-सेन्ट्रल रेलवे के सागर स्टेशन से ३० मील। सागर से मोटर दलपतपुर जाती है, वहाँ से ७ मील है। यहाँ से वरदत्तादि मुनि मोक्ष गए हैं।

कुण्डलपुर-सेन्ट्रल रेलवे की कटनी–बीना लाइन पर दमोह स्टेशन से २४ मील। भ० महावीर स्वामी की मनोज्ञ मूर्ति के माहात्म्य के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ हैं। कुल ५६ मन्दिर हैं।

मुक्तागिरि-मध्यप्रान्त के एलिचपुर स्टेशन से १२ मील पहाड़ी जंगल में हैं। यहाँ से साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

मक्सी पार्श्वनाथ-सेन्ट्रल रेलवे की भोपाल–उज्जैन शाखा में इस नाम का स्टेशन है। यहाँ से १ मील पर एक प्राचीन जैन मन्दिर है। उसमें पार्श्वनाथ की बड़ी मनोज्ञ प्रतिमा है।

सिद्धवरकूट-इन्दौर से खंडवा लाइन पर मोरटक्का नामक स्टेशन से ओंकारेश्वर होते हुए अथवा सनावद से ६ मील पर है। यहाँ से दो चक्रवर्ती १० कामदेव एवं साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

बड़वानी-बड़वानी स्टेशन से ५ मील पहाड़ पर यह क्षेत्र है। यहाँ के चूलगिरि पर्वत से इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण मुनि मोक्ष गए हैं।

रामटेक-यह स्थान नागपुर से २४ मील पर है। यहां दि० जैनों के आठ मन्दिर हैं, जिनमें से एक प्राचीन मन्दिर में सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ स्वामी की १५ फीट ऊँची मनोज्ञ प्रतिमा है।

{राजस्थान}

श्री महावीर जी-पश्चिम रेलवे के नागदा मथुरा लाइन पर श्रीमहावीर स्टेशन है। यहाँ से ४ मील दूरी पर क्षेत्र है। भ० महावीर की अतिमनोज्ञ प्रतिमा पास के ही एक टीले के अन्दर से निकली थी।

चाँदखेड़ी-कोटा के निकट खानपुर नाम का एक प्राचीन नगर है। खानपुर से २ फर्लांग की दूरी पर चाँदखेड़ी नाम की पुरानी बस्ती है। यहाँ भूगर्भ में एक अति विशाल जैन मन्दिर है एवं अनेक विशाल जैन प्रतिमाएं हैं।

पद्मपुरी- स्टेशन श्योदासपुर। भ० पद्मप्रभु की अतिशय–पूर्ण भव्य और मनोज्ञ प्रतिमा के अतिशय के कारण इस क्षेत्र का पद्मपुरी नाम पड़ा है।

केशरियाजी-उदयपुर स्टेशन से ४० मील पर। यहाँ ऋषभदेव स्वामी का विशाल मन्दिर है। यहाँ भारत के सभी तीर्थों से अधिक केशर भगवान को चढ़ती है। इसी से इसका नाम केशरियाजी है।

{गुजरात तथा दक्षिण प्रान्त}

तारंगा-गुजरात में स्टेशन तारंगाहिल से ३ मील दूर पहाड़ पर यह क्षेत्र है। यहाँ से वरदत्तादि साढ़े तीन करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

गिरिनार-काठियावाड़ में जूनागढ़ स्टेशन से ४–५ मील की दूरी पर गिरिनार पर्वत की तलहटी है। पहाड़ पर ७००० सीढ़ियों का चढ़ाव है। यहाँ से नेमिनाथ स्वामी तथा ७२ करोड़, सात सौ मुनि मोक्ष गए हैं।

शत्रुंजय-पालीताना स्टेशन से २ मील पर। यहाँ से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा ८ करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

पावागढ़-बड़ौदा से २८ मील की दूरी पर यह क्षेत्र है। यहाँ से लव, कुश आदि पाँच करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

मांगीतुंगी- मनमाड़ स्टेशन से ७० मील पर घने जंगल में पहाड़ पर यह क्षेत्र है। यहाँ से रामचन्द्र, सुग्रीव, गवय, गवाक्ष, नील आदि ६६ करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

गजपन्था-नासिकरोड स्टेशन से ६ मील नसरूल ग्राम के पास। यहाँ से बलभद्र आदि आठ करोड़ मुनि मोक्ष गए हैं।

कुंथलगिरि-वार्सी टाउन रेलवे स्टेशन से २१ मील दूर पर। यहाँ देशभूषण, कुलभूषण मुनि मोक्ष गए हैं।

मूड़बिद्री- कारकल से दस मील पर यह एक अच्छा कस्बा है। यहाँ १८ मन्दिर हैं। यहाँ के मन्दिरों में हीरा, पन्ना, पुखराज, मूँगा, नीलम की मूर्तियाँ हैं।

श्रवणबेलगोला-हासन जिले के अन्तर्गत यह क्षेत्र है। हासन से मोटर जाती है। श्रवणबेलगोला में चन्द्रगिरि और विन्ध्यगिरि नाम की दो पहाड़ियाँ पास–पास हैं। पहाड़ पर ५७ फीट ऊँची बाहुबलि की प्रतिमा विराजमान है। १२ वर्ष बाद महामस्तकाभिषेक होता है।

कुलचारम--हैदराबाद से लगभग ६० किलो मीटर दूरी पर स्थित है। वहाँ अतिशय मनोरम पार्श्वनाथ भगवान की सप्तफणी खड़गासन प्रतिमा है। जो साक्षात् सम्यक्त्वोत्पत्ति का सहज निमित्त ज्ञात होती है। विशाल प्रांगण में हैदराबाद की समाज द्वारा नवीन धर्मशाला अतिथिगृह निर्मित किये गये हैं।

ज्ञान सूत्र

मोक्षमार्ग में ज्ञान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ज्ञान के अभाव में सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्चरित्र दोनों ही असम्भव हैं, इसलिये ज्ञान को दोनों के बीच स्थापित किया है। अतः जैसे भी बने हमें प्रयत्नपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर केवलज्ञान जगाने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

ज्ञान–प्राप्ति के सूत्र निम्न प्रकार हैं–

१. ज्ञान एवं ज्ञानियों की विराधना से ज्ञानावरणी कर्म का बन्ध होता है तथा ज्ञान एवं ज्ञानियों की आराधना से ज्ञानावरणी कर्म का क्षय होता है, अतः ज्ञान एवं ज्ञानियों का सदैव बहुमान करना चाहिये।

२. ज्ञानाभ्यास रुचिपूर्वक करना चाहिये।

३. ज्ञानाभ्यास में आलस्य सर्वथा त्याज्य है।

४. चारों अनुयोगों का सापेक्ष एवं उपादेय दृष्टि से स्वाध्याय यथाशक्ति करना चाहिये। किसी भी अनुयोग का हेय मानना मोक्षमार्ग में बाधा उपस्थित करना है।

५. स्वाध्याय विनयपूर्वक यथासमय करना चाहिये। अकाल समय में प्राप्त ज्ञान विवाद एवं अनुकूलता का जनक है।

६. ज्ञानगुरु का बहुमान रखते हुये प्रतिदिन ज्ञानदान यथाशक्ति अवश्य ही करना चाहिये।

७. निरन्तर चिन्तन–मनन एवं ज्ञानाभ्यास करने से ही मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्यय ज्ञान की पूर्णता तथा केवलज्ञान की जागृति सम्भव है।

८. प्रतिदिन ज्ञानदान में अपनी आय का कुछ न कुछ अंश आवश्यक रूप से देते हुये सम्यग्ज्ञान प्रचार–प्रसार में सहयोगी अवश्य ही बनना चाहिये तथा प्रतिदिन दिन में तीन बार स्वाध्याय करना एवं कराना चाहिये।

5138